जेल प्रशासन से सम्बन्धित विधि एवं जेल सुधार

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की
एल-एल. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध
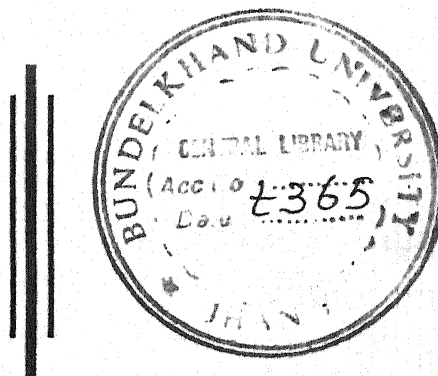
निर्देशक
प्रो. जे. डी. सिंह
बुन्देलखण्ड कालेज
झाँसी (उ.प्र.)

शोध छात्र
अमित कुमार अग्रवाल

विधि विभाग
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी (उ.प्र.)
2002
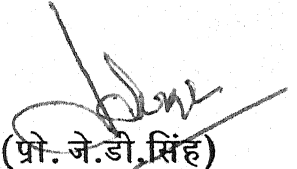
प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबंध जिसका शीर्षक "जेल प्रशासन से सम्बन्धित विधि एवं जेल सुधार" है जो बुंदेल खण्ड विश्वविद्यालय झांसी के विधि विषय अन्तर्गत **एल.एल.डी.** की उपाधि हेतु मेरे निर्देशन एवं देखरेख में **श्री अमित कुमार अग्रवाल** शोध छात्र विधि विभाग बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के द्वारा किया गया मौलिक शोध कार्य है। शोधार्थी ने मेरे साथ 200 दिनों से अधिक उपस्थिति पूर्ण कर ली है।

मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार यह शोध प्रबंध-

1. स्वयं शोधार्थी द्वारा किया गया शोध कार्य है।
2. शोध कार्य विधिवत पूर्ण किया गया है।
3. विश्वविद्यालय की एल.एल.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकता को पूर्ण करता है।

दिनांक: 23.12.2002

(प्रो. जे.डी. सिंह)
विधि- विभाग
बुंदेलखण्ड कॉलेज, झांसी

घोषणा-पत्र

मैं घोषणा करता हूँ कि यह शोध-प्रबंध जिसका शीर्षक ''भारत '' [illegible]न से सम्बन्धित विधि एवं जेल सुधार'' मेरा अपना कार्य है जिसे **प्रो. जे.डी. सिंह** विधि-विभाग बुन्देलखण्ड कॉलेज, झांसी के कुशल निर्देशन में शोध केन्द्र बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय झांसी में पूर्ण किया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध, शोध उपाधि समिति द्वारा मान्य किया गया था एवं निर्देशक के साथ मैंने केन्द्र में 200 दिनों की उपस्थिति पूर्ण कर ली है।

मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार प्रस्तुत शोध-प्रबंध में किसी भी ऐसे कार्य का कोई भी अंश समुचित उद्धरण के बिना सम्मिलित नहीं है, जिसे किसी उपाधि प्रदान करने हेतु इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय में जमा किया गया हो।

दिनांक :

अमित अग्रवाल

अमित कुमार अग्रवाल

शोध-छात्र

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्राचीन काल में मनुष्य ने समाज की कल्पना नहीं की थी। इसी कारण उस पर किसी प्रकार की सामाजिक जिम्मेदारी नहीं थी, वह अपनी आवश्यकतानुसार कार्य करता था तथा उसके द्वारा किया गया कोई भी कार्य अपराध की श्रेणी में नहीं आता था। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं। जिसके परिणामस्वरूप उसके आचरण एवं व्यवहार में अन्तर आने लगा। जिसके फलस्वरूप समाज में अराजकता बढ़ने लगी। फलस्वरूप समाज में मात्स्यन्याय की स्थिति निर्मित होने लगी तथा जंगलराज स्थापित हो गया। जंगलराज के परिणाम स्वरूप अपराधी को दंड देने की व्यवस्था की गयी। उसके अनुसार दाँत के बदले दाँत तथा आँख के बदले आँख का सिद्धांत लागू किया गया। यह व्यवस्था एक लम्बे समय तक चलती रही। परन्तु समाज इस मात्स्यन्याय व्यवस्था से संतुष्ट नहीं था। उसने एक सामाजिक समझौता किया तथा समाज में शासन करने के लिए एक व्यक्ति जिसे राजा कहा गया की नियुक्ति की तथा उस राजा द्वारा शासन सम्बन्धी बनाये गये नियमों का पालन करने की स्वीकृति दी। इस व्यवस्था में समाज के नियमों के विरूद्ध कार्य करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों को अपराधी कहा गया। तथा अपराध के अनुसार दण्ड की व्यवस्था की गयी।

दण्ड का उद्देश्य था कि अपराधी व्यक्ति दण्ड से भयभीत होकर पुन: ऐसे कार्य न करे जो कि अपराध की श्रेणी में आते हों साथ ही साथ अपराधी व्यक्ति को समाज से अलग रखने की व्यवस्था की गयी थी। उस स्थान जहाँ पर अपराधी को समाज से अलग रखा जाता था कारागार की संज्ञा दी गयी थी। इन कारागार में रहने वाले अपराधियों की देखभाल एवं रख-रखाव की जिम्मेदारी शासन की होती थी। परन्तु प्रशासन ने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया।

जेल व्यवस्था के विषय में बहुत ही कम लोगों को जानकारी रहती है। समाचार पत्र इस बात की जानकारी तो देते हैं कि किस व्यक्ति ने कौन सा अपराध किया और उसे क्या सजा मिली। परन्तु उसके बाद उस व्यक्ति का क्या हुआ यह जानने का सामान्य व्यक्ति के ज्ञान में नहीं है। वहीं वह कैदी सजा काँट कर पुन: समाज में आ जाता है और अपना कार्य करता है समाज को इस बात से कोई मतलब नहीं रहता

है कि अपराधी जो जेल में रह रहा है उसके साथ किस प्रकार का व्यवहार जेल में होता है और उसका प्रभाव उसके मानसिक प्रक्रिया पर पड़ता है।

जेल को एक पृथक रहस्यपूर्ण भयंकर या डरावनी संस्थान माना जाता है जहाँ पर अपराधी को अपराध करने के कारण रखा जाता है। हमारी जेल-व्यवस्था इण्डियन पैनल कोड के समसामयिक है, इस व्यवस्था का जब निर्माण किया गया था तब यह ठीक थी, परन्तु सामाजिक परम्परा के साथ-साथ इसका विकास नहीं हुआ। अंग्रेज भारत में शासन करने आये थे तथा नये-नये क्षेत्र में अधिकार करना ही उनका मुख्य लक्ष्य था, इसी कारण जेल व्यवस्था में परिवर्तन करने के प्रति न तो वे सजग थे और न ही उनके पास समय था।

परन्तु कुछ वर्षों से भारत सरकार तथा राज्य सरकार ने ध्यान देना आरम्भ किया कि जेल एक पृथक संस्था नहीं है अपितु हमारे सामाजिक व्यवस्था का एक भाग है। जिसे केवल समाज द्वारा सोचना या समझना ही नहीं चाहिए अपितु आमजनता का सहयोग तथा लगाव जागृत करना चाहिये। भारतवर्ष ने प्राचीन प्रकार की दण्ड व्यवस्था को बहुत ही पहले से नकार दिया था जैसे देश निकाला, अंग भंग करना अथवा कैदियों को यातना देना। अब जेलों में अपराधियों को पूर्व की अपेक्षा सुविधा हेतु साज-समान उपलब्ध कराया जाता है तथा दमनकारी प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन किया गया है। प्रत्येक राज्य का जेल-व्यवस्था हेतु अलग से बजट होता है जिसमें जेल-सुविधाओं को प्रदान करने का प्रावधान रहता है। परन्तु जब हम अन्य देश रूस, अमेरिका, ब्रिटेन आदि की व्यवस्था से तुलना करते है तो ज्ञात होता है कि हमने कैदियों के मानसिक उत्थान के लिये कुछ भी नहीं किया न तो अधिक व्यय किया और न ही उनके परिश्रम, समय, साधन की उचित व्यवस्था की जिससे अपराधी जेल से छूटने के पश्चात् उचित व्यवस्था हो सके तथा उसका समाज में पुनर्वास हो सके।

केन्द्रीय सरकार ने स्वतंत्रता के पश्चात जेल व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया यद्यपि यह पूर्णतया राज्य सरकारों के अधिकार क्षेत्र का मामला था।

1951 में केन्द्र सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ से अनुरोध किया कि वह कुछ विशेषज्ञों को भारत वर्ष भेजे जो कि जेल अधिकारियों को जेल-व्यवस्था में वैज्ञानिक पद्धति से अपराधियों से व्यवहार करने का ज्ञान हो। डॉ. डब्ल्यू. सी. रेकलेस ने इस विषय पर अनेक अनुशंसा की। 1952 में जेल अधिकारियो के द्वारा

एक अखिल भारतीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसके पश्चात् भारत सरकार ने 1957 में एक भारतीय मैन्यूल जेल कमेटी गठित की। 1958 में प्रावेशन आफ आफेन्डर एक्ट को मंजूरी प्राप्त हुयी जो कि राज्यों के लिये एक जेल प्रशासनचलाने की प्रणाली थी। केन्द्र सरकार के द्वारा 1961 में एक केन्द्रीय सुधार संस्थान की स्थापना की गयी थी जिसने जेल सुधार हेतु अनेक कार्य किये।

भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय तथा मानवाधिकार आयोग से प्राप्त निर्देशों के अनुसार समय-समय पर जेल-व्यवस्था में सुधार किये। परन्तु आज भी कारागारों में अनेक प्रकार के सुधार की आवश्यकता है। जिसका अध्ययन इस शोध-प्रबंध में किया गया है।

शोध-प्रबंध को छः अध्यायों में विभाजित किया गया है। जहाँ प्रथम अध्याय प्रस्तावना में कारागार से सम्बंधित उद्देश्य एवं व्यवस्था का उल्लेख है वही द्वितीय अध्याय प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक जेलों में विकास में कारागार में ही समय-समय पर हो रहे विकास कार्यों का उल्लेख किया गया है। तृतीय अध्याय विधि एवं कारावासियों के अधिकार में जहाँ कारावासियों के अधिकारों का उल्लेख किया गया है वहीं उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों का भी उल्लेख किया गया है। चतुर्थ अध्याय खुली जेलों की अवधारणा एवं उसकी उपलब्धियाँ में शासन द्वारा की गयी प्रयोगात्मक कार्य प्रणाली का उल्लेख किया गया है। पंचम अध्याय जेलों में कारावासित कैदियों की दशा का अध्ययन किया गया एवं उसका विधिवत् वर्णन किया गया है। अंतिम अध्याय में शोध कार्य के निष्कर्ष एवं सुझावों का उल्लेख है।

गुरू पत्नी श्रीमति सिंह का वात्सल्य मुझे शोध कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व से ही प्राप्त हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप कभी भी मुझे अपने माता-पिता से दूर रहने का आभास नहीं हुआ। मै स्वयं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैं इनके लिए किन शब्दों का प्रयोग करू। दो युगल मेरे अन्तः मन में विद्यमान है माता-पिता तथा आचार्य एवं आचार्यानी। प्रणित ही मेरा सर्वस्य है।

मेरे निर्देशक प्रो. जे. डी. सिंह सरल एवं ज्ञान का भन्डार सहित अपना जीवन व्यतीत कर रहे है और इसी कारण आश्रम की शैली में रह कर मुझे क्रमबद्व सीखना पड़ा। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि गुरू की सूक्ष्म अर्न्तदृष्टि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक के कारगार प्रशासन व्यवस्था के विषय में कितनी गहन है। मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा तथा इसी रूप में रहने की सदैव इच्छा भी अपने मन

में रखता हूँ।

मैं बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. आर. चन्द्रा जी का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरा पंजीयन विधि-विभाग में शोध छात्र के रूप में किया। तथा मुझे शोध-कार्य में आने वाली समस्याओं के निराकरण में सहयोग देने का आश्वासन दिया।

मैं देश के विभिन्न जेल अधीक्षकों एवं कर्मचारियों का भी आभारी हूँ जिन्होंने जानकारी देने में मुझे सहयोग दिया।

मैं डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के वरिष्ठ व्याख्याता श्री पी. पी. सिंह का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध-कार्य में विशेष रूचि ली एवं समय-समय पर सुझाव दिये।

मैं अपने परिवार के सदस्यों का भी आभारी हूँ जिन्होंने शोध-कार्य हेतु परिवार की समस्त जिम्मेदारी से मुझे मुक्त रखा।

मैं उन सभी विद्वानों का ऋणी हूँ जिनके ग्रन्थों की सहायता से इस शोध-प्रबंध को पूर्ण कर सका।

अन्त में मैं अनुकृति कम्प्यूटर का भी आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध-कार्य को समय से पूर्ण किया तथा मेरे अनुरोध को स्वीकार किया।

अमित अग्रवाल

अमित कुमार अग्रवाल

अध्याय 1

प्रस्तावना

प्रस्तावना :-

दण्ड के प्रायश्चितीय लक्ष्य की स्वीकृति के पश्चात् ही 17 वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षो से विश्व के सभी देशों में कारागारों की स्थापना ऐसे स्थानों के रूप में हुई जिनका उद्देश्य सजायाफ्ता व्यक्ति को बंदी बनाकर रखना तथा उन्हें शारीरिक एवं मानसिक कष्ट देकर उनके द्वारा किये गये अपराधों के लिये प्रायश्चित कराना था।[1] दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अपराधी को स्वयं के कार्यो की अनुभूति कराने के लिये कुछ संस्थाओं का जन्म हुआ। जेल या कारागृह इन संस्थाओं में से एक है जहां अपराधी को रखकर उसके सुधार के प्रयास किये जाते हैं और समाज को हानि पहुंचाने से बचाया जाता है।

कारागार, कारागृह या जेल शब्द की व्युतपत्ति लैटिन भाषा के शब्दों से हुई है जिसका अर्थ है पकड़ना या बन्द करना (पिंजरा)[2]

आक्सफोर्ड अंग्रेजी शब्द कोष में कारागार को इस प्रकार परिभाषित किया गयाहै-- ''वह स्थान जो पूर्णत: व्यवस्थित है उस व्यक्ति के लिये जिसने कोई अपराध किया है जिसे सुरक्षित रखा जाय किसी न्यायिक जांच के पूर्ण होने तक या दण्ड प्रदान किये जाने तक।''[3]

डां. एम जे. सेठना के मतानुसार कारागार का शाब्दिक अर्थ पिंजरा है।[4]

फेयर चाइल्ड के अनुसार कारागृह दण्ड देने वाला वह स्थान है जिसका संचालन केन्द्रीय या राज्य की सरकार द्वारा किया जाता है, और जिसका उपयोग केवल प्रौढ़ अपराधियों के लिए होता है, जिनकी सजा 1 वर्ष से अधिक होती है।[5]

1894 के अधिनियम के अनुसार--''कारागृह राज्य सरकार द्वारा परिभाषित वह स्थान है जहां बंदियों को स्थायी या अस्थायी रूप से रखा जाता है।''

परम्परागत रूप में कारागार से तात्पर्य ऐसे स्थानों या संस्थाओं से है जहां लोगों को निर्णयाधीन कार्यवाही के दौरान हिरासत में रखा जाता है अथवा जहां सिद्धदोष के पश्चात अपराधी को सजा के रूप में बंद किया जाता है।[6] दण्ड संस्थायें वे स्थान है जहां व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को कम कर दिया जाता है ताकि न्याय या दाण्डिक व्यवस्था का प्रयोग सफलतापूर्वक सुनिश्चित किया जा सके। इनके अन्तर को बतलाने के लिए ऐतिहासिक तौर पर तीन युगों में विभाजित किया गया है। प्रथम युग जो कि 16 वीं शताब्दी के मध्य तक चलता रहा, दाण्डिक संस्थायें मुख्यत: ऐसे कमरों, स्थानों, दुर्गों, महलों या शहरी

इमारतों के सुरक्षित भागों में बंदीगृहों के रूप में थीं , जिसका प्रयोग ऐसे व्यक्तियों या कैदियों को हिरासत में रखने के लिए किया जाता था जिनका विधिक निर्णयन होता हो या जिन्हें सजायें दी जाती हों। दूसरा युग ऐसी सजा के लिए था जिनमें विशेष प्रकार के अपराधियों के लिए सजा स्वरूप दण्ड दिया जाता हो, विशेषकर किशोर अपराधी, भिखारी, आवारा या वेश्याओं के लिए कई प्रकार की संस्थायें जैसे 1557 में लंदन ब्राइडबैल. 1595 में एमस्टडेम रासप्यूस और 1597 में स्पेन हश ; प्रकाश में आई ; फ्रांसिस फ्लोरेन्टाइन हॉसपाइस की स्थापना 1677 में की गयी। लड़कों और औरतों के सुधार गृह रोम में सेण्ट मिशेल हॉसपाइज 1704 तथा 1735 में स्थापित किये गये तथा जेनेट कर्मशाला 1775 में स्थापित हुई। इस काल की ये सभी सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्थायें थी। 18 वीं शताब्दी के अंत तक दण्डात्मक संस्थाओं के इन घटकों का अधिकतर प्रयोग सामान्य उपयोग के लिए किया गया। तीसरा युग कैद की सजा के लिए ऐसे सर्वमान्य इस्तेमाल के लिए था जो वास्तविक रूप में शारीरिक या अर्थदण्ड के बदले किया जाता।

समकालीन समाज में इन बंदीगृहों ने फांसी के तख्तों, काठों (कुण्डों) और कोड़ा स्थलों का स्थान ले लिया जो दण्ड देने के लिए सामान्यत: सर्वाधिक प्रयुक्त रूप न होते हुये भी अधिकतर प्रचलित था।

न्याय प्रशासन में ये सभी जो भूमिका अदा हैं उनके दृष्टि कोण से ऐसी संस्थाओं को चार वर्गों में विभाजित किया गया है, ये चार वर्ग हैं :-

(1) बंदी बनाये गये व्यक्तियों की अस्थायी हिरासत के लिए,

(2) वे स्थान जहां किसी कैदी को न्यायिक जाँच या सजा के क्रियान्वयन के लिए रखा जाए।

(3) ऐसे व्यक्तियों के लिए जिनकी दण्डात्मक रूप में सजाओं को परि समाप्त किया गया हो और

(4) वे स्थान जहां सामाजिक तौर पर खतरनाक कैदियों को रखा जाये।[7]

अधिकारिक तौर पर जेल, बंदीगृह, सुधारगृह-सुधारालय, दण्डगृह, सरकारी जेल आदि के रूप में जो भी कारागार का शासकीय नाम हो, ऐसा स्थान है जहां पर कैद की सजा का क्रियान्वयन किया जाता है।[8]

भारत में प्रचलित परम्परा के रूप में ''जेल'' ऐसा शब्द है जो चल रहे मुकदमों के बंदियों और सजा काट रहे कैदियों दोनों के लिए दांडिक संस्थाओं पर लागू होता है। अंत में जेल हवालात संस्थाओं और बंदीगृहों की भूमिका अदा करते हैं।[9]

बंदीगृह के उद्देश्य:

वर्तमान में बंदीगृह का प्रयोग तीन तरह से होता है --जिन्हें हिरासत में लेना, सजा देना एवं सुधारात्मक स्वरूप के रूप में वर्जित किया जाता है। हालांकि इनमें से अंतिम जिसका संबंध विधिक सजा के रूप में बंद करने से है अब उसका प्रमुख स्थान हो गया है। यह ऐतिहासिक दृष्टिकोण से एक नयी संकल्पना है, जिसके समस्त स्वरूपों का परिकलन (उत्पत्ति) अभी तक नहीं किया गया है, अपने मूल में कैदखाने का प्रयोग केवल हिरासत के कार्य के लिए किया जाता था, वह एक ऐसा स्थान था जिसमें तथाकथित अपराधी को उस समय तक विधिक हिरासत में रखा जा सके जब तक कि उस पर मुकदमा चले और उसके दोष सिद्ध ठहराये जाने पर उसे दण्ड दि या जाये।[10]

रोम के कानून में ''डाइजेस्ट ऑफ जस्टीनियन'' ने इस कथन के साथ हिरासती सिद्धांत संस्थापित किया था कि ''जेल हिरासत के लिए है न कि दण्ड के लिए'' और बहुत से देश रोम के कानून के सिद्धांत का अनुसरण करते हैं। यह सिद्धांत लगभग 1000 वर्षों तक चलता रहा। इंग्लैण्ड में भी उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का भी मत रहा है कि जेल भरने के लिए नहीं खाली करने के लिए हैं। अत: मध्य कालीन युग की जेलों का संबंध केवल ऐसे कैदियों को बंदी बनाने में था जिन पर मुकदमा चल रहा हो।[11] दण्डात्मक संस्थायें मुख्यत: दुर्गों, नगर, अट्टालिकाओं के सुरक्षित भागों में बंदीगृह या हिरासत गृहों के रूप में थीं, जिनका प्रयोग बंदी को किसी सजा सुनाने या काटने के लिए रखा जाता था।[12] जो सजायें दी जाती थीं या सुनाई जातीं थीं वे मुख्यत: प्रताड़न, देश निकाला, मृत्युदण्ड, अंगभंग, जंगल भेजना आदि थीं, परन्तु कभी कैद की सजा के रूप में नहीं थीं।[13] अर्थात् बहुत समय तक अपराधियों को जेल में कैदियों के रूप में रहने की सजा नहीं दी जाती थी। बल प्रयोग से तात्पर्य ऐसी सजा से है जिसके द्वारा व्यक्ति को कानून का अनुशरण या अनुपालन करवाया जाता है, चाहे वह दीवानी मामला हो या फौजदारी, यदि वह उसका पालन करता है तो उसे मुक्त कर दिया जाता है अन्यथा उसे बल प्रयोग के माध्यम से विवश किया जाता है कि वह उस आदेश का अनुशरण या अनुपालन करे। इस प्रकार कैद खाने का प्रथम प्रयोग सिद्धयुक्त अभियुक्तों के विरूद्ध था।[14] जिनमें किशोर अपराधी, भिखारी और वेश्यायें शामिल थीं।[15] यह नियम आज भी इंग्लैण्ड में चल रहा है क्योंकि जिन्हें जुर्मानों की अदायगी न करने के लिए या अदालत की मानहानि करने के लिए कैद की सजा दी जाती है, वे ऐसे जुर्मानों के भरने के बाद या अदालत की मानहानि को दूर करने के बाद मुक्त कर

दिये जाते हैं।[16]

कैद एक सजा है जो कानून का उल्लंघन या अपराध करने पर सिद्धदोष अभियुक्तों को दी जाती है।[17] 18वीं शताब्दी में कैद की सजा को समस्त शारीरिक या बड़े दण्डों या जुर्मानों का भुगतान न करने पर विकल्प के रूप में लिया जाता था।

कारागृह के कार्य समाज की सुरक्षा सिद्धदोष अभियुक्तों को खाना, कपड़ा और मकान की पूर्ति, सहवासियों की एक-दूसरे से समरक्षा तथा समाज से बाहर के व्यक्तियों से संरक्षा, दण्ड दिये जाने और अभियुक्तों के पुर्नवास से था। बाहरी व्यक्तियों के द्वारा ये प्रायोजन निर्दिष्ट किये गये और सांस्थनिक कार्मिकों के द्वारा उनका प्रयोग किया गया है, हालांकि तर्कसंगत रूप में उनमें से कुछ एक दूसरे के विरूद्ध थे। उनकी संपूर्ति के प्रयास के रूप में श्रम का एक बहुविध प्रभाग स्थापित किया गया और ऐसे लोगों के द्वारा कुछ सीमा तक इन प्रायोजनों की संपूर्ति की गयी, जिनका संस्थानिक व्यवहार का स्वरूप ऐसी भूमिकाओं द्वारा तय किया गया जो श्रम के प्रभाग को तैयार करती है। इस श्रम के प्रभाग में तीन प्रमुख वर्ग हैं -- अभिरक्षात्मक श्रेणियों का अनुक्रम, औद्योगिक अनुक्रम (तंत्र या वर्ग) और सामाजिक कल्याण अभिकरण तथा इनका काम सहवासियों को रखने, सहवासियों का इस्तेमाल और सहवासियों की देखरेख करने से है।[18]

विगत तीन शताब्दियों के दौरान कारागृहों ने सामाजिक नियंत्रण की संस्था और विधिमान्य अवपीड़न (या कानूनी हथियार) के प्रतीक की हैसियत ग्रहण की है। अब कैद कानूनी प्रक्रिया में एक ऐसा स्थान नहीं रह गया है जहां निर्णय के रूप में मृत्युदण्ड, देश निकाला या कालापानी की सजा दी जाती हो। जेल की संस्था अपेक्षाकृत विकसित और उस पर पारंपरिक मापदण्डों, आदर्शों और मानवतावाद, ज्ञानादेय और कल्याणकारी राज्य का प्रभाव पड़ा इसमें न केवल उस समय के आदर्शों की झलक है बल्कि संगठनात्मक विज्ञान की समकालिकता भी पायी जाती है।[19]

कैद किसी गिरजाघर जैसी कोई स्वायत्य निकाय या संस्था नहीं है और न ही वह शक्ति का तंत्र, वरन राज्य का एक ऐसा अस्त्र है, जिसको स्वरूप सामाजिक वातावरण के द्वारा प्रदान किया जाता है वह भी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों के द्वारा होता है। वह उनके हितों को आगे बढ़ाने में संघर्ष के रूप में समाज के द्वारा सक्रिय किया जाता है।[20]

कैद की सजा के उद्देश्यों से संबंधित सिद्धांत:

प्राचीन समय में कैदियों को कैद खाने में बंद कर दि या जाता था तथा कैद खानों के बाहर उन्हें दण्ड दिये जाते थे। सभ्यता के विकास के साथ कैद की सजा दण्ड की प्रमुख विधि बन गयी। परन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि कैद के क्या उद्देश्य हैं ? या क्या उद्देश्य होने चाहिए ?

अध्ययन से ज्ञात होता है कि कैद की सजा के उद्देश्यों के विषय में बहुत से सिद्धांत प्रचलित हैं , जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है:-

दोष निवारण (रक्षा) :-

गलत काम करने के लिए दि ये जाने वाले दण्ड में, जैसा कि अन्तर्निहित है, कानून की रक्षा से सीधा-साधा तात्पर्य ऐसे परिरक्षित विधि मूल्यों की पुर्नस्थापना और पुर्नप्रयोग से है जिसे कर्ता ने नष्ट किया हो यह स्वयं मूल्य और उसको शामिल करने वाले नियम, दोनों पर अमूर्त बल देता है साथ ही साथ उसके विनाश को रोकने पर भी बल देता है। साधारण शब्दों में कह सकते हैं कि व्यक्ति जिसने जुर्म किया है वह उसकी भरपाई के लिए कुछ करे जिससे कानून स्थापित हो सके तथा भविष्य में वह गलती न दोहराई जाये। [21]

इस सिद्धांत की जड़ें एक ऐसे त्याग में खोजी जा सकती है जिसे आदिकालीन और पुराकालीन मनुष्य ने ईश्वर की संतुष्टि के लिए अपनाया और ये देवता गलत काम करने वाले से अप्रसन्न हुये। कुछ दार्शनिक जैसे कि 'कोट' ने दोष निवारण को राजनैतिक समाज जिसने पारस्परिक सम्मति से स्वयं भंग कर दिया, के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया।[22]

दण्ड :-

दण्ड का सिद्धांत प्राचीन है, यह बहुधा माना गया है कि किसी को चोट पहुंचाने के लिए उसे वैसा दण्ड देना सर्वमान्य और स्वाभाविक मनोभाव है। जहां तक दण्ड के सिद्धांत का प्रश्न है सजा का औचित्य अपने आप में उसी का प्रतिफल है जिसका संबंध उसके निवारण अथवा सुधारात्मक प्रभाव से बिल्कुल नहीं है, जिसका की प्रभाव अपराधी पर या अन्य लोगों पर पड़े। जब हम इस सिद्धांत के अनुसार यह कहते हैं कि जो दण्ड दिया जाता है वह किये गये अपराध के लिए है, तब उसका तात्पर्य है कि अपराध का किया जाना दण्ड का आधार है। आम बोलचाल के शब्दों में इस सिद्धांत के अनुसार जुर्मकर्त्ता को जुर्म के

एवज में उसकी भरपाई करनी होती है। यह एक प्राचीन सिद्धांत है। यह विदित है कि किसी चोट से बचने या पीछे हटना प्रकृति का नियम है यह सिद्धांत सजा को या दण्ड को निश्चित करता है, जो कि रोक या सुधार के सिद्धांत से अलग है।

कान्ट इस बात से सहमत है कि दण्ड अपराध के प्रकार और उसकी गंभीरता के अनुरूप या समतुल्य होना चाहिए। स्पष्टत: एक समान अपराधों के लिए उसी प्रकार की सजाएँ दी जानी चाहिए।

पश्चाताप :-

19 वीं शताब्दी में 'पेन्सेल्वेनियां' और 'न्यूयार्क' का पश्चातापी संपूर्ण आन्दोलन इस तथ्य पर आधारित था कि कानून तोड़ने वालों को अपनी स्वयं की शांति बनाये रखने के लिए अपनी आत्मा को टटोलने तथा ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने का अवसर दिये जाने की आवश्यकता है।[23] साधारण शब्दों में किसी अपराधी को एक मौका देना चाहिए कि वह अपने अपराध का पश्चाताप कर सके तथा भगवान एवं अपनी आत्मा से संबंध स्थापित कर सकें। पश्चातापी पद्धति जो अलगाव या अकेलापन या पेन्सेल्वेनिया पद्धति के नाम से जानी जाती है, हावर्ड के कोष्ठीय (कमरा) पद्धति पर आधारित है परन्तु दिन और रात में कैदियों को बिल्कुल अलग रखने की आवश्यकता को देखते हुए यह पद्धति उनके सिद्धांत से मेल नहीं खाती। इस अवधारणा में व्यक्ति को धार्मिक उपदेश, आत्मा की सफाई एवं शांति का मनन करना होता है।[24]

त्यागना :-

व्यक्ति जिसने कोई अपराध किया है समाज उसे त्याग दे जिससे वो अपने आप को अलग-थलग महसूस कर सके और कैद में रहने के कारण वह शारीरिक रूप से अन्य कोई दूसरा अपराध न कर सके।[25] अर्थात यदि किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है और वह समाज के अनुसार दण्डनीय है तो ऐसे अपराधी को समाज से बहिष्कृत कर देना चाहिए जिससे उसे अपने किये गये अपराध का बोध हो और वह पुन: अपराध करने की कल्पना न करे।

अवरोध :-

इसमें किसी भी अपराधी को किसी जुर्म या अपराध को करने से रोका जाता है, जो वर्तमान में एक महत्वपूर्ण बचाव के रूप में विकसित है। इसे प्राय: रोक या निवारण का नाम दिया गया है। यूरोप के अपराधशास्त्रियों ने पीढ़ियों से निवारण की इस नीति में इतना विश्वास किया है कि उन्होने

निवारण और रोक को वास्तविक रूप में समानार्थी माना है।[26] यदि कोई व्यक्ति अपराध करने की प्रवृत्ति की ओर बढ़ता है अथवा अपराधी बनता है तो उसे रोकने तथा समझाने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वह अपराधी न बन सके। अपराधशास्त्रियों के अनुसार निवारण या रोक एक दूसरे के समानार्थी हैं।

पुर्नसामाजीकरण अथवा पुर्नवास:

समाज की न्याय व्यवस्था के माध्यम से यह प्रयत्न किया जाता है कि व्यक्ति समाज के नियमों का पालन करे तथा व्यवस्थाओं में सहयोग दे। परन्तु अध्ययन से ज्ञात होता है कि दण्डात्मक व्यवहार से अपराधी की अपराध करने की मानसिकता में वृद्धि ही होती है, उसे सुधारा नहीं जा सकता, इसलिए उसे तिस्कृत करने की अपेक्षा अनुशासन, सम्मान आदि से परिचित कराया जाये तो वह सुधर सकता है। शासन प्रणाली (सामाजिक व्यवस्था) का मुख्य उद्देश्य जहां तक संभव हो सके, कैदी का पुनर्वास करना है। जेल प्रशासन कैदियों को समाज में अपना उपयुक्त स्थान बनाने के लिए उनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देता है, और ऐसा करने में कैदियों की सहायता व सहयोग करता है और उनके मुक्त होने के बाद उनकी देखभाल करता है। सावधानी पूर्वक चयनित ओर अच्छी तरह प्रशिक्षित कर्मचारियों के व्यक्तिगत प्रभावों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है साथ ही साथ उन महिला एवं पुरुषों पर भी ध्यान दिया जाता है जो स्वेच्छिक सामाजिक सेवा के रूप में शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करते हैं तथा कैदियों के साथ मैत्रीपूर्ण ढंग से व्यवहार करते हैं।[27]

जेल एक नैतिक चिकित्सालय होनी चाहिए। सर टॉमस मॉट के अनुसार ''कैद केवल बुराई को मारना है और इंसान को बचाना है, कैदियों पर इतना अत्याचार नहीं होना चाहिए कि वे मर जायें।'' जेल प्रशासकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनकी देखभाल में जो कैदी हैं वे शारीरिक और मानसिक रूप से इस प्रकार निपुण हों कि जब वे जेल से मुक्त हों तब वह अपने आप को समाज में रहने के काबिल समझें, और चुनौतियों का सामना कर सके।[28]

पेटरसन का अभिमत है ''व्यक्ति जेल में दण्ड के बतौर आते हैं न कि दण्ड के लिए।''[29]

गाल्टंग पुर्नसामाजीकरण तथा अधिक लोकप्रिय शब्द पुर्नवास के बीच अंतर को मानते हैं। पुर्नवास में व्यक्ति सामान्यत: आपराधिक कार्यों से इसलिए बचता है कि उसके कार्य करने के सामान्य क्षेत्र में ऐसे कृत्यों के लिए अवसर नहीं होते। दूसरी ओर पुर्नसामाजीकरण से तात्पर्य है कि व्यक्ति

आपराधिक कृत्य उस समय भी नहीं कर पाता जब अवसर उपलब्ध हों , या इसकों इस प्रकार भी कह सकते हैं कि पहले के अनुसार व्यक्ति में जुर्म या अपराध करने की भावना नहीं उठ पाती यदि वह जुर्म के माहौल का सामना कर ले तथा दूसरे के अनुसार अपराधी, जुर्म में लिप्त नहीं हो पाता क्योंकि उसके सामने जुर्म करने की स्थिति निर्मित नहीं होती। इन दोनों परिभाषाओं के आधार पर कोई भी यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि हमारे अधिकांश प्रत्यक्ष सुधारात्मक प्रयास और विशेषकर पुर्नवास के प्रयास अभिप्रेरित परिवर्तन की तकनीकों में यह प्रभावोत्पादकता के स्तर से संबंधित हैं कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और मनोचिकित्सीय अनुशासन अभी भी प्रदान किये जाने हैं। अतएव सजा का उद्देश्य वास्तविक रूप में पुर्नवास है।[30]

वर्तमान समाज अपराध के नियंत्रण के विषय में अनेक प्रकार के उपाय करता है और मानता है कि कैद उन्हें प्राप्त करने का एक साधन है। हाल के समय में कैदियों के सुधार, पुर्नवास और उनसे अच्छे व्यवहार किये जाने पर बल दिया जाने लगा है क्योंकि समाज कैदियों, अपराधियों को बदले हुये रूप में देखना चाहता है जिससे वे आगे और अपराध न कर सकें। आगे समाज अपराधियों से समरक्षा चाहता है। कैद या जेल सामान्य समाज से अपराधियों को अलग करता है जिससे कि वे समय की निश्चित अवधि के दौरान अपराध न कर सकें। इसके अलावा समाज प्रतिफल चाहता है। कैद से ऐंसे लोगों का जीवन सुखरहित बनाने की अपेक्षा है जिन्होंने दूसरे व्यक्ति के जीवन को सुखरहित बनाया है। अंत में समाज अपराध की गति को कम करना चाहता है। कैदखाने से न केवल अपराधियों में सुधार लाकर अपराध की गति कम करने की अपेक्षा है वरन् बंदी बनाये गये व्यक्ति का उदाहरण भी पेश करना है ताकि समाज में रहने वाले अन्य व्यक्ति जिनमें अपराध करने की भावना है या पनप रही है वे अपराध न करें या अपराध करने से डरें। चूंकि जेल को समाज के प्रत्येक लक्ष्य के लिए कार्य करने का महत्वपूर्ण कार्य निर्दिष्ट किया गया है, अत: लक्ष्यों को प्राप्त करने को कैद की सजा उद्देश्य माना जाये।

यह हमारा कर्तव्य है कि हम कारागृह के सुधार कार्यों को आवश्यक रूप से पूर्ण करें, साथ ही साथ दण्ड प्रक्रिया में भी सुधार करने का प्रयत्न करें। आज वक्त की मांग है कि कारागृह के सुधार कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जावे, भले ही सुधार कार्यक्रमों को करने से विरोध का सामना करना पड़े, कठिनाइयाँ आयें। जब हम सुधार कार्यक्रम को एक उपचार के रूप में प्रारंभ करेंगे तो इसके लिए हमें कुछ कष्ट तो उठाने ही पड़ेगें। अपराधी के जीवन में सुधार या परिवर्तन के लिए मनोवैज्ञानिक, सामाजिक शिक्षा

व तकनीकी कुशलता के द्वारा सुधार को महत्व दिया जाना चाहिए।[31]

कारागृह या कैद की विशेषतायें :

समाज के प्रति अपना सहयोग प्रदर्शित करने के लिए कैद की परिकल्पना की गई है। इसे किसी भी वर्ग के द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती। कारागृह की एक विशेषता यह भी है कि यह एक एकांत निकाय है। कारागृह में दंड व्यवस्था को प्राथमिकता दी जाती है। कारागृह या कारागार के अधिकारी, कर्मचारी राज्य के अनुसार प्रशासन करते हैं। बिना किसी जाति भेदभाव के कैदियों के साथ व्यवहार किया जाता है, इसमें सामाजिक सामर्थता का कोई महत्व नहीं है।[32] कारागार की यह विशेषता भी है कि अपराधी को कारागृह की दीवालों के अंदर रखना। कारागार एक बंद एवं सुरक्षित निकाय है। किसी बाहरी व्यक्ति या कैदी के संबंधी को बिना अनुमति कारागार में प्रवेश नहीं करने दिया ज़ाता, तथा एक निश्चित समय के लिए ही कैदी से मिलने की अनुमति होती है। इस प्रकार अपराधी का संबंध अन्य लोगों से वर्जित माना जाता है।[33]

कारागार की अन्य विशेषता है शारीरिक प्रताड़ना। इसका यह अर्थ नहीं है कि अपराधी को कोड़े से मारा जाय या उसे शारीरिक प्रताड़ना दी जावे। क्योंकि प्रताड़ना से अपराधी के जीवन में परिवर्तन नहीं हो सकता, उसे सुधारा नहीं जा सकता बल्कि प्रताड़ना या दंड से अपराधी का जीवन और अधिक कठोर हो जाता है। कैद में कैदी को बांधने के लिए लोहे की जंजीर होती है उसे इस स्थिति में रखा जाता है कि वह अपने आप को घायल न कर सके, अन्यथा कैद में यातना एवं अपने आप को घायल करने में अंतर बतलाना मुश्किल होता है। कारागार में कैदी को एक बंद कमरे में रखा जाता है जिसमें लोहे की छड़ों की दीवार या दरवाजा होता है जिससे कैदी को आसानी से देखा जा सके। लेकिन कह सकते है कि क्रूरता से अपराधी का जीवन नहीं बदला जा सकता।[34] कारागार की एक विशेषता यह भी है कि कारागारों में कैदी अपना गुट बनाने लगे हैं, कैदियों को अलग-अलग कक्षों में रखा जाता है। कहा जा सकता है कि कारागार की व्यवस्था अनिश्चित और संदिग्ध है।[35] संक्षेप में कारागृह की विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

(1) बंदीगृह या कारागृह एक प्रकार की संस्था है, जिसका संचालन एवं निरीक्षण राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। अत: कह सकते हैं कि कारागृह सरकार द्वारा स्वीकृति प्राप्त संस्था का नाम है।

(2) कारागार वह स्थान है जहां अपराधियों को दो कारणों से रोका जाता है-

(अ) अपराधी को दण्ड देना व उनका सुधार करना

(ब) अपराधियों से समाज की रक्षा करना

(3) कारागृह में अपराधी को या तो स्थायी तौर पर रखा जाता है या अस्थायी तौर पर।

(4) कारागृहों में अपराधी को रखने का उद्देश्य उसे दण्ड देना है। यह दण्ड अपराधी को समाज-विरोधी कार्यों के बदले के स्वरूप दिया जाता है।

(5) बंदीगृह की अंतिम विशेषता सुधार है। सुधार के अभावों में बंदीगृह की कल्पना नहीं की जा सकती।

कारागृह या कारागार का अर्थ है विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न स्थान, कैद से यह भी तात्पर्य लगाया जा सकता है कि अजीब परिस्थितियाँ जिनका अनुभव व्यक्ति ने पूर्व में न किया हो। यहां पर अपराधी का जीवन कानून के अंतर्गत ही समाप्त हो जाता है। कारावास एक ऐसा स्थान है जहां अपराधियों को अपने ही समान लोगों की संगति प्राप्त होती है।[36]

कारागार की कुछ वास्तविकताओं को नजर अंदाज किया जाता है, जो दिखलाई देती है, सुनाई देती है और जिनकी गंध का आभास भी होता है। जेल की घटनाओं की झलक रास्ते में ही दिखलाई पड़ती है, उसकी भयानकता को देखे बिना व्यक्ति उत्तेजित हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक अपराधियों के आचार विचार का अध्ययन कर रहे हैं। हजारों की संख्या में लोग कैदियों के जीवन परिवर्तन के बारे में प्रयत्नशील हैं। लेकिन कहा जा सकता है कि कैदियों की संपूर्ण समस्याओं पर कोई भी विचार नहीं कर पाया है। संक्षेप में कारागार के बारे में कह सकते हैं - कैद का अभिप्राय है सत्यता जिसका पूर्व में ज्ञान न हो, ये किसी के सपनों की कल्पना हो सकती है जिसे न सुना गया हो, न देखा गया हो और न ही महसूस किया गया हो। यह किसी मनोवैज्ञानिक के लिए अध्ययन का विषय हो सकता है और बहुत से लोगों के लिए एक भीड़ वाला स्थान। अत: कह सकते हैं कि जेल का एक अभिप्राय निकालना सही नहीं है।[37]

अध्ययन का उद्देश्य:

समस्त प्रशासनिक तंत्र में जेल प्रशासन का विशेष स्थान है। जेल प्रशासन आपराधिक न्याय तंत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है, दो और तंत्र जो आपराधिक न्याय तंत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखते

हैं वे है- पुलिस एवं न्यायालय।

भारत में जेल की समस्यायें विगत कई वर्षों से चर्चा में रही हैं। कारागारों में कैदियों के लिए कई सुधार कार्यक्रम लागू होने के बाद भी उनके जीवन में सुधार नहीं हो सका है। विभिन्न मानवाधिकार संगठनों एवं सामाजिक कार्यकताओं ने इस संबंध में विरोध प्रकट किया है तथा विभिन्न संचार माध्यमों के द्वारा भी समय-समय पर कैदियों की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

भारत में जेल या कारागार की समस्याओं से निपटने के लिए अनेक समितियों का गठन किया गया, इनमें से कुछ स्वतंत्रता के पूर्व में थी और कुछ स्वतंत्रता के बाद की। विभिन्न समितियों में सुझाव एवं सुधारों को ध्यान में रखते हुये बंदी संस्थाओं की स्थापना की गई तथा ''आल इंडिया जेल मैन्युअल कमेटी'' का गठन किया गया। इस कमेटी ने आदर्श कारागार नियमावली की रचना करके 1959 में अपनी रिपोर्ट दी। जिसकी स्वीकृति गृहमंत्रालय ने 1961 में दी। इसके बाद भी समय-समय पर विद्वानों के सुझावों के आधारों पर जेल सुधार समितियों का गठन होता रहता है। जेल नियमावली में वर्जित नियमों में संशोधन करने के सुझाव प्राप्त होते रहते है, कुछ संशोधन भी किये गये, परंतु आज भी अनेक संशोधनों की आवश्यकता है।

जेल मेन्युअल के सभी नियमों का पालन करना जेल अधिकारियों एवं कर्मचारियों का कर्तव्य है, परंतु ऐसा नहीं हो रहा है समय-समय पर कुछ कैदियों या उनके परिजनों ने जेल में हो रहे अत्याचारों के विरूद्ध न्यायालय में आवाज उठाई। न्यायालय में प्रस्तुत याचिकाओं में बंदियों ने संविधान में वर्णित प्रावधानों के अुनसार उन्हें सुविधायें प्राप्त न होने की बात की। उच्चतम न्यायालय ने जेलों में बंदी कैदियों के साथ अमानवीय, क्रूरतम, पशुवत, अशोभनीय, असभ्य एवं बर्बर व्यवहार के प्रति असंतोष एवं चिंता व्यक्त करते हुये कैदियों को संविधान में प्रदान किये गये मौलिक अधिकारों का संरक्षण प्रदान करने का प्रयास किया है। साथ ही साथ मानवाधिकार आयोग ने भी कैदियों की दयनीय स्थिति को देखते हुये हस्तक्षेप प्रारंभ किया। लेकिन अत्यंत दुख की बात है कि मानवाधिकार आयोग की बहुत सी सिफारिशों को राज्य सरकारें नजर अंदाज कर रहीं हैं।

इसी प्रकार अनेक प्रकरणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उच्चतम न्यायालय के निर्णयों के बाद भी भारतीय जेल व्यवस्था में संतोषजनक सुधार नहीं हो पाया है और निरंतर इस प्रकार के मामले

देखने में आ रहे हैं जिनमें कैदियों के मानवाधिकारों का जेलों में हनन हो रहा है। कई ऐसे राज्य हैं जहाँ जेल के बाहर वही होता है जो पुलिस चाहती है तथा जेल के भीतर वह सब कुछ होता है जो खूंखार कैदी चाहते हैं। यह एक ऐसी कड़वी सच्चाई है जिसे वही समझ सकता हैजो इसका शिकार है। जेल में अपराधी के अपराध तथा पैसे की स्थिति कैसी है ? उसका किन-किन अपराधियों या नेताओं से सम्बन्ध है। उसी के अनुसार कैदी से व्यवहार किया जाता है। उसके जेल में रहने की व्यवस्था भी अंदर रह रहे कैदियों के द्वारा होती है। यदि वह सीधा-सादा गरीब व्यक्ति होता है तो वह पूर्व कैदियों की सेवा करता है और यदि वह अपराधियों से संलग्न वाला व्यक्ति होता है तो उसे सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। अन्यथा उसे नये कैदी के साथ नियमों को ताक में रखकर अमानवीय, क्रूरतम व्यवहार करने से न तो पूर्व से जेल में रह रहे कैदी चूकते हैं और न ही जेल का प्रबंधन विभाग। कैदियों के साथ किये जा रहे अमानवीय व्यवहारों के प्रति अनेक प्रकरण न्यायालयों में प्रस्तुत किये गये। उससे जेलों में व्याप्त व्यवस्था का ज्ञान होता है। निम्नलिखित वादों का अध्ययन करने से जेल व्यवस्था की वास्तविकता का ज्ञान होता है। यथा-

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (AIR 1978, S.C. 1675)

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (संख्या 2) (AIR 1982, S.C. 1759)

प्रेम शंकर बनाम दिल्ली प्रशासन (AIR 1980, S.C. 898)

सिटीजन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम असम राज्य (AIR 1995, 3 S.C.C. 743)

किशोर सिंह बनाम राजस्थान राज्य (AIR 1981, S.C. 625)

फ्रांसिस कॉरेली बनाम संघ क्षेत्र दिल्ली (AIR 1981, S.C. 746)

कदरा पहाड़िया बनाम बिहार राज्य (AIR 1981, S.C. 939)

खत्री बनाम बिहार राज्य (AIR 1981, S.C. 928)

रुदल शाह बनाम बिहार राज्य (AIR 1983, S.C. 1086) आदि

नीलवाती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य (AIR 1993, 2 S.C.C. 746)

डी. के वासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (AIR 1997, S.C. 610)

जेलों में हो रहे कैदियों के प्रति अत्याचारों को देखते हुये संयुक्त राष्ट्र संघ भी अपनी चिंता व्यक्त कर चुका है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1954 में ही अपने सभी सदस्य देशों को जेल प्रशासन में अभूतपूर्व

परिवर्तन करने के सुझाव के लिए पत्र भेजे थे, जिसमें लगभग 44 सुझाव एवं नियमों का पालन करने का अनुरोध किया गया था। परंतु उसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा और आज भी कैदियों की स्थिति बहुत ही दयनीय है, संयुक्त राष्ट्र संघ ने कैदियों की दशा को सुधारने के लिए अनेक प्रावधानों का निर्माण किया। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य देश है अतः इन प्रावधानों का पालन करना उसका कर्तव्य है। उपरोक्त प्रावधानों के अनुरूप ही भारतीय कारागारों में कैदियों के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए एवं कारागार संबंधी विधियों में इन प्रावधानों का समावेश करना चाहिए।

परंतु यह तो अध्ययन से स्पष्ट हो सकेगा कि कौन-कौन से प्रावधान कारागार अधिनियम में समाहित करने की आवश्यकता है, जिससे एक सफल व्यवस्था की स्थापना हो सके। साथ ही साथ कारागार व्यवस्था में संशोधन एवं सुधार किया जाय।

भारत सरकार ने उच्चतम न्यायालय तथा मानवाधिकार आयोग से प्राप्त निर्देशों के अनुसार समय-समय पर जेल व्यवस्था में अनेक सुधार किये हैं जिनका एक साथ वर्णन इस शोध-प्रबंध में करने का प्रयत्न किया जावेगा।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक विद्वानों ने इस व्यवस्था पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जिनका उल्लेख अलग-अलग किया गया है शोध -प्रबंध का उद्देश्य आंशिक एवं विस्तार से वर्णित जेल व्यवस्था एंव सुधार का उल्लेख एक ही स्थान पर किया जाना है। साथ ही साथ सुझाव भी प्रस्तुत किया जाना है जिससे जेल व्यवस्था में परिवर्तन हो सके।

Notes & References :-

(1) जॉन केली : बहैन द गेट्स शट, पृष्ठ 7, लॉगमेल, लन्दन, 1767 पृष्ठ 7

(2) दी आक्सफोर्ड इंग्लिस डिक्शनरी, भाग 8, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1979, पृ. 1383

(3) इन साइक्लोपीडिया अमेरिकन, भाग 22, यू एस,1980, पृ. 619

(4) डॉ एम. जे. सेठना : सोसाइटी एण्ड क्रिमिनल, 1964, पृ. 273, फेयर चाइल्ड, एच.पी. : डिक्शनरी आफ सोशालौजी, पृ . 232

(5) इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोसल साइंस, भाग 12, मैकनिकल, लंदन, 1951, पृ. 57-58

(6) आर. एन. दातिर : प्रिजन एज ए सोशल सिस्टम पापुलर प्रकाशन, बम्बई, 1978 पृ. 1

(7) एक्सट्रेट फाम रेक्लैस, लैक्चर (एड्रस टू जि प्रिजन एड्मीनिस्ट्रेशन एट टाटा इन्सटीट्यूट ऑन सोसल साइंस बम्बई, 1952) जनवरी 1956, पृ. 2

(8) फ्रैन्क निवसाम, दि होम आफिस, एलन एण्ड अनविन, लंदन : 1954 पृ. 144

(9) इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंस पृ. 57

(10) इन साइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेलनिका, भाग 18, लन्दन, 1961 पृ. 514

(11) माइरिल ई. अलैक्जेन्डर : जेल एडमिन्सट्रेशन, चरेस सी थामस स्प्रिंग फील्ड, यू. एस. 1957 पृ. 1

(12) फ्रैन्क निवसाम : पृ. 144

(13) माइरिल ई. एलैक्जेन्डर : पृ. 57

(14) इनसाईक्लोपीडिया आफ बिट्रेननिका , पृ 514

(15) फ्रैन्स निवसाम : पृ. 144

(16) डोनाल्ड आर क्रेसी : दी प्रिजन-स्टडीस इन इन्स्टट्यूशनल एण्ड अर्गनाइजेशनल चेन्ज, न्यूयार्क 1961 पृ. 5

(17) इन्द्र जे सिंह : इण्डियन प्रिजन : ए सोशलोजिकल इनक्वारी कॉन्सैप्ट, दिल्ली, 1979, पृ. 1

(18) वही. : पृ. 16

(19) कोडडिगटन : प्रॉब्लम आफ पनिशमेन्ट, 46

(20) आर. एन. दतिर : पृ. 28-29

(21) वही : पृ. 30-31

(22) इनसाइक्लोपीडिया आफ ब्रिटेननिका : पृ. 515

(23) आर. एन. दतिर : पृ. 32

(24) वही : पृ. 33

(25) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटननिका : पृ. 517

(26) एम. जे. सेठना : सोशइटी एण्ड दी क्रिम्निल लीडर प्रेस, बम्बई 1952

(27) एस. के. रॉक (एड) : पेटरसन आन प्रिजन : पृ. 23

(28) आर. एन. दतिर : पृ. 35

(29) ई. एच. सुदर लैण्ड एण्ड डी. आर. क्रेसी : प्रिंसपल आफ क्रिमनालौजी दी टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस बम्बई , 1965, पृ. 460-461

(30) जीरोज एच. ग्रोसर : एक्सर्टनल सैटिंग एण्ड इनटर्नल रिलेशन ऑफ दि प्रीजन, इनलारैन्स हैजरिंग प्रिजन विधन सोशइटी, न्यूयार्क 1968, पृ. 11

(31) वही. : पृ. 10

(32) आर. एन. दतिर : पृ. 12

(33) डोनाल्ड आर. क्रेसी : पृ. 267

(34) वही. : पृ. 267

(35) हग. जे. कलरे : पीपुल्स इन प्रिजन, पिटमैन पब्लिशिंग, किग्शवे, लंदन , 1973 : पृ. 3

(36) वही : पृ. 3

(37) एम. एन. श्रीनिवास : सोशल चेन्ज इन इण्डिया, ओरिन्ट लांगमैन, बम्बई, 1980 : पृ. 11

¤ ¤ ¤

अध्याय 2

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक जेलों में विकास

विश्व के प्रचीन देशों में कारागृहों का स्वरूप अपराधियों को काल कोठरी में बंद करके रखना था। परन्तु अब यह एक पूर्व अवधारणा रह गई है। 1597 से पूर्व का कारागृहों के इतिहास का उल्लेख प्राप्त नहीं है। लेकिन सन् 1553 में लंदन में आवारा दुराचारियों एवं निष्क्रीय व्यक्तियों को रखने के लिए एक शरणाश्रम बनाये जाने का उल्लेख प्राप्त है। फिर भी यह स्वीकार किया जाता है कि मानव-जीवन के विकास के साथ ही कारागृहों का भी विकास हुआ होगा। यदि हम 'उद्विकास' की दृष्टि से कारागृहों के इतिहास का वर्णन करें तो यह प्रतीत होगा कि 'आखेट युग' में कारागृहों का अस्तित्व ही नहीं था। हालांकि अपराध उस वक्त भी हुआ करते होगें। 'पशुपालक' मानव-विकास की दूसरी अवस्था है, इसमें भी कारागृहों के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती, इसका कारण यह माना जाता है कि जिन उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए कारागृहों का जन्म तथा विकास हुआ उन्हें पशुपालक मानव जानता ही नहीं था।

यह मान सकते है कि कृषि युग में कारागृहों का विकास हुआ होगा। डॉ. सेठना ने अपनी पुस्तक ''समाज एवं अपराधी'' में उल्लेख किया है कि 1597 में भी कारागार थे और उनकी व्यवस्थित रूप से स्थापना हो चुकी थी, लेकिन प्राचीन कारागृह अत्यन्त ही भयानक थे। यहां पर बंदियों को चूहों और सुअरों की तरह रखा जाता था। ये कारागृह अपराधों में कमी लाने के स्थान पर उनमें वृद्धि किया करते थे, क्योंकि ये बदले की भावना पर आधारित होते थे।[1]

नावल मारिस ने अपनी पुस्तक ''कैद का भविष्य'' में लिखा है कि रोम, मिश्र, चीन, भारत, असीरियां एवं बेबीलोन के जेलों में दण्डात्मक व्यवस्था थी। यूरोप में भी इस व्यवस्था का दृढ़तापूर्वक पालन किया जाता था।[2]

वर्तमान में कारागार की व्यवस्था में अपराधी के जीवन सुधार पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। कारागार के बारे में हम जानते है कि यहां अपराधी को दण्ड देने के लिए तथा उस समय तक जब तक कि उसकी अदालती कार्यवाही चल रही है, रखा जाता है। अब इस बात को स्वीकार किया जाता है कि अपराधी को उसके परिवार एवं समाज से अलग रखकर जेल की सजा दी जाती है। कैद की सजा दो उद्देश्यों की पूर्ति करती है पहला अपराधी को शारीरिक प्रताड़ना देना और दूसरा समाज की रक्षा करना।

पूर्व में कैद खाने गैर सरकारी ठेकेदारों के द्वारा चलाये जाते थे, जो घूसखोरी एवं लाभ के

लिए कार्य करते थे। इन कैदखानों की स्थिति काफी दयनीय होती थी, इनमें शुद्ध वायु, पानी एवं प्रकाश तक की कोई व्यवस्था नहीं थी। कैदियों की इस दुर्दशा को देखते हुए सरकार द्वारा इन कैदखानों का संचालन किया जाने लगा। तथा कैदियों की बुरी दशा सुधारने का प्रयास किया जाने लगा।[3]

पूर्व में यह मत था कि अपराधी को एकांत में रखने एवं उसके साथ कठोर व्यवहार करने से अपराधी में सुधार आयेगा परंतु अनुभव बताते है कि कैद के दौरान अपराधी में सुधार होने की अपेक्षा बुरा प्रभाव अधिक पड़ता है। अपराधी को काल कोठरी में बंद करके रखने से उसके जीवन में सुधार नहीं आ सकता और न ही इसकी अपेक्षा भी की जानी चाहिए। किंतु यदि उसके साथ अच्छा व्यवहार किया जाये, तथा सज्जनों के संदर्भ में रखा जाये तो उनके जीवन में परिवर्तन हो सकता है। अपराधों की रोकथाम के लिए आधुनिक सुधारवादी कार्यक्रमों को अपनाकर एवं इन कार्यक्रमों को बढ़ावा देकर ही रूढ़ीवादी व्यवस्था में सुधार हो सकता है।[4] सन् 1553 ई. में सर थॉमस लेवर तथा विशप रिडले ने ब्रिटिश साम्राज्य से लंदन में ब्राइडवेल नामक पुरातन शाही राजमहल के आवारों, निष्क्रीय व्यक्तियों एंव दुराचारियों के लिए एक शरणाश्रम बनाने का अनुरोध किया। सुधारगृहों के इतिहास में यह शरणाश्रम प्रथम सुधार गृह था।

यूरोपीय देशों में सुधारगृहों का निर्माण डच द्वारा एम्सटर्डम (हालैंड) में सन् 1595 में किया गया। यह डच सुधारगृह अनिवार्य कार्य के सिद्धांत पर आधारित था, लेकिन आवारा, चोरों, उपेक्षित बच्चों, उपद्रवी स्त्रियों से संबंधित कार्यों से पृथक था। स्त्रियों के लिए बुनकर गृह का निर्माण सन् 1596 ई. में किया गया जबकि बच्चों के लिए पहला पृथक गृह का निर्माण 1600 ई. में किया गया कुछ ही वर्ष के पश्चात् जर्मनी में भी डच प्रतिमान के अनुसार सुधारगृहों का निर्माण हुआ साथ ही साथ स्विटजरलैंड ने भी इसी विचार का पालन करते हुये सुधार गृहों की स्थापना की।

इग्लैंड में आवारा तथा अपराधियों के सुधार के संबंध में 1597 ई. में एक ''एलिजावेथियन एक्ट'' ने सभी पूर्ववर्ती विधानों को निरस्त कर दिया। 1630 ई. में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के द्वारा सुधार गृहों को कारागार के रूप में समझा जाने लगा जिसके द्वारा छोटे-मोटे अपराधियों को कारागार में निष्क्रीय रखने की अपेक्षा श्रम कार्य में लगाया जाने लगा।

18 वीं सदी के अंत तक इंग्लैण्ड में कैदखाना वह स्थान माना जाता था जहां पर समाज के जीवाणु रहते थे। जान हावर्ड के सतत् प्रयासों से ही ब्रिटिश संसद ने 1824 में प्रथम बार कैद प्रशासन की

व्याख्या की। इसके बाद इंग्लैंड के कैद खानों में सुधार होना प्रारंभ हुआ, इसके साथ ही साथ यूरोप एवं अमेरिका में भी इन सुधारों को अपनाया गया।[5]

प्राचीन भारत की कारागृह व्यवस्था:

प्राचीन भारत के कारागृह वे स्थान थे जहां अपराधी को उसकी सजा सुना दिये जाने के बाद कैद करके रखा जाता था। प्रचीन भारतीय परम्परा के अनुसार जैसा 'मनु' और 'कौटिल्य' ने भी परिभाषित किया है कि इस काल में अपराधियों को शारीरिक प्रताड़ना, फांसी पर लटकाना, दागना, अंग विच्छेद करना, मृत्युदंड की सजा दी जाती थी।[6] इस प्रकार के दंड इस काल में अधिक कठोर नहीं माने जाते थे। हिन्दु धर्म ग्रंथों में भी इस प्रकार की दंड व्यवस्था को साधारण माना जाता था।

इस समय अपराधी को समाज से अलग रखा जाता था जिसका प्रमुख कारण था, इन अपराधियों का कुप्रभाव समाज के दूसरे व्यक्तियों पर न हो तथा वे समाज में पुन: विघ्न न पैदा कर सके।[7]

'वेद' विश्व के आदि ग्रन्थ है। वेदों में 'ईश्वर' को गलत या बुरे कार्यो के लिए न्यायाधीश की पद्वी प्रदान की गई है तथा उसके प्रायश्चित के लिए नर्क की व्यवस्था की गई है। भारतीय वेदों में वर्णित 'नर्क' को ही जेल या कारागृहों की संज्ञा दी जा सकती है लेकिन इस तथ्य की ओर भी ध्यान रखना होगा कि भारतीय दृष्टिकोण सुधारात्मक था।

'मनुस्मृति' में अपराधी को सजा देने की व्यवस्था थी। यह सजा कारागृह, दण्ड, जुर्मनि के रूप में हो सकती थी।

'रामायण' और 'महाभारत' का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इस युग में भी कारागृहों की व्यवस्था थी। महाभारत में इस तथ्य का उल्लेख प्राप्त होता है कि 'देवकी' और 'वसुदेव' को राजा कंश ने बंदीगृह में ही रखा था और 'भगवान श्रीकृष्ण' का जन्म भी कारागृह में ही हुआ था। इस युग के बंदीगृह आज के बंदीगृहों के ही समान थे। रामायण में भी कारागृहों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है रावण का कारागृह भी अत्यंत प्रसिद्ध था ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि रावण के कारागार में सूर्य, चंद्र, वायु तथा अन्य देवी देवता भी बंदी थे। इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में कारागृहों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

पूर्व-बौद्धिक युग में भी कारागृहों का अस्तित्व था। उस वक्त के कारागृह अत्यंत कष्टकारक थे। कारागृहों में अपराधियों को बांधकर रखा जाता था और उन्हें वजन के नीचे दबाया जाता था। प्राचीन

भारतीय कारागार पूर्णत: काल कोठरियों के समान थे जहां सीढ़न, अंधकार एवं प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं थी, इन कारागारों में सफाई व्यवस्था पर भी ध्यान नहीं दिया जाता था, तथा इन कारागारों में कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता था।[8]

प्राचीन भारतीय कानून विद्वानों के अनुसार कारागृहों के जीवन के बारे में जो बाते ज्ञात हुई , उनकी समीक्षा एवं उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर कारागारों की स्थिति एक स्पष्ट तस्वीर ज्ञात होती है। कुछ ''स्मृति लेखकों'' ने प्राचीन कारागृहों के बारे में जो जानकारी प्रदान की है उनके अनुसार हत्या करने वाले के लिए मृत्युदंड निश्चित था। ''याज्ञावल्क'' के अनुसार जो कैदी भागने का प्रयास करेगा उसे फांसी की सजा या अर्थ दण्ड प्रदान किया जाता था। विष्णु के अनुसार जो अपराधी किसी व्यक्ति की आंखों को क्षतिग्रस्त करता था उसे आर्थिक दण्ड प्रदान किया जाता था।[9]

'कौटिल्य' के अनुसार जेल को राजधानी में आम सड़कों पर निर्मित होना चाहिए, जिसमें स्त्री एवं पुरूष कैदियों को अलग-अलग रखने की व्यवस्था हो। उन्होंने कैदियों की समस्याओं पर काफी गहनता से अध्ययन करते हुए स्पष्ट किया कि हर पांचवे दिन कुछ कैदियों को स्वतंत्र कर देना चाहिए। कुछ कैदियों को हल्का या सामान्य शारीरिक दण्ड देकर या कुछ आर्थिक दण्ड देकर स्वतंत्र कर देना चाहिए, जब वे अपने अपराध का पश्चाताप करें तथा यह प्रतिज्ञा लें कि वे समाज की प्रगति के लिए कार्य करेंगे। 'चाणक्य ' ने राजा चन्द्रगुप्त मौर्य को आम सड़कों पर कारागारों का निर्माण करने की इसलिए सलाह दी थी ताकि आम लोग कैदियों को देखकर डरें ओर अपराध न करें। 'कौटिल्य' के अनुसार राजकुमार के जन्म या ताजपोसी जैसे खुशी के अवसरों पर अपराधी को क्षमादान दिया जाता था। 'कौटिल्य' के अनुसार सामाजिक उत्सवों के अवसर पर राजनैतिक अपराधियों को क्षमादान दे दिया जाता था। एक अवसर वह होता था जब राजा का जन्मदिवस मनाया जाता था, वे कारागार का निरीक्षण करते थे तथा वृद्ध, बीमार कैदियों को रिहा करने का आदेश प्रदान करते थे, ताकि वे सामान्य नागरिकों की तरह बाकी जीवन बिता सकें।

'कौटिल्य' ने जेल अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कर्तव्यों का भी उल्लेख किया है। जेल अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे कैदियों की गतिविधियों पर नजर रखें, साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखें कि जेल के कर्मचारी अपने कार्य को ठीक प्रकार से अंजाम दें।

यदि कोई कैदी अपने निर्धारित स्थान से अन्य स्थान पर जाता है तब उस पर 24 रू. जुर्माना

किया जावे तथा उसके निरीक्षक पर दो गुना जुर्माना किया जावे। यदि निरीक्षक जेल के अन्य नियमों का उल्लंघन करता है तब उस पर 500 रू. तक का जुर्माना किया जावे।

'कौटिल्य' के अनुसार यदि कोई अपराधी जेल की दीवार तोड़कर भागने का प्रयास करता है तब उसे मृत्युदण्ड दिया जावे। और यदि किसी निरीक्षक की सख्ती के कारण किसी कैदी की मृत्यु हो जाती थी तो उस पर 1000/- रूपया का जुर्माना किया जाता था। इसका तात्पर्य यह है कि अधिकारी हर समय सतर्क और सावधान रहे।[10]

'सम्राट अशोक' के शासन काल में कैदखाना यातनागृह होता था, इन कैदखानों में कैदियों को बहुत अधिक प्रताड़ित किया जाता था, कैदियों की मृत्यु इन कैदखानों में ही हो जाती थी।[11]

'सम्राट अशोक' में बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने के कारण मानवीय परिवर्तन आया और उसने कारागृहों में कई सुधार किये। प्रो. रामचंद्र ने पुस्तक "मौर्यन पॉलटी" में यह उल्लेख किया है कि सम्राट अशोक अर्थशास्त्र का ज्ञाता था, उनके 26 वर्षीय शासन काल में उन्होंने 25 जेलों का सुधार किया।[12]

अशोक से पूर्व जातक कथाओं में कैद की कुछ अवधारणाओं एवं समाज का प्रभाव मिलता है। 'सीआ जातक नं. 283' के अनुसार राजा किसी भी अधिकारी को जेल भेज सकता था जिसने अपराध किया है परन्तु यदि राजा को बाद में ज्ञात होता कि वह अपराध उसने नहीं किया तो वह उसे छोड़ देता था। 'जातक नं. 201' में अपराधी को कैद में रखने तथा जातक नं. 427 में राजनैतिक कैदी को युद्ध के दौरान उसे सेना में शामिल किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। प्राचीन भारत में कैदियों को जेल से मुक्त करना एक सामान्य बात थी।[13]

'हर्षचरित' के अनुसार कैदियों की स्थिति पहले की अपेक्षा संतोषप्रद थी। 'हेनसांग' के रिकार्डो से ज्ञात होता है कि कैदियों के साथ कठोर व्यवहार किया जाता था उन्हें दाढ़ी बनाने तक की अनुमति नहीं दी जाती थी। कुछ विशेष अवसरों पर कैदियों को मुक्त कर दिया जाता था। 'कालीदास' के उपबंधों के अनुसार यदि राजा का जन्म अच्छे मुहूर्त में नहीं होता था, तब ज्योतिषी यह सलाह देते थे कि कैदियों को जेल से रिहा कर दिया जाये।

राजा के राज्याभिषेक (राजतिलक) के दौरान सभी कैदियों को जेल से रिहा करने का भी उल्लेख मिलता है।

'भरत संहिता' के अनुसार जब राजा पवित्र स्नान करते थे तो इस अवसर पर भी कैदियों को जेल से मुक्त कर दिया जाता था।[14] प्राचीन भारतीय इतिहास इन बातों को प्रमाणित करता है।

प्राचीन भारतीय पुरातत्व विभाग ने 'राजगीर' नामक पंपलेट में 'बिम्बसार' के समय की जेल का वर्णन किया जिसमें यह दर्शाया गया है कि "प्रमुख मार्ग जो दक्षिण की ओर जाता है, मनिहार मन से 3/4 मील दूर पर आगन्तुओं के लिए 200 फीट पत्थरों से ढकी जगह जिसमें 6 फुट मोटी दीवाल थी।" ये उस जेल का वर्णन है जिसमें 'बिम्बसार' को उसके पुत्र अजातशत्रु ने कैद किया था। इस जेल से 'बिम्बसार' बुद्ध की प्रतिमा देखा करते थे, जिसका कुछ भाग ही दिखलाई देता था। इस जेल में लोहे की जंजीरे भी लगीं थीं। जिनका प्रयोग कैदियों को हथकड़ी लगाने के लिए होता था।[15] जेल के अधिकारियों को "बन्धनागाराध्यक्षा एवं कारका" कहा जाता था। प्रथम जेल अधीक्षक और द्वितीय उसका सहयोगी होता था। जेल विभाग सन्निदाता के अधीन होता था, जिसे किसी स्थान को चुनने का अधिकार होता था जिस पर आवश्यक भवन का निर्माण किया जाता था।[16]

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत की जेल एवं दंड व्यवस्था की कोई विशेष पद्धति नहीं थी जिसकी तुलना भारत की किसी आधुनिक पद्धति से की जा सके।[17]

मध्यकालीन भारत की कारागार व्यवस्था :

मध्यकालीन वैधानिक व्यवस्था भारत की प्राचीन व्यवस्था से काफी मिलती जुलती है। समकालिक मुस्लिम शासकों ने भारत में श्रेष्ठ न्याय व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास किया था। मुगलकाल में वैधानिक न्याय व्यवस्था 'कुरान' पर आधारित थी। अपराधों को तीन वर्गो में विभाजित किया गया था :

(अ) ईश्वर (खुदा) के विरूद्ध अपराध

(ब) राज्य के विरूद्ध अपराध

(स) व्यक्तिगत अपराध

इन अपराधों के लिए दंड चार प्रकार का था :

(अ) हद   (ब) ताहिर

(स) क्वासस (Quiras) और   (द) ताशिर[18]

इन सजाओं में शामिल था- जुर्माना, जप्त करना, अर्थ दंड, अपमानित करना, देश निकाला, कोड़े की मार, अंग विच्छेद करना, फांसी पर लटकाना, शारीरिक यातनायें देना इत्यादि।

साधारण अपराधियों को उपरोक्त सजायें नहीं दी जाती थीं। उन्हें कुछ समय के लिए जेल में रखा जाता था। देश के विभिन्न भागों में गढ़ थे, जहां अपराधियों को न्यायिक कार्यवाही पूर्ण होने तक रखा जाता था।[19]

'मुगलकाल' में देश में केवल तीन प्रमुख जेल थे- पहला ग्वालियर में, दूसरा रणथम्भौर में और तीसरा रोहतास में जिन अपराधियों को मृत्युदंड की सजा होती थी उन्हें रणथम्भौर की बंदीगृह में रखा जाता था तथा उन्हें दो माह के बाद मृत्युदंड की सजा दी जाती थी।

'ग्वालियर' में कुलीन वर्ग के अपराधियों को रखा जाता था। रोहतास जेल में उन अपराधियों को रखा जाता था जो निरंतर अपराध करते थे, ये अपराधी इस जेल से वापिस घर नहीं लौट पाते थे। शाही परिवार के अपराधियों को भी इसी जेल में रखा जाता था।[20] ज्यादातर कैदियों को एक जेल से दूसरे जेल में स्थानांतरित किया जाता था। मुस्लिम विधान के अनुसार काजी जेल जाकर अपराधियों से मिलता था, तथा जो कैदी पश्चाताप करते थे उन्हें रिहा कर दिया जाता था। काजियों को यह अधिकार प्रदान था कि वे कारागार जाकर कैदियों की दशा की जानकारी प्राप्त करें। विशेष अवसरों पर कैदियों को जेल से रिहा कर दिया जाता था, ये अवसर थे- उत्तराधिकारी राजकुमार के जन्म के समय सम्राट या उसके राजकुमार की लम्बी बीमारी के बाद अच्छा होने के समय इत्यादि।

'राजकुमार सलीम' के जन्म के समय सम्राट अकबर की आज्ञा पर बहुत से कैदियों को जेल से रिहा किया गया था। इसी प्रकार 1638 में शाहजहाँ ने अपनी प्रिय बेगम साहिबा के बीमारी से अच्छा होने पर कैदियों को जेल से रिहा किया था।

इस वक्त के कैदियों को जेल में लोहे की जंजीरो (बेड़ियों) से जकड़ा जाता था। ये जंजीरें कैदियों के पैरों से लेकर गले तक में बांधी जाती थी।[21]

'शेरशाह' का न्याय शासन निष्पक्ष तथा कठोर था। ऊंचे कुल तथा पद वालों को भी वह उसी तरह दण्ड देता था जैसे कि वह निम्न कुल वालों को दिया करता था। गंभीर अपराधियों को वह कारावास की सजा देता था।

मराठा काल में भी कैदियों को कारागार में दंड देने के लिए रखा जाता था। मृत्युदंड, अंगविच्छेद, जुर्माना करना आदि इस काल में दंड प्रदान करने के सामान्य तरीके थे। दंड के स्वरूप भारत के प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तथा मराठाकाल तक एक समान थे।[22] किले के कुछ कमरों को बंदी खाना या अदबखाना के नाम से जाना जाता था, यहां पर उन अपराधियों को रखा जाता था, जो गंभीर अपराध किया करते थे।[23] अपराधियों से उनके अपराध की गंभीरता के अनुसार व्यवहार किया जाता था। और अपराध की गंभीरता के अनुसार ही कैदियों को अलग-अलग स्थानों पर भेज दिया जाता था।

निम्न जाति के लोगों विशेषकर व्यभिचारी स्त्रियों जिसमें उच्च जाति की स्त्रियाँ भी शामिल होती थीं उनसे किले के निर्माण के लिए कठोर श्रम लिया जाता था। कैदियों (अपराधियों) की श्रेणी के अनुसार उनके भोजन की मात्रा व गुण को निर्धारित किया जाता था। त्यौहारों के उपलक्ष्य में कैदियों को घर जाकर त्यौहार मनाने की अनुमति प्राप्त होती थी। 'पेशवा' जो राज्य प्रमुख व धर्म प्रमुख होता था उसे शुल्क देकर जेल के अंदर धार्मिक अनुष्ठान करवाया जाता था। स्वास्थ्य के खराब होने पर कैदी को जेल से छोड़ दिया जाता था।

राजनैतिक कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था, लेकिन उनका जेल के बाहर के लोगों से एवं अपने संबंधियों से मिलना जुलना वर्जित था। उन्हें सभी प्रकार की सुविधायें दी जाती थीं और साथ ही साथ अच्छा भोजन भी दिया जाता था।[24]

इस प्रकार न तो प्राचीन काल में और न ही मध्यकालीन भारत में कारागार को दंड देने का स्थान माना जाता था। प्रमुख रूप से पूर्व ब्रिटिश काल के समय भारतीय कारागार व्यवस्था इस प्रकार की थी :

(1) इस समय के कारागारों में आधुनिकता नहीं थी।

(2) कारागारों की आंतरिक प्रशासनिक व्यवस्था का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ।

(3) अलग से कारागारों की व्यवस्था नहीं थी और न ही न्यायालयों से कारागृहों का कोई संबंध था।

(4) कारागृहों की देखभाल एवं व्यवस्था के लिए कोई नियम नहीं थे।[25]

ब्रिटिश भारत में कारागृह व्यवस्था और आधुनिक कारागृह व्यवस्था का जन्म:

प्राचीन काल से ही भारत में कैदियों को कारागार में रखा जाता था, परंतु यह व्यवस्था वर्तमान व्यवस्था से पूर्णत: अलग थी अत: प्राचीन कालीन एवं आधुनिक व्यवस्था में कोई तालमेल नहीं है। वर्तमान भारत की कारागार व्यवस्था मुख्यरूप से ब्रिटिश पद्धति पर आधारित थी जिसके कारण मुख्यत: उस पर इंग्लैण्ड की कारागार पद्धति का प्रभाव है, साथ ही साथ अमेरिकन कारागार व्यवस्था का भी भारतीय कारागार व्यवस्था पर प्रभाव देखने को मिलता है। अत: ब्रिटिश भारत की कारागार व्यवस्था को जानने से पूर्व इंग्लैण्ड और अमेरिका की प्राचीन काल से लेकर वर्तमान काल तक की कारागार व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय का अध्ययन करना आवश्यक है।

इंग्लैण्ड की कारागृह व्यवस्था:

अठारहवीं शताब्दी के अंत तक इंग्लैण्ड के जेलों में कैदियों के प्रति कठोर एवं अमानवीय व्यवहार किया जाता था। 'जान हावर्ड' ने इस वक्त इंग्लैण्ड के कारागारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि ये कारागार सीलन युक्त, कीड़े-मकोड़ों से भरे हुये व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुये थे। धर्म प्राचारकों एवं धर्म गुरूओं ने भी कैदियों की इस दुदर्शा पर दुख व्यक्त किया और उन्होंने कारागारों की दशा सुधारने एवं कैदियों के प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किये जाने की मांग की। इन धर्म गुरुओं में पोप XI का प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय है, उन्होंने घेन्ट (Ghent) में एक कोठरियों युक्त कारागार का निर्माण करवाया।

'डोलनाल्ड टेफ्ट' ने इंग्लैण्ड के कारागारों का वर्णन करते हुए लिखा था कि इंग्लैण्ड के प्रारंभिक कारागारों में स्त्री-पुरूषों, बूढ़े-जवानों तथा बच्चों सभी को एक साथ रखा जाता था। कैदियों को भोजन जेल प्रशासन से प्राप्त नहीं होता था, कैदियों को स्वयं के खर्चे पर उदर-पोषण करना होता था और जो इसमें असमर्थ रहते थे वे कैदी भूख से मर जाया करते थे, कैदियों की दशा जानवरों से भी बदतर थी।[26]

18 वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इंग्लैण्ड में धर्म प्रधानता चरम पर थी, अधिकांश व्यवस्थाओं पर धर्म गुरुओं का नियंत्रण था। जिसमें कारागार व्यवस्था भी शामिल थी। कारागार व्यवस्था के संदर्भ में धर्म गुरूओं ने यह प्रतिपादित किया था कि दण्ड देने का मुख्य उद्देश्य अपराधी के प्रति बदले की भावना न होकर

उसके द्वारा किये गये अपराध के लिए पश्चाताप करने का अवसर प्रदान करना है। 1776 में 'हररोम' नामक स्थान में एक पेनिटेन्शियरी को स्थापित किया गया जहां पर कैदियों को एकांत में रखा जाता था ताकि वे आत्मचिंतन कर सकें तथा अपने भविष्य को सुधार सकें। एकांत कारावास के इन कैदियों से दिन के समय श्रम करवाया जाता था ताकि उनकी एकांत कारावास की नीरसता समाप्त हो जाये साथ ही साथ वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से भी स्वस्थ रह सकें।

यद्यपि इंग्लैण्ड के कारागृहों में सुधार के कई प्रयास किये गये थे लेकिन इन सुधारों की वास्तविक शुरूआत 1778 से मानी जाती है जब ब्रिटिश संसद द्वारा कारागृहों के संबंध में एक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत कैदियों के लिए अनेकानेक सुविधायें प्रदान की गईं तथा कारागृहों की कार्य-पद्धति की पुन: संरचना की गई। कैदियों के पुर्नवास पर मुख्य रूप से ध्यान दिया गया जिससे कि वे कुंठा और तनावग्रस्त न हों। 1791 में बेन्थम ने अपनी पुस्तक ''पेनोप्टिकन'' में कारागारों की भवन व्यवस्था की जो तस्वीर खीचीं थी, उसे स्वीकार किया गया और उसी के अनुसार वृत्ताकार कारागारों की स्थापना की गई, 1813 में कारागार सुधार का कार्य ''सोसाइटी ऑफ फ्रेन्ड्स'' के सदस्यों को सौंपा गया। 1817 में ''सोसाइटी फार द इम्प्रूवमेंट इन प्रिजन डिसीपिलीन'' की स्थापना की गई।

सन् 1821 में 'मिल बैंक नगर' में एक राष्ट्रीय कारागार का निर्माण किया गया, जिसमें उन बंदियों को रखे जाने की व्यवस्था की गई थी जिन्हें देश निष्कासन का दण्ड दिया जाता था।

सन् 1824 में लार्ड के प्रयासों के परिणामस्वरूप कारागृहों के समस्त नियमों को ब्रिटेन की संसद द्वारा स्वीकार किया गया साथ ही यह प्रावधान किया गया कि नये कारागृह तभी स्थापित होंगे जब उनमें संसद द्वारा पारित व्यवस्था तथा सुविधायें प्राप्त हों और गृह सचिव उन सुविधाओं को देखकर अपनी अनुमति प्रदान कर चुके हों। 1833 के वक्त कैदियों को एक निश्चित अवधि के पश्चात् अपने परिजनों से मिलने की सुविधा प्रदान की गई, साथ ही साथ बाहरी व्यक्तियों को भी कारागारों की आन्तरिक व्यवस्था का अवलोकन करने की अनुमति प्रदान की गई।

सन् 1835 में ब्रिटेन के समस्त कारागारों की देखरेख का उत्तरदायित्व राष्ट्रीय सरकार को सौंपा गया और विशेष प्रकार के कारागार निरीक्षकों की नियुक्ति की गई। सन् 1839 में 'कारागार

अधिनियम ' पारित किया गया जिसका प्रमुख प्रावधान था पृथक-पृथक कैदियों को पृथक-पृथक रखना।

सन् 1842 में ''पेन्टोनकाइल'' कारागृह की स्थापना एक आदर्श कारागृह के रूप में की गई।

सन् 1850 में ब्रिटिश संसद द्वारा एक कारागार जांच समिति की नियुक्ति की गई, जिसने कारागृह व्यवस्था के प्रमुख अवगुणों का अध्ययन करके उनमें सुधार करने के लिए विभिन्न सुझाव दिये।

सन् 1863 में हाउस ऑफ लार्ड्स द्वारा गठित समिति ने स्पष्ट रूप से यह कहा कि विभिन्न प्रकार के कैदियों को एक साथ रखना न केवल अनावश्यक बल्कि हानिप्रद भी है। इस समिति के द्वारा प्रदान किये गये सुझावों को 1865 में कारागार-अधिनियम में शामिल किया गया। इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात स्थानीय कारागृह को भंग कर दिया गया एवं 1877 के कारागृह अधिनियम के अन्तर्गत ब्रिटेन के सभी कारागृहों की देखरेख का उत्तरदायित्व एक केन्द्रीय अधिकारी को सौंपा गया। इस स्थिति में देश भर के कारागृहों के लिए एक ही प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था निर्धारित की गयी थी।

सन् 1894 में 'ग्लेडेस्टोन समिति ' की सिफारिशों के आधार पर कैदियों को समूहों में विभाजित करके उनसे उत्पादक श्रम कार्य करवाया जाने लगा। कैदियों का वर्गीकरण किया गया तथा बाल अपराधियों के लिए सुधारगृहों की भी व्यवस्था की गई। 'ग्लेडेस्टोन समिति 'की सिफारिशों के अनुसार ही इंग्लैण्ड में सन् 1898 में 'कारागार अधिनियम' तथा इसके बाद 1908 में 'बाल अधिनियम' पारित किया गया। 1898 के आदर्श कारागार अधिनियम के आधार पर उस समय के समस्त बंदीगृहों की प्रशासनिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया था।

17वीं और 18वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में भारी उथल-पुथल हुई जिसके कारण इंग्लैण्ड में सुधारगृह पद्धति लागू होने के बाद भी कारागृहों में कई समस्यायें उत्पन्न हुईं युद्ध अपराधियों तथा राजनैतिक अपराधियों की भरमार होने के कारण इन कारागृहों की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई, तथा कारागृहों में कैदियों को रखना मुश्किल हो गया। कारागृहों में उत्पन्न हुई इन समस्याओं से निपटने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अपने उपनिवेशों में दाण्डिक बस्तियाँ स्थापित कीं , जहां युद्ध कैदियों या राजनैतिक कैदियों को ''देश निकाला'' का दण्ड देकर अमेरिका जैसे सुदूर देश में भेज दिया जाता था। अमेरिका के बाद जब आस्ट्रेलिया भी ब्रिटिश उपनिवेश के अंतर्गत आया तो फिर ब्रिटिश कैदियों को यहाँ पर भी भेजा जाने

लगा। इंग्लैण्ड में "देश से निष्कासन" के दण्ड के दो फायदे हुये- पहला यह कि हजारों कैदियों को उपनिवेश देशों में भेजने से ब्रिटेन के कारागृहों में कैदियों की संख्या पर नियंत्रण रखना संभव हुआ और दूसरा ब्रिटेन के इन उपनिवेशों में श्रमिकों की कमी की समस्या स्वत: हल हो गई। ऐसे कैदी जिन्हें आस्ट्रेलिया भेजा जाता था वे मुख्यत: 3 श्रेणियों में विभाजित थे:

(1) ऐसे कैदी जिन्हें जन्म भर के लिए देश निकाला का दण्ड दिया गया हो। इंग्लैण्ड के ये कैदी स्थायी रूप से आस्ट्रेलिया में ही बस जाते थे।

(2) ऐसे कैदी जिन्हें सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया हो। ये कैदी आस्ट्रेलिया जाकर सड़क-निर्माण आदि श्रम के कार्य करते थे दण्ड की अवधि पूर्ण होने पर कैदियों को इस बात का विकल्प प्राप्त था कि वे चाहें तो आस्ट्रेलिया के नागरिक बनकर रह सकते थे या चाहें तो वापिस इंग्लैण्ड लौट सकते थे।

(3) ऐसे कैदी जिन्हें पैरोल-पत्र पर देश निकाला दिया जाता था, एक निश्चित अवधि व्यतीत करने के बाद आस्ट्रेलिया से इन्हें कारावकाश पर इंग्लैण्ड आने का अधिकार प्राप्त था। ऐसे कैदियों को सशर्त या बिना शर्त मुक्ति प्रदान कर दी जाती थी।

लेकिन कुछ वर्षों के अंदर ही ब्रिटिश कैदियों को 'देश निकाला' की सजा देकर आस्ट्रेलिया भेजने की प्रथा के कारण कई समस्यायें उठ खड़ी हुईं। जिनमें सर्वप्रमुख थी स्वतंत्र अंग्रेज रहवासियों और निष्कासित ब्रिटिश कैदियों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना। इसके अलावा एक समस्या यह भी थी कि कैदी बस्तियों में महिलाओं की अत्यंत न्यून संख्या थी परन्तु अधिकांश कैदी पुरूष थे जिसके कारण वैवाहिक (सेक्स) संबंधी समस्यायें उत्पन्न होने लगी थी। इसके साथ-साथ कैदियों को इंग्लैण्ड से आस्ट्रेलिया भेजने पर अत्याधिक धन खर्च होता था, 'देश निकाला' पद्धति एक मंहगी पद्धति साबित हो रही थी।

उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुये सन् 1852 में ब्रिटिश सरकार ने कैदियों को निष्कासित करने की प्रथा पर पूर्ण रूप से रोक लगा दी। मुख्यत: 'लाइनेल फॉक्स' को ब्रिटिश कारागार व्यवस्था को सुधारने का श्रेय दिया जाता है। सर फॉक्स ब्रिटेन के कारागार आयोग के 1925 से 1934 तक सचिव रहे तथा इसके बाद 1942 से 1960 तक सर फॉक्स ब्रिटेन कारागार आयोग के अध्यक्ष रहे। उन्होंने ब्रिटिश कारागार व्यवस्था में सुधार के लिए निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने को कहा-

(1) जेल प्रशासन जनता को कारागृहों में किये जाने वाले सुधारों की जानकारी देते रहें, साथ ही

साथ जन-प्रतिनिधियों को समय-समय पर कारागृहों के निरीक्षण के लिए आमंत्रित करते रहें ताकि लोगों को कारागृहों के क्रिया-कलापों के बारे में किसी भी प्रकार का शक न रहे।

(2) कारागृहों की दण्ड व्यवस्था को अधिक प्रभावी बनाने के लिए सर फॉक्स ने दण्ड के विभिन्न सिद्धांतों के समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने कहा कि दण्ड को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए, दण्ड में कठोरता नहीं, अपितु निश्चितता होना जरूरी है।[27]

सर फॉक्स के कारागृह संबंधी सुधारों को ब्रिटेन में 'क्रिमिनल जस्टिस एक्ट', 1948 के द्वारा लागू किया। सर फॉक्स ने खुली जेलों के महत्व को समझाते हुये अपने अध्यक्षीय कार्यकाल के समय ब्रिटेन में खुले कारागृहों की संख्या एक से बढ़ा कर तेरह तक कर दी, जिनमें से 3 सिर्फ महिलाओं के लिए थे। इसी प्रकार खुले बोर्स्टलों की संख्या भी बढ़ाकर एक से पंद्रह तक की, जिनमें से दो सिर्फ लड़कियों के लिए थे। सर फॉक्स ने 1953 में 'ब्रिस्टल' नामक स्थान पर लंबी अवधि की सजा पाये कैदियों के लिए एक हॉस्टल स्थापित करवाया। इस हॉस्टल में इंग्लैण्ड के 'निवारक नजरबंदी कानून (1953)' के अंतर्गत बंदी बनाये गये कैदियों को उनकी रिहाई के कुछ दिनों पूर्व रखा जाता था, इस हॉस्टल में कैदियों को केवल रात्रि के समय ही उपस्थित होना अनिवार्य था, तथा वे दिन के समय सामान्य व्यक्तियों की तरह अपने कामकाज एवं व्यवसाय करने की छूट प्रदान की। कुछ समय पश्चात् इस सुविधा को सभी दीर्घकालीन कैदियों के लिए उपलब्ध करा दिया गया। सन् 1962 तक इंग्लैण्ड में इस प्रकार के सोलह हॉस्टल, जिनमें दो स्त्रियों के लिए थे, कार्यरत थे।

इंग्लैण्ड के 'क्रिमिनल जस्टिस एक्ट 1982' के द्वारा कैदियों के लिए पैरोल संबंधी नियमों में पर्याप्त ढील दी गई जिससे की जेलों में कैदियों की संख्या में कमी आ सके। इंग्लैण्ड में जेलों में कैदियों की भीड़ को कम करने के लिए ऐसे कैदियों को जिन्होंने अपनी सजा का एक तिहाई हिस्सा काट लिया हो, बिना पैरोल-बोर्ड के निर्देशों के ही रिहा कर दिया जाता है।

वर्तमान समय में इंग्लैण्ड में कैदियों के द्वारा, बारह माह की सजा, या अपनी सजा का एक तिहाई या इनमें से जो भी अधिक हो पूरी कर लेने पर उन्हें पैरोल पर रिहा कर दिया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप कारागृहों में कैदियों की भीड़ पर अंकुश लगा है।

वर्तमान समय में इंग्लैण्ड की कारागार व्यवस्था आधुनिक सिद्धांतों पर आधारित है। जेलों

का प्रशासन योग्य अधिकारियों के द्वारा संचालित किया जाता है। इन जेलों में कैदियों के लिए सभी मूलभूत सुविधायें उपलब्ध हैं। जेल प्रशासन कैदियों को सुधारने पर विशेष बल देते हैं ताकि वे अपना आने वाला समय एक सामान्य नागरिक की तरह व्यतीत कर सकें। इंग्लैण्ड में कैदियों को दण्ड देने की अपेक्षा उनके उपचार पर विशेष बल दिया जा रहा है, जो कि प्रगतिवादी दण्डशास्त्र का मूल सिद्धांत है।

अमेरिका की कारागार व्यवस्था:

मध्य युग में अमेरिका की कारागार व्यवस्था अत्याधिक अमानवीय तथा बर्बर थी। अमेरिका के उपनिवेश में अपराधियों को कठोर एवं नृशंस दण्ड दिये जाने का उल्लेख मिलता है। साधारण अपराध करने पर भी अपराधी को कोड़े से मारा जाता था तथा खुलेआम अपमानित करने एवं मारने जैसे कठोर दण्ड दिये जाते थे। कैद का दण्ड केवल उन अपराधियों के लिए दिया जाता था। जब किसी के द्वारा धार्मिक अपराध या राजनैतिक अपराध किया जाता था, या जो युद्ध अपराधी हो या जिसने अपने ऋण का पूर्ण भुगतान न किया हो। जिन अपराधियों को कैद की सजा दी जाती थी उन्हें कठोर यातनाएँ दी जाती थी जिससे कि वे अपना अपराध स्वीकार कर लें या लिए गये ऋण का भुगतान कर दें। इन कठोर यातनाओं के कारण कई कैदियों की मृत्यु तक हो जाती थी, इस वक्त के कारागृहों की स्थिति अत्यंत ही खराब थी तथा इनमें कैदियों की स्थिति को सुधारने पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाता था। कारागृहों में होने वाले इन अमानवीय व्यवहारों के प्रति धीरे-धीरे अमेरिका में जनमत तैयार होने लगा तथा 1682 में 'पेन्सेल्वानिया' में सर्वप्रथम कैदियों के प्रति होने वाले अमानवीय व्यवहार के प्रति आवाज उठाई गई। इसी के परिणाम स्वरूप 1682 में ही 'पेन्सचार्टर' पारित किया गया। इस चार्टर का मुख्य उद्देश्य कारागृहों की स्थिति में सुधार तथा कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार करना था। 'पेन्स चार्टर 1682' के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे-

(1) कैदियों को जमानत पर रिहा करने की व्यवस्था की गई।

(2) संदेह में गिरफ्तार किये गये कैदियों को या त्रुटिवश गिरफ्तार लोगों को क्षतिपूर्ति के रूप में दुगुनी राशि दिलाई जाने लगी।

(3) कैदियों को मूलभूत सुविधायें जैसे-भोजन, पानी, आवास इत्यादि सुविधायें प्रदान किये जाने का प्रावधान किया गया।

(4) अपराधियों को सार्वजनिक रूप से जनता के बीच अपमानित करने की प्रथा को पूर्णरूप से

समाप्त कर दिया गया।

उत्तरार्द्ध के वर्षों में अमेरिकन कारागृहों में निरंतर सुधार होना आरंभ हुआ तथा कैदियों से मानवीय व्यवहार किये जाने पर बल दिया जाने लगा। सन् 1775 के 'क्वेकर्स आंदोलन' को अमेरिकन कारागार प्रणाली में सुधार को वास्तविक श्रेय दिया जाता है। क्वेकर्स जो कि एक धार्मिक समुदाय था, इसके समर्थकों ने कैदियों को कारागृहों में यातनायें दिये जाने का विरोध किया तथा मृत्यु दण्ड देने के स्थान पर 'एकांत कारावास' का दण्ड दिये जाने की मांग की। इसी आंदोलन के फलस्वरूप फिलेडेल्फिया के कारागार में नवीन प्रणाली लागू की गई तथा कारागार की व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया गया। बार्न्स एवं टीटर्स, फिलेडेल्फिया की बॉल्टन स्ट्रीट जेल को न केवल संयुक्त राज्य अपितु विश्व में भी कारागार व्यवस्था का व्यवहारिक जन्म स्थान मानते हैं।[28]

इस सुधार के अनुसार कैदियों को दो समूहों में रखा गया। प्रथम समूह में घातक कैदी तथा द्वितीय समूह में सुधार योग्य कैदी थे।

घातक कैदियों को एकान्त कारावास की सजा दी जाती थी, तथा उनसे किसी भी प्रकार का कार्य नहीं लिया जाता था। जबकि सुधार योग्य सामान्य कैदियों को सामूहिक रूप में कारागृहों की कोठियों में रखा जाता था तथा दिन के वक्त उनसे श्रम कार्य करवाया जाता था। जिसका उन्हें पारिश्रमिक भी दिया जाता था कारागारों में महिला कैदियों को पृथक कोठरियों में रखा जाता था। इन कारागृहों में धर्मोपदेशकों की व्यवस्था भी की गई थी। फिलिडेल्फिया कारागार व्यवस्था का परिणाम जहां कैदियों को सर्वप्रथम श्रम के लिए पारिश्रमिक दिये जाने की प्रथा शुरू हुई वहीं कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार भी किया जाने लगा।

लेकिन 19वीं सदी के पूर्वाद्ध में अमेरिका में राजनैतिक उथल-पुथल व आन्तरिक अशान्ति के कारण इन कारागारों में कैदियों की संख्या इतनी अधिक हो गई कि उन पर नियंत्रण रखना असंभव हो गया साथ ही साथ जेलों के अनुशासन में भी गिरावट आई, इसी के परिणामस्वरूप एक आदर्श कारागार स्थापित किये जाने की आवश्यकता महसूस की गई तथा 'पेन्सेल्वेनिया' व 'आर्बन' नामक दो आदर्श कारागारों की स्थापना एक साथ की गई।

पेन्सेल्वेनिया पद्धति:

इस पद्धति को सर्वप्रथम सन् 1790 में वाल्टन स्ट्रीट बंदीगृह में लागू किया गया। इसमें सिर्फ राजकीय अपराधियों को रखा जाता था। इस कारागार में प्रत्येक कैदी को पृथक एकांत कोठरी में रखा जाता था। एकांत कारावास की सजा देने का यही उद्देश्य होता था कि कैदी एकांत कारावास के समय आत्मचिंतन कर सकें तथा अपनी आपराधिक प्रवृत्ति को छोड़ सकें। परंतु एकांत कारावास के वक्त होने वाली असहनीय यातनाओं के कारण अधिकांश कैदी कैद से मुक्त होने के पूर्व ही मर जाते थे तथा जो लोग बच भी जाते थे उनमें से अधिकांशतः अर्ध-विक्षिप्त हुआ करते थे। इसके कारण ही कुछ वर्षों के बाद एकांत कारावास की सजा काट रहे कैदियों को 'कार्य' दिया जाने लगा परंतु उनको किसी से वार्तालाप की अनुमति प्राप्त नहीं थी, कैदियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय उनके चेहरों को हुड से ढक दिया जाता था ताकि वे किसी को भी न देख सकें, केवल बंदीगृहों के वार्डन धर्मोपदेशक तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता ही बंदीगृहों में बंदियों से वार्तालाप कर सकते थे। बंदियों के परिजनों मित्रों आदि को भी बंदीगृह में बंदियों से मिलने की अनुमति प्राप्त नहीं थी। बंदीगृह में बंदियों को दैनिक प्रार्थना व धर्मोपदेश में शामिल होना जरूरी था ताकि वे भविष्य में आदर्श जीवन के लिए तैयार हो सकें।[29]

पेन्सेल्वेनिया पद्धति का प्रमुख दोष यह माना गया कि बंदियों से कोई उपयोगी कार्य नहीं करवाया जाता था। इसके अलावा बंदीगृहों में बंदियों की बढ़ती संख्या व एकांत कारावास में रखकर भी उन्हें सुधारा नहीं जा सका, इन्हीं कारणों से यह पद्धति अधिक दिनों तक न चल सकी और अन्ततः 19वीं शताब्दी के मध्य में इसे समाप्त कर दिया गया तथा इसके स्थान पर आर्बन कारागार व्यवस्था लागू की गई।

आर्बन कारागार व्यवस्था:

पेन्सेल्वेनिया पद्धति की असफलता के कारण उसके स्थान पर एक नई कारागार पद्धति लागू की गई जिसे 'आर्बन कारागार व्यवस्था' कहा गया। यह प्रणाली न्यूयार्क राज्य में सर्वप्रथम 1818-19 में प्रारंभ की गई। इसके अंतर्गत बंदियों को उनके अपराधों की गंभीरता अनुसार अलग-अलग रखा जाता था। दिन के समय समस्त बंदी सामूहिक रूप से श्रम (कार्य) किया करते थे लेकिन उन्हें आपस में वार्तालाप करने की अनुमति नहीं थी, और यदि कोई कैदी किसी अन्य कैदी से वार्तालाप करने का प्रयास करता था तो उसे वार्डन द्वारा तत्काल दंडित किया जाता था। समस्त बंदियों को एक साथ भोजन करवाया

जाता था, परंतु यहां भी उन्हें वार्तालाप करने की अनुमति नहीं थी। शुरू में इस बंदीगृह में केवल घातक कैदियों को रखा जाता था। तथा इन कैदियों को रात्रि के समय पृथक एकांत कोठरी में रखा जाता था इन कारागृहों में भी कैदियों को उनके परिजनों से मिलने पर पाबंदी थी। इस कारागार में एकांत कारावासी जीवन से ऊबकर अनेक कैदियों ने आत्म-हत्या कर ली तथा बहुत से पागल हो गये। परिणामत: सन् 1823 में बहुत से कैदियों को मांफी दे दी गई तथा कारागृह से मुक्त कर दिया गया। सन् 1823 के बाद जो कारागृह व्यवस्था अपनाई गई उसे आर्बन पद्धति कहा गया।

"आर्बन पद्धति का मूल सिद्धांत कैदियों को रात्रि के समय पृथक-पृथक एकांत में रखना तथा दिन के वक्त में पूर्ण रूप से मौन रखकर उनसे सामूहिक रूप में श्रम करवाया जाना था।" कैदियों से श्रम कार्य इस उद्देश्य से करवाया जाता था ताकि वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रह सकें। इस व्यवस्था के बारे में टिप्पणी करते हुए 'गिलिन' ने कहा था कि इस पद्धति में दमन द्वारा अनुशासन तथा डर दिखाकर श्रम कार्य लिया जाता था।[30] कैदियों को आपस में वार्तालाप की अनुमति न देने का मुख्य उद्देश्य यह था कि वे एक दूसरे से वार्तालाप करके और संपर्क में आकर बिगड़े न। परंतु कैदियों को वार्तालाप से पूर्णत: वंचित रखना अमानवीय व बर्बरतापूर्ण था जो कैदियों के सुधार में बाधक था।

जेल के वार्डन भी कैदियों से वार्तालाप नहीं किया करते थे। आर्बन कारागृह प्रणाली के अंतर्गत कैदी खेलकूद, व्यायाम, मनोरंजन आदि से पूर्णत: वंचित रहते थे, कैदी का सामाजिक जीवन समाप्त हो जाता था। इस कारागृह से रिहा होने वाले कैदी को तीन डालर दिये जाते थे, साथ ही उनके रिहा होने पर उन्हें फिर भविष्य में अपराध न करने की सीख दी जाती थी।[31]

आर्बन कारागार प्रणाली के पश्चात् अमेरिका की कारागृह व्यवस्था में से दोषों को दूर करके उसमें सुधार के प्रयास किये जाते रहे। 19वीं शताब्दी के मध्य तक अमेरिकन कारागार व्यवस्था में पर्याप्त रूप से सुधार हो चुका था तथा कारागृहों के अधिकारी पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हुआ करते थे। कैदियों को सभी मूलभूत प्राथमिक आवश्यकतायें उपलब्ध करवाई गईं। बंदियों को उनके परिजनों, मित्रों आदि से मिलने की छूट प्रदान की गई। साथ ही साथ पत्र व्यवहार करने की भी छूट दी गई। बंदियों को नैतिक शिक्षा तथा उचित प्रशिक्षण दिया जाने लगा। कारागृहों में पुस्तकालय भी स्थापित किये गये जिससे शिक्षित कैदी इसका लाभ प्राप्त कर सकें।

एल्मिरा सुधार गृहः-

आर्बन कारागार प्रणाली के अंतर्गत कैदियों को एकांत कारावास में रखकर दिन के वक्त उनसे श्रम करवाना तथा धर्मोपदेश द्वारा उनमें सुधार करने की व्यवस्था को सन् 1870 ई. तक जारी रखा गया। सन् 1870 के बाद इस प्रणाली में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। सन् 1876 में कैदियों के लिए न्यूयॉर्क में एल्मिरा सुधारगृह को स्थापित किया गया जिसमें कैदियों के लिए पैरोल, शिक्षण, उत्पादक, अनियत दण्ड एवं अच्छे आचरण के लिए छूट आदि के प्रावधान रखे गये। सामान्य कैदियों को कारागृहों की कोठरी में न रखकर ओद्योगिक प्रतिष्ठानों में श्रम कार्य करवाया जाने लगा जिसके दो लाभ हुये पहला तो यह कि कैदी शारीरिक व मानसिक दृष्टि से स्वस्थ रहने लगे तथा दूसरा लाभ यह हुआ कि कैदियों के कारागृह से मुक्त होने के पश्चात् उनका पुर्नवास सरल हो गया। सन् 1930 के आसपास बंदीगृहों में बंदियों के वैयक्तीकरण पर जोर दिये जाने के कारण उनका जो वर्गीकरण किया गया वह आयु, लिंग या अपराध की गंभीरता के आधार पर न होकर उनके पुर्नवासित होने की संभावनाओं के अनुरूप किया जाने लगा।

सन् 1933 में इलिओनिस (Llionis) में कैदियों के लिए एक अभिग्रहण सेन्टर खोला गया जिसमें उपचारात्मक पद्धति से अपराधियों (कैदियों) को सुधारने पर अधिक बल दिया गया। इस कारागृह के कमरे हवादार थे तथा इनमें रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था थी। इसमें कैदियों की साफ-सफाई, स्वास्थ, लिखाई-पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान दिया गया था, इसके अलावा कैदियों के लिए व्यायाम, खेल तथा मनोरंजन के पर्याप्त साधन मौजूद थे। एकांत कारावास की पद्धति को समाप्त कर दिया गया तथा बंदी के जीवन तथा बाहर के सामान्य जीवन के अंतर को न्यून करने का प्रयत्न किया गया।

वर्तमान समय में अमेरिका की कारागार व्यवस्था के अंतर्गत कैदियों का वर्गीकरण करके उनका आवश्यकतानुसार उपचार किया जाता है। बंदियों को सुधारने के लिए संबंधित विशेषज्ञों की सेवायें ली जाती हैं, एवं महिलाओं, किशोर, अभ्यस्त तथा सामान्य अपराधियों के लिए अलग-अलग आवास एवं उपचार की व्यवस्था की गई है। लेकिन हाल ही में किए गए एक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अमेरिका के कारागृहों में कैदियों की संख्या कल्पना से परे है।

तत्कालीन राष्ट्रपति जानसन के समय में अटार्नी जनरल रेम्से क्लार्क ने अमेरिका के कारागारों के विषय में टिप्पणी करते हुए कहा कि ''अत्यंत दुख की बात है कि जो अपराधी कारागृह भेजे जाते हैं उनमें

से अधिकांशतः कारागृहों से मुक्त होने के पश्चात् पुनः अपराध करके इन कारागृहों में लौट आते हैं। इन कारागृहों की स्थिति अत्याधिक खराब है। इन कारागृहों में कैदियों में आपस में हाथापाई, शोषण, समलैंगिक कृत्य, ब्लेकमेल आदि वारदातें आम बात हो गई है।'' लियोन रेडझिनोविझ ने वर्तमान अमेरिकन कारागृह व्यवस्था के बारे में कहा कि कड़े नियंत्रण के अभाव तथा कथनी और करनी में अंतर होने के कारण इन बंदीगृहों में हिंसा होती रहती है जिसके कारण कैदी विद्रोह पर उतारू हो रहे हैं।[32]

उपरोक्त इंग्लैण्ड एवं अमेरिकन कारागार व्यवस्था का प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक का संक्षिप्त परिचय जानने के पश्चात् अब ब्रिटिश भारत में कारागृह व्यवस्था तथा आधुनिक कारागार व्यवस्था के जन्म का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे:

ब्रिटिश भारत में कारागृह व्यवस्था और आधुनिक कारागृह व्यवस्था का जन्म:

ब्रिटेन का उपनिवेश बनने के पश्चात् भारत की प्रशासनिक व्यवस्था में नये युग का सूत्रपात हुआ, साथ ही साथ वैधानिक व्यवस्था में भी परिवर्तन हुये। सन् 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया तथा कलकत्ता में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई जहां पर दीवानी और फौजदारी मामलों के निपटारे के लिए अंग्रेजी कानून व्यवस्था के अंतर्गत एक अंग्रेज अधीक्षक को नियुक्त किया गया।[33] अंग्रेजी अपराध कानून भारतीयों पर लागू किया गया। सन् 1859 में 'भारतीय दण्ड संहिता' तथा 1860 में 'दण्ड प्रक्रिया संहिता' का निर्माण किया गया। भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत हरेक अपराध को परिभाषित किया गया तथा इन अपराधों के लिए दण्ड को भी निर्धारित किया गया। अपराधियों पर दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपराधियों द्वारा किये गये अपराध के निर्धारण के लिए मामले को न्यायालय के सुपुर्द किया जाने लगा। आधुनिक जेल व्यवस्था के अनुसार अपराधियों के दंड की व्यवस्था की गई। सन् 1773 में जिस व्यवस्था को प्रारंभ किया गया वह सन् 1860 तक संपूर्ण भारत में लागू हो गई।[34] कारागार व्यवस्था के अन्तर्गत जेल सबसे छोटी इकाई के समान थी न्यायालय जिन्हें अपराधी ठहराता, तथा जितनी सजा का निर्धारण करता उसी के अनुसार अपराधी को कारागृह में रखा जाता था।[35]

ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत भारतीय कारागृहों को एक संस्था के रूप में स्थापित किया। लेकिन इस संस्था के लिए ब्रिटिश प्रशासन से कोई आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं की गई थी। ईस्ट

इंडिया कंपनी के संचालकों ने ब्रिटिश प्रशासन से जेलों का सुधार गृहों का रूप देने के लिए आर्थिक सहायता की मांग की।

ब्रिटिश काल के प्रारंभिक कारागृहों में बंदियों के रहने की उचित व्यवस्था (इंतजाम) नहीं थी। उनके भोजन, जल, स्वास्थ्य एवं चिकित्सा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था, ईस्ट इंडिया कंपनी के निर्देशक (डायरेक्टर) जेलों पर आवश्यकता से न्यूनतम खर्च करते थे, तथा जेल व्यवस्था पर भी पर्याप्त ध्यान नहीं देते थे, इसी के परिणामस्वरूप जेल व्यवस्था अत्यंत खराब हो गयी थी।[36] ईस्ट इंडिया कंपनी के नियमों के अधीन 143 दीवानी, 75 फौजदारी 68 मिले जुले कारागृह थे, लगभग 75,100 कारागृह बंगाल, उत्तर पश्चिम प्रांत, मद्रास और बंबई में बनाये गये थे।[37]

150 वर्ष पूर्व जेल व्यवस्था में सुधार की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ । जब सन् 1824 में ब्रिटिश संसद ने कारागार व्यवस्था में सुधार हेतु नियम पारित करते हुये कहा कि ''जेल प्रशासन में आवश्यक सुधार किये जायें।'' ब्रिटिश भारत में सन् 1835 तक कारागारों का प्रशासन जिला मजिस्ट्रेटों के हाथ में था। कारागृहों में बंदियों के रहने, खाने-पीने तथा काम करने की दशाएं अत्यंत दयनीय थीं। तत्कालीन सरकार कारागृहों के ऊपर पैसा खर्च नहीं करना चाहती थी। लार्ड मैकाले ने इन कारागृहों की दयनीय दशाओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया।

जेल व्यवस्था में सुधार लाने के लिए भारत में प्रथम कमेटी सन् 1836 में स्थापित की गई जिसे 'फेमस कमेटी' के नाम से जाना जाता है। इस समिति के सदस्यों में लार्ड मैकाले भी शामिल थे। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट सन् 1838 में प्रस्तुत की, जिसके अनुसार जेलों में काफी अनुशासन हीनता थी, जेल कर्मचारी भ्रष्टाचार और अय्याशी में लिप्त थे। जेलों की प्रशासनिक व्यवस्था पूरी तरह चौपट हो चुकी थी।[38]

समिति ने कारागार व्यवस्था में सुधार लाने के लिए कुछ सुझाव रखे जो निम्न प्रकार से थे -

(1) केन्द्रीय कारागार में 1000 से अधिक कैदियों को न रखा जाय।

(2) सभी प्रांतों में जेल महानिरीक्षकों की नियुक्ति की जाये।

(3) कारागारों के भवन बड़े हों , जिससे कि उनमें बंदियों को रखने की सुविधा हो।[39]

तद्नुसार सन् 1846 में प्रथम केन्द्रीय कारागार की स्थापना आगरा में की गई तथा इसके बाद बरेली तथा इलाहाबाद में सन् 1848 में, लाहौर में सन् 1852 में, मद्रास में सन् 1857 में, बम्बई में सन् 1864 में, अलीपुर में सन् 1864 में, बनारस तथा फतेहगढ़ में सन् 1864 में तथा लखनऊ में सन् 1867 में केन्द्रीय कारागारों की स्थापना की गई। सीमा-प्रांत, पंजाब, मद्रास, बम्बई और बंगाल में केन्द्रीय कारागार स्थापित किये गये। सन् 1844 में सर्वप्रथम जेल महानिदेशक की नियुक्ति उत्तर-पश्चिम प्रांत में की गई तथा सन् 1852 में अन्य प्रांतों में भी इस पत्र की स्थापना की गई। सन् 1850 में भारत सरकार ने देश भर की प्रांतीय सरकारों से यह अनुरोध किया कि वे कारागार महानिरीक्षकों की नियुक्ति करें। सन् 1862 में उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में जिला जेलों में सिविल सर्जनों की नियुक्ति की गई।

सन् 1864 में जेलों में सुधार के लिए एक दूसरी समिति बनाई गई जिसका प्रमुख कार्य कारागृहों में होने वाली मृत्यु दर को कम करना एवं कारागारों की अन्य व्यवस्थाओं को ठीक करना था।[40]

समिति ने अपने अध्ययनों से यह ज्ञात किया कि दस वर्षों में कैदियों की मृत्यु संख्या 46 ,309 से कम नहीं थी। समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि कारागृहों में बंदियों की मृत्यु होने के प्रमुख कारण थे -

(1) कारागृहों में कैदियों की संख्या का अधिक होना।

(2) स्वच्छ वायु का अभाव।

(3) खराब सुरक्षा व्यवस्था।

(4) गंदे पानी के निकासी की व्यवस्था नहीं।

(5) अपर्याप्त वस्त्र।

(6) फर्श पर सोना।

(7) स्वच्छता एवं सफाई की कमी।

(8) कैदियों से उनकी शारीरिक क्षमता से अधिक श्रम कार्य लेना।

(9) अपर्याप्त चिकित्सा सुविधा।

(10) स्वच्छ जल की कमी।[41]

सन् 1864 में इन्हीं कारणों को ध्यान में रखते हुये जिला कारागारों में सिविल सर्जनों के अधीक्षक के रूप में नियुक्त करने की सिफारिश की गई। सन् 1870 में भारतीय सरकार द्वारा कारागार अधिनियम पारित किया गया जिसका उद्देश्य कारागार के पुराने नियमों में परिवर्तन करना था। इस अधिनियम के आधार पर कारागारों में अधीक्षक, चिकित्सा अधिकारी, जेलर तथा अन्य निम्न स्तरीय कर्मचारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम ने स्त्री तथा पुरूष बंदियों के पृथक निवास की व्यवस्था स्वीकार करने की मांग की। बंदियों के लिए उपयोगी कार्य तथा उनको दिये जाने वाले अमानवीय शारीरिक दण्डों की व्यवस्था में सुधार के प्रश्न को इसी अधिनियम के माध्यम से मूर्त स्वरूप प्रदान किया गया। सन् 1877 में तीसरी जेल समिति स्थापित की गई, जिसका प्रमुख कार्य जेल प्रशासन में सुधारों की समीक्षा करना था। इस समिति के सदस्य कारागार के वरिष्ठ अधिकारी थे। इस समिति ने कारागार प्रशासन के प्रमुख क्षेत्रों में सुधार करने की मांग की। सन् 1888 में चौथी जेल समिति बनाई गई, जिसमें कारागारों के प्रशासनिक नियमों में सुधार की सलाह दी गई। साथ ही साथ कैदियों के वैज्ञानिक वर्गीकरण तथा बंदियों को पृथक-पृथक रखने की भी इस समिति ने सिफारिश की।[42] वर्गीकरण के लिए इस समिति ने कुछ विशिष्ट तथा उपयोगी नियम बनाये।

इस समिति ने सुझाव दिया कि जिन कैदियों (बंदियों) पर मुकदमा चल रहे हैं उन्हें अलग रखा जाय तथा अन्य कैदियों को उनकी आदत एवं प्रवृत्ति के अनुसार अलग रखा जाये। विभिन्न प्रांतों की जेलों (कारागारों) में सुधार के लिए भी इस समिति ने कुछ सिफारिशें की।[43]

सन् 1892 में पांचवी बार एक ऐसी राष्ट्रीय स्तर की कारागार सुधार समिति का गठन किया गया जिसने संपूर्ण कारागार व्यवस्था का निष्पक्ष मूल्यांकन किया और कारागार में बंदियों को दिये जाने वाले दण्ड के उद्देश्य व स्वरूप में बदलाव लाने के लिए एक योजना को निर्मित किया। इस अखिल भारतीय समिति ने विभिन्न समितियों द्वारा की गई सिफारिशों के कार्य को पूर्ण किया। इस समिति ने संपूर्ण जेल प्रशासन का पुन: निरीक्षण करके कुछ विस्तृत नियम बनाये। इस समिति का सबसे प्रमुख कार्य रहा सन् 1894 में कारागृह अधिनियम को निर्मित करवाना। यह कारागृह अधिनियम सन 1894 में संपूर्ण भारत के कारागृहों में एक साथ लागू किया गया कारागार अधिनियम (1891) के द्वारा कैदियों को कोड़े से मारने की प्रथा को प्रतिबंधित किया गया साथ ही इस अधिनियम के द्वारा अन्य दंडों को देने की कठोरता को भी

कम किया गया। पूर्व निर्दिष्ट कैदियों जिनका वर्गीकरण किया गया है उनकों छोड़कर सभी बंदियों के साथ एक जैसा व्यवहार करने को महत्व दिया गया।[44]

1897 में रिफारमेटरी स्कूल ऐक्ट पारित किया गया जिसे कारागार सुधार आंदोलन में एक महत्वपूर्ण प्रगतिवादी चरण माना गया। इस एक्ट का उद्देश्य बाल तथा तरूण अपराधियों को वयस्क अपराधियों से अलग रखकर उनका उपचार तथा चारित्रिक सुधार करना था। इसी एक्ट के प्रावधानों के आधार पर बाल कारागृहों तथा रिफारमेटरी स्कूलों की स्थापना की गई।

सन् 1897 का वर्ष भारतीय जेल इतिहास में सुधार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण वर्ष के रूप में जाना जाता है। इन सुधार शालाओं में 15 वर्ष से कम आयु के अपराधियों कोअलग रखा जाने लगा। सन् 1900 में बंदी अधिनियम पारित किया गया।

यद्यपि विभिन्न आयोगों की स्थापना की गई, विभिन्न समितिओं के सुझावों पर भी अमल करने का प्रयास किया गया लेकिन फिर भी भारतीय कारागृहों में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हो पाया और भारतीय कारागृह सुधार की दृष्टि से पिछड़े रहे तथा कैदियों के जीवन को सुधारने में जेल प्रशासन भी असफल रहा। बंदियों में मानवता लाने और सभ्य बनाने में भी कारागार प्रशासन दिशाहीन रहा, बंदियों को अच्छा भोजन, उनके स्वास्थ्य की देखभाल का कार्य दक्षता प्रदान करने में जेल प्रशासन पूरी तरह असफल रहा।[45]

उपरोक्त कारागार नीति 1919 तक प्रभावित रही। भारतीय कारागृह व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए सन् 1919 में स्वतंत्रता पूर्व जेल समिति गठित की गई, जिसके अध्यक्ष सर एलेकजेंडर मेड्यू थे। इस समिति ने सन् 1920 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति ने भारतीय जेलों की विभिन्न समस्याओं का तो अध्ययन किया, साथ ही में इंग्लैण्ड, अमेरिका, जापान, फिलिपीन्स और हांगकांग की कारागारों में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का भी अध्ययन किया। 1919 की भारतीय कारागृह समिति को कारागारों के सुधार की दिशा का वह मोड़ माना जाता है जहां से सुधार के मार्ग की दिशा का बोध होता है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में अन्य देशों के कारागारों के सुधारवादी कार्यक्रमों का वर्णन करते हुए यह सिफारिश की कि भारतीय कारागार व्यवस्था को मानवीय स्वरूप प्रदान करना अति आवश्यक है।

इस समिति ने सर्वप्रथम दो प्रमुख बातों को प्रस्तावित किया -- ''निवारण'' और ''सुधार''

के द्वारा भारतीय जेल प्रशासन को अधिक प्रभावशाली बनाना।[46]

जेल प्रशासन का मुख्य उद्देश्य बंदी में पनप रही अपराध की भावना की रोकथाम करना तथा बंदी के जीवन को बदल कर उन्हें एक अच्छा नागरिक बनाना।[47] इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में अनेक बातों की सिफारिश की थी। जैसे- जेल में कैदियों का वर्गीकरण और उन्हें अलग-अलग रखना, जेल में बंदियों को किसी न किसी प्रकार के कार्य को सिखाया जाय, कारागृहों के बंदियों के लिए कर्मचारियों का समूह (स्टाफ) हो, अनुशासन और दंड, जेलों में सुधार का प्रभाव, कारागारों में स्वच्छता, चिकित्सा व्यवस्था, जेलों या कारागृहों में स्वच्छता, चिकित्सा व्यवस्था जेलों या कारागृहों या कारागारों से कैदियों को मुक्त करते समय उनकी सहायता करना, परीक्षण काल में बंदियों को किसी व्यवस्था या रोजगार प्रदान करने वाले कार्य को सिखाना इत्यादि।[48]

कुछ समय पश्चात् मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड के सुधारों के आने के पश्चात् जेल को राज्य के विषय के अंतर्गत रखा गया। राज्य या प्रान्तीय सरकारों से यह अपेक्षा की गई कि वे कारागारों में सुधार लाने के लिए विशेष प्रयास करें। इसी के बाद विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने कारागारों की व्यवस्था को सुधारने के लिए श्रृंखलाबद्ध ढंग से सुधार समितियों का गठन किया तथा इन समितियों के अंतर्गत जितने भी कारागृह आते थे, उनमें अधिक से अधिक सुधार की अपेक्षा की गई। जिन प्रान्तों ने सुधार समितियों का गठन किया था उनमें प्रमुख समितियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

प्रथम - स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की

द्वितीय - स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् की

प्रथम - स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले की :

(1) दि यूनाइटेड प्राविन्सेज जेल इंक्वायरी कमेटी 1928-29

(2) दि कमेटी ऑफ प्रिजन रिफार्म्स इन मैसूर 1940-41

(3) दि यू. पी. जेल रिफार्म्स कमेटी 1946 तथा

(4) दि बाम्बे जेल रिफार्म्स कमेटी 1946-48

द्वितीय- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद :

(1) दि ईस्ट पंजाब जेल रिफार्म्स कमेटी 1950-51

(2) दि जेल रिफार्म्स कमेटी, उड़ीसा, 1952-55

(3) दि जेल रिफार्म्स कमेटी, ट्रावनकोर कोचीन राज्य 1953-55

(4) दि यू. पी. जेल इंडस्ट्रीज इंक्वायरी कमेटी, 1955-56

(5) दि राजस्थान जेल रिफार्म्स कमेटी, 1964

(6) दि बिहार जेल रिफार्म्स कमेटी, 1972 तथा

(7) दि जेल कोड रिविजन कमेटी वेस्ट बंगाल, 1972[49]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय सरकार ने कारागार व्यवस्था में परिवर्तन एवं सुधार लाने में विशेष रूचि प्रदर्शित की और संयुक्त राष्ट्र संघ से यह आग्रह किया कि वह अपने दक्ष्य और निपुण व्यक्ति को भारतीय कारागृह प्रशासन का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार के लिए तकनीकी सुझाव देने हेतु भारत भेजें। साथ ही भारत में 1949 में जेलों में सुधार हेतु पकवाजा समिति का गठन किया गया जिसने कारावासियों से सड़क निर्माण के कार्यों में श्रमिकों के रूप में कार्य लिये जाने की इजाजत दी तथा उन्हें श्रम कार्य के लिए मजदूरी प्रदान की जाने लगी। कारावधि में बंदियों के अच्छे आचरण व व्यवहार करने पर उनकी कैद की सजा में कमी करने का प्रावधान भी किया गया जिसे "गुड टाइम एलाउन्स" कहा जाता है। इस समिति की सिफारिश पर सन् 1949 से कैदियों का मनोचिकित्सा पद्धति के द्वारा उपचार किया जाना प्रारंभ हुआ। लखनऊ में एक आदर्श कारागार की स्थापना की गई। जिसमें कुटीर उद्योगों की सहायता से कैदियों को विभिन्न प्रकार के कार्यों में व्यस्त रखा जाने लगा, जिससे वे एक तो रोजगारोन्मुखी कार्य को सीखने लगे, साथ ही उनकी मानसिक नीरसता भी दूर हुई। सन् 1950 के बाद बंदियों को मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सा पद्धति के द्वारा उपचारित किया जाने लगा तथा इस पद्धति पर विशेष ध्यान दिया गया। सन् 1951 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भारतीय आग्रह स्वीकार करते हुये 'डॉ. डब्ल्यू. सी. रेकलेस' को भारतीय जेल व्यवस्था का अध्ययन करने हेतु विशेषज्ञ के तौर पर भारत भेजा। डॉ. रेकलेस ने भारतीय जेलों एवं उनकी प्रशासनिक व्यवस्था के पश्चात् अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें उन्होंने कई महत्वपूर्ण सुझावों को प्रस्तुत किया, उनके प्रतिवेदन में वे नये सुझाव शामिल थे, जो सन् 1919 में प्रस्तुत भारतीय जेल समिति के सुझावों से भिन्न थे। डॉ. रेकलेस का प्रमुख सुझाव था, कि अपराधी को स्थायी रूप से परीक्षण काल (Probation period) में रखा जाये, उसकी ठीक प्रकार से देखभाल की जाये, नये कारागृहों का निर्माण किया जावे, जिन अपराधियों

पर मामला चल रहा हो उनकी कारागृहों में संख्या कम से कम हो, बाल अपराधियों को वयस्क अपराधियों से अलग रखा जाये[50] इत्यादि।

डॉ. रेकलेस की सहायता से 47 बरिष्ठ जेल अधिकारियों को विभिन्न समूहों में प्रशिक्षित किया गया जो विभिन्न राज्यों के थे।[51]

सन् 1952 में बंबई में अखिल भारतीय जेल महानिरीक्षकों का सम्मेलन आयोजित किया गया, इस सम्मेलन में ''मॉडल प्रिजन मेन्युअल'' को प्रस्तावित किया गया था। इसके पश्चात् सन् 1957 में एक अखिल भारतीय जेल समिति गठित की गई, इस समिति का उद्देश्य कारागार-प्रशासन की समस्याओं का मूल्यांकन करना तथा आदर्श कारागार नियमावली (मॉडल जेल मेन्युअल) की रचना करना था।

इस समिति ने सन् 1959 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस समिति द्वारा जिस आदर्श जेल नियमावली की रचना की गयी थी उसके प्रमुख प्रस्ताव निम्न प्रकार से थे :-

(1) कारागृहों एवं सुधार सेवाओं को राज्यों के गृहमंत्रालय के अधीन एवं नियंत्रण में रखा जाये।

(2) कारागृहों के विभाग की संगठनात्मक संरचना में राज्य स्तर पर कारागार महानिरीक्षक, उप-कारागार महानिरीक्षक, निदेशक परीवीक्षा, बाल अपराध एवं उत्तर रक्षा सेवा, मुख्य शिक्षा अधिकारी, अधीक्षक कारखाना, मुख्य कृषि अधिकारी इत्यादि तरह के उच्चस्तरीय कर्मचारियों-अधिकारियों की नियुक्ती की जाये और उनके अधिकारों एवं कर्तव्यों का स्पष्ट उल्लेख प्रत्येक राज्य के कारागृहों की नियमावली में किया जाये।

(3) हर एक राज्य में बंदियों (कैदियों) को रखने के लिए निम्न तरह की बंदी संस्थाओं को स्थापित किया जाये-

(अ) बाल अपराधियों के लिए,

(ब) किशोर अपराधियों के लिए,

(स) गैर आदतन वयस्क अपराधियों के लिए संस्थायें,

(द) आदतन, व्यवसायिक तथा संगठित होकर अपराध करने वालों के लिए संस्थायें,

(च) उन अपराधियों के लिए संस्थायें जिन पर नियंत्रण करना,

(छ) महिला अपराधियों के लिए संस्थायें,

(ज) रूग्ण तथा मानसिक रूप से विकृत अपराधियों के लिए संस्थायें।

(4) बृद्ध एवं दुर्बल बंदियों के लिए संस्थायें :-

(अ) प्रत्येक बंदीगृह में तपेदिक तथा क्षय रोग से पीड़ित बंदियों के लिए विशेष व्यवस्था,

(ब) उन बंदियों के लिए विशेष बंदीगृह जिन पर अभी मुकदमा चल रहा है,

(स) सब जेल तथा

(द) मुक्त कारागृहों की स्थापना।

(5) प्रत्येक केन्द्रीय कारागृह में स्वाभाविक तथा गैर आदतन अपराधियों को रखने की विशिष्ट व्यवस्था। इन कारागारों में केवल लम्बी अवधि की सजा पाये हुये वयस्क अपराधी ही रखे जाना चाहिए और कैदियों की संख्या अधिकतम 750 होनी चाहिए।

(6) प्रत्येक जिला स्तरीय बंदीगृह में कम सजा पाये हुए बंदियों को उनकी आपराधिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर पृथक रखना चाहिए तथा इन बंदीगृहों में बंदियों की अधिकतम संख्या 400 होनी चाहिए।

(7) प्रत्येक कारागार की भवन व्यवस्था में मुख्य द्वार, आगवानी भवन, चिकित्सालयों, रसोइयों, दंड कोठरियों, रहने के कक्षों, शौचालयों, स्नानगृहों, भोजन करने के लिए पर्याप्त बड़े कक्ष,मिलने के लिए कक्ष, विद्यालय भवनों तथा औद्योगिक केन्द्र के भवनों की पर्याप्त रूप से सुविधा होना चाहिए। प्रत्येक बंदीगृह के समीप ही उस बंदीगृह के सारे अधिकारी कर्मचारियों के लिए निवास स्थल, मनोरंजन तथा चिकित्सा केन्द्र तथा पार्क व स्कूलों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(8) प्रत्येक कारागृह में निम्नखिखित प्रकार के कर्मचारी नियुक्त होना चाहिए :

अधीक्षक (ग्रेड - 1 व ग्रेड - 2) उप अधीक्षक (ग्रेड - 1 व ग्रेड - 2)

(9) बंदीगृह-कर्मचारियों की नियुक्ति एवं चयन, उनकी शारीरिक पुष्टता, कठोर कार्य करने की क्षमता, साहस, नेतृत्व, विश्वसनीयता, संतुलित व्यक्तित्व, प्रशासनिक निपुणता, चारित्रिक निष्ठा, मानववादी दृष्टिकोण तथा अपराधियों के सुधार में विश्वास रखने की मात्रा को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

(10) कारागृहों के समस्त कर्मचारियों को उनकी नियुक्ति के तुरंत बाद विशिष्ट प्रशिक्षण केन्द्रों में रखकर उन्हें कारागृह व्यवस्था की वस्तुस्थिति से परिचित करवाना आवश्यक है। इसके साथ ही उनके

नियुक्त होने के कुछ वर्ष पश्चात् उनको समय-समय पर विशिष्ट कारागृह प्रशिक्षण केन्द्रों में भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(11) कारागृहों के कर्मचारियों की सेवा-दशाएं ऐसी होनी चाहिए जिससे कुशल तथा कर्तव्यपरायण व्यक्ति इस सेवा में भर्ती होने का इरादा बना सकें। कारागृहों के कर्मचारियों का वेतन उनकी योग्यता तथा कार्य की प्रकृति को देखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। कर्मचारियों की पदोन्नति की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। उनकी प्रवरता, स्थायीकरण तथा पदोन्नति के सभी विषयों पर स्पष्ट नियम बने होने चाहिए साथ ही उन नियमों का पालन बिना किसी पक्षपात तथा भेदभाव के किया जाना चाहिए।

(12) प्रत्येक कारागृह के कर्मचारियों के लिए ''कल्याण समिति'' का गठन किया जाना चाहिए जिसका कार्य कर्मचारियों के लिए कल्याण-कार्यक्रमों तथा सेवाओं का आयोजन करना हो। प्रत्येक कारागृह में कर्मचारियों के लिए एक केन्द्रीय एवं सहयोगी उपभोक्ता भंडार होना चाहिए ताकि वे उनसे उधार वस्तुएँ खरीद सकें।

(13) प्रत्येक कारागृह में बंदियों का बर्गीकरण, उनकी आयु, लिंग, शिक्षा तथा आपराधिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए तथा उनके पृथक-पृथक रहने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(14) प्रत्येक कारागृह में बंदियों की दिनचर्या निर्धारित होनी चाहिए ताकि उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को हानि न पहुंचे।

(15) प्रत्येक कारागृह में बंदियों के रहने, स्वच्छ पीने के पानी, खाना, नहाना, शौचागार, वस्त्रों इत्यादि की उनकी आवश्यतानुसार व्यवस्था होनी चाहिए।

(16) प्रत्येक कारागृह में बंदियों की शिक्षा, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा उनको औद्यागिक प्रशिक्षण देने की सुविधा उपलब्ध होना चाहिए।

(17) बंदियों की अनुशासनहीनता के लिए अमानवीय दण्ड नहीं दिये जाने चाहिए।

(18) बंदियों को उनके द्वारा किये जाने वाले श्रम के लिए मजदूरी या वेतन मिलना चाहिए।

(19) मुक्त बंदियों के लिए उत्तर रक्षा कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

डॉ. रेकलेस के सुझावों को स्वीकारने के पश्चात् सन् 1961 में गृह मंत्रालय के द्वारा ''सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ करेक्शनल सर्विसेज'' की स्थापना नई दिल्ली में की गई। सन् 1964-65 में ब्यूरो को केन्द्रीय

शिक्षा व समाज कल्याण विभाग के तत्वावधान (अंतर्गत) रखा गया। सन् 1973-74 में ब्यूरो का नाम परिवर्तित करके ''नेशनल इन्सटीट्यूट ऑफ सोशल डिफेन्स'' किया गया।

सन् 1969 में आयोजित की गयी एक अखिल भारतीय विचार गोष्ठी के सुझावों को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार ने ''सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड'' की स्थापना की, जिसमें विधि शास्त्री, अपराधशास्त्री, पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी तथा विद्वानों को शामिल किया गया। अक्टूबर 1971 में आयोजित की गयी एक राष्ट्रीय विचारगोष्ठी में विभिन्न राज्यों के मुख्य कारागार निरीक्षकों ने पुन: कारागार नियमावली में संशोधन करने की बात पर बल दिया और कहा कि कारागार व्यवस्था में सुधार धन के अभाव के कारण नहीं हो पा रहा है। 18 अक्टूबर 1972 को भारत सरकार ने एक ''वर्किंग ग्रुप ऑन प्रिजन्स इन द कन्ट्री'' का गठन उन विधियों पर विचार करने के लिए किया जिन्हें कारागृह सुधार का प्रमुख आधार माना गया।[52] इसका प्रमुख कार्य यह देखना था कि देश के विभिन्न कारागृहों में अपर्याप्त सुविधाओं को किस प्रकार से विस्तारित किया जा सकता है। इस वर्किंग ग्रुप ने अपनी रिपोर्ट सन् 1973 में केन्द्रीय सरकार को दी। इस रिपोर्ट में वर्णित किये गये प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित थे:-

(1) पूरे देश में कारागार-प्रशासन की व्यवस्था असंतोषजनक है।

(2) कारागृहों की इमारतें बहुत पुरानी व जर्जर हो चुकी हैं तथा उनमें भौतिक सुविधाओं की अत्यंत कमी है।

(3) कारागृह बंदियों से भरे हैं , लगभग सभी कारागृहों में क्षमता से अधिक बंदी है।

(4) बंदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं किया गया है।

(5) कारागृहों में सुधार कर्मचारियों की नियुक्ति नहीं हो पाई है।

(6) कारागृहों के कल कारखाने उतने ही प्राचीन है जितने कि वे 50 वर्ष पूर्व थे।

(7) कारागृह कर्मचारियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण नहीं दिया गया है।

(8) कारागृहों तथा अन्य सुधार सेवी संस्थानों में कोई भी आपसी तालमेल नहीं है।

(9) जेल प्रशासन के पास न तो पर्याप्त संसाधन है, न ही कुशल कर्मचारी साथ ही उन्हें आवश्यकतानुसार धन भी उपलब्ध नहीं होता अत: कारागृहों में सुधार एक दिखावटी कार्य बनकर रह गया है।

(10) इन्ही उपरोक्त कठनाइयों के कारण ही अपराधी सुधार को केवल सैद्धांतिक रूप से स्वीकार किया गया और कारागृहों का मुख्य उद्देश्य पूर्व की भांति आज भी बंदियों की देखरेख करना मात्र ही है।

वर्किंग ग्रुप ने कारागार प्रशासन में सुधार करने के लिए निम्नलिखित योजना प्रस्तुत की:-

(1) बंदियों की अभिरक्षा के दर्शन पर आधारित कारागृहों की व्यवस्था को सुधारात्मक दर्शन में बदलने की जरूरत।

(2) कारागृहों की एक राष्ट्र-व्यापी नीति का निर्माण करना जिसमें कारागृहों के विकास में मुख्य स्वरूपों को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करना आवश्यक है।

(3) भारत के संविधान में ऐसे संशोधन किए जाये जिससे कि जेल प्रशासन का विषय समवर्ती सूची में शामिल हो जाये।

(4) केन्द्रीय तथा प्रांतीय स्तर पर उपयुक्त कारागार अधिनियमों को पारित करने की आवश्यकता।

(5) भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के सुधार प्रशासन संस्थान को स्थापित करने की जरूरत।

(6) प्रांतीय कारागृहों के विभागों का पुर्नसंगठन करने की जरूरत।

(7) कारागृहों में भीड़ कम करने के लिए अल्प-अवधि की सजा पाये बंदियों का पूर्वविलोकन करने की जरूरत।

(8) अन्डर ट्रायल बंदियों तथा सजा याफ्ता बंदियों को पृथक-पृथक रखने की आवश्यकता।

(9) अन्डर ट्रायल बंदियों के लिए पृथक कारागृहों को स्थापित करने की जरूरत।

(10) बंदियों का वैज्ञानिक वर्गीकरण करके उसके आधार पर उन्हें पृथक रखने की आवश्यकता।

(11) कारागृहों में प्रचलित चिकित्सा सेवाओं तथा औद्योगिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आधुनिकीकरण करने की जरूरत।

(12) कारावास के विकल्पों को तलाशने तथा व्यापक रूप से उनका प्रयोग करने की जरूरत।

(13) परीवीक्षा सेवाओं का विस्तार करने की जरूरत।

(14) कारागृहों के कर्मचारियों की व्यवसायिक कुशलता को बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को आयोजित

करने की जरूरत, तथा ;

(15) कारागृह कर्मचारियों का वैज्ञानिक आधार पर चयन एवं प्रशिक्षण।

इन सिफारिशी योजनाओं को आधार मानकर केन्द्र सरकार ने विभिन्न राज्य सरकारों से जेलों के प्रशासन को सुधारने के लिए वर्किंग ग्रुप द्वारा प्रस्तुत योजना को लागू करने को कहा। प्रत्येक राज्य में 'इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन' के मुख्यालय में 'शोध इकाई' स्थापित करने के लिए कहा गया।

केन्द्रीय सरकार ने जेलों में सुधार के लिए भी कई विभिन्न योजनाओं एवं सिफारिशों को वर्किंग ग्रुप की सलाह पर पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत रखा तथा उसके लिए 100 करोड़ रूपये की राशि प्रदान की गई। राज्य सरकारों से भी यह अपेक्षा की गई कि वे केवल केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राप्त राशि पर ही आश्रित न हों अपितु स्वयं के श्रोतों से प्राप्त राशि को भी जेल प्रशासन में सुधार के लिए खर्च करें। गृह मंत्रालय ने जेलों में सुधार एवं उन्हें आधुनिक बनाने के लिए 1977-78 के बजट में 2 करोड़ रूपयों का प्रावधान रखा तथा 1978-79 के बजट में राशि बढ़ाकर 4 करोड़ रूपये कर दी गई।[53]

सन् 1979 में मुख्य सचिवों के सम्मेलन में इस बात को प्रस्तावित किया गया कि जेलों में बढ़ती भीड़ को कम किया जाये, जिसके लिए विभिन्न प्रकार की सिफारिशें की गई। जिनमें से कुछ इस प्रकार थीं - कारागृहों में एक ऐसे प्रभावशाली तंत्र को विकसित किया जाय जो लगातार 'अन्डर ट्रायल' कैदियों के मामलों की समीक्षा कर सकें, तथा इसके लिए कानून जानने वाले अधिकारियों की नियुक्ति स्थायी या अस्थायी रूप में की जाये। इस बात का प्रयास किया जाय कि न्यायालयों में अपराधियों के मामलों को शीघ्रता से निपटाया जाय। सम्मेलन में यह सिफारिशें भी की गई थी कि कैदियों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करना जिसमें उनकी देखभाल में सुविधा हो। साथ ही इन बातों पर गौर किया गया - पुर्ननिरीक्षण में सुधार, अनुशासन पर अधिक ध्यान दिया जाये, दुराचार व भ्रष्टाचार को समाप्त करने के कठोर प्रयास, कारागार के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करके उनकी योग्यता-गुणवत्ता में सुधार किया जाये।

सन् 1977 में बनाई गई योजना के अंतर्गत राज्य सरकारों द्वारा जेलों में सुधार किया जावे, और सुधार के लिए उन्हें केन्द्र सरकार द्वारा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाये।

इसी के अनुसार सातवें आर्थिक आयोग की सिफारिशों के आधार पर 11 राज्यों के लिए 48.31 करोड़ रूपया अनुदान के रूप में प्रदान किया गया जो पांच वर्षों के लिए (1979-84) जेल प्रशासन एवं

कैदियों की दशा में सुधार करने के लिए था। यह अपेक्षा भी की गई कि जो अनुदान राशि प्रदान की गई है वह मुख्यतः भोजन व्यवस्था, कैदियों के वस्त्र एवं उनकी चिकित्सा, पीने के लिए स्वच्छ जल, मनोरंजन, साफ-सफाई व्यवस्था, बिजली व्यवस्था तथा राज्यों के जेल भवनों के विस्तार व सुधार में खर्च की जावे।[54]

केन्द्रीय सरकार ने भारत की विभिन्न जेलों में सुधार के लिए न्यायमूर्ति ए. एन. मुल्ला की अध्यक्षता में एक समिति गठित की[55] जिसमें 31 मार्च सन् 1983 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की- जिसमें प्रमुख रूप से एक राष्ट्रीय कारागार आयोग का सुझाव दिया गया जो भारतीय जेलों के आधुनिकीकरण की प्रगति का निरंतर मूल्यांकन करता हो। इसके अन्य सुझाव निम्नलिखित हैं-

(1) भारतीय दंड संहिता में आवश्यकतानुसार संशोधन किया जाये।

(2) जेल मैन्युअल का प्राथमिकता के आधार पर पुर्ननिरीक्षण किया जाये।

(3) भारतीय संविधान के भाग 4 में प्रमुख रूप से जेलों की राष्ट्रीय नीति को सूत्र के रूप में वर्णित तथा समावेशित किया जाय।

(4) भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में जेल एवं उससे संबंधित संस्थाओं को शामिल करना चाहिए।

(5) जेलों में सुधार कार्यों को समान रूप देने तथा प्रशासनिक सुधार हेतु विकल्प होना चाहिए और नियम बनाना चाहिए जिसके लिए संसद में स्वीकृति प्राप्त करनी होगी।[56]

जस्टिस मुल्ला द्वारा सौंपी गई रिपोर्ट का अनुसरण करने योग्य कार्यो को देश के गृह मंत्रालय (विभाग) ने स्वीकार किया तथा केन्द्रीय व राज्यों की सरकारों ने भी मान्यता प्रदान की।[57]

जस्टिस मुल्ला समिति की रिपोर्ट के परिणाम स्वरूप ही सन् 1986 में बाल न्याय अधिनियम पारित हुआ था जिसमें किशोर अपराधियों के विचारण व अभिरक्षा संबंधी विस्तृत प्रावधानों का उल्लेख है। समिति ने विक्षिप्त कैदियों को अलग रखने का भी सुझाव दिया था।

इस समिति ने कारागृहों को अद्यतन बनाने तथा कारावासियों की दशा में सुधार करने के लिए राज्यों को 137.50 करोड़ रूपये दिये जाने की सिफारिश की लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के चलते केन्द्रीय सरकार के द्वारा राशि उपलब्ध कराना संभव नहीं हुआ।

मुल्ला समिति ने कैदियों के नये सिरे से वर्गीकरण की आवश्यकता पर जोर देते हुए उनकी

विभिन्न समस्याओं के निवारणार्थ अन्य देशों की तरह भारत में भी एक लोकायुक्त नियुक्त किये जाने की सिफारिश की थी। मुल्ला समिति के कुछ अन्य सुझाव इस प्रकार हैं :-

(1) कारागृहों की दशा सुधारने के लिए उनकी स्वच्छता, हवादारी, कैदियों के भोजन, कपड़ों, पीने के लिए स्वच्छ जल इत्यादि पर मुख्य रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए।

(2) कारागृहों के अधिकारियों व कर्मचारियों को विभिन्न काडर (Cadrer) में वर्गीकृत करके उनके प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था का किया जाना आवश्यक है।

(3) बंदियों की उत्तरवीक्षा, पुर्नवास एवं पैरोल व परीवीक्षा को कारागृह-व्यवस्था का अभिन्न अंग माना जाए।

(4) मीडिया से संबंधित व्यक्तियों एवं समाजसेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को समय-समय पर कारागृहों के निरीक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए जिससे जनता को कारागृहों की वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी हो सके तथा बंदियों के पुर्नवास में उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त हो सके।

(5) कारागृहों में विचाराधीन कैदियों को सिद्धदोष कैदियों से अलग रखे जाने की जरूरत है। इसके साथ ही विचाराधीन कैदियों के शीघ्र विचारण की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे उन्हें कम से कम समय कारागृहों में रहना पड़े।

इसके बाद भारत सरकार ने मई 1986 में महिला कारावासियों की स्थिति में सुधार के लिए उच्चतम न्यायालय के 'न्यायाधीश श्री व्ही. के. कृष्णा अय्यर' की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट 1 जून 1987 को प्रस्तुत की। इस समिति की प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार थीं -

(1) भारत की महिला कैदियों के लिए एक राष्ट्रीय नीति बनाई जाय।

(2) महिला कैदियों के लिए दंड और आचरण के लिए नये नियम बनाये जायें।

(3) पुलिस, कानून तथा कारागृहों में एक ऐसा सामंजस्य स्थापित हो ताकि महिला कैदियों के साथ न्याय किया जा सके।

(4) उन्हें वैधानिक सहायता प्रदान की जाये।

(5) महिला बंदियों के लिए अलग कारागृह हों।

(6) महिला कैदी से जन्में बच्चे की जेल में उचित देखभाल की जावे। कारागृहों में माँ एवं बच्चे के

लिए पौष्टिक भोजन की व्यवस्था हो।

(7) महिला अपराधियों के लिए और अधिक महिला पुलिस कर्मियों की नियुक्ति की अनुशंसा की।

(8) समिति ने शहरी क्षेत्रों के बाल अपराधों से निपटने के लिए विशेष बाल अपराध प्रकोष्ठ स्थापित किये जाने की अनुशंसा की।[58]

इसके अलावा समय-समय पर विभिन्न मंचों के द्वारा कैदियों एवं कारागारों की स्थिति को सुधारने के लिए विद्वानों के द्वारा सुझाव प्रदान किये जाते रहे हैं। जिनमें से कुछेक सुझावों पर अमल भी किया गया। जबकि कई महत्वपूर्ण सुझाव आर्थिक तंगी के चलते अमल में नहीं लाये जा सकें।

वर्तमान समय में देश में निम्नलिखित प्रकार से कारागृहों को वर्गीकृत किया गया है -

(1) केन्द्रीय कारागार- इसमें 700 से लेकर 1000 तक बंदियों के रखने का स्थान उपलब्ध होता है।

(2) जिला कारागार- इसमें 100 से लेकर 500 तक बंदियों को रखने का स्थान होता है। इन कारागृहों को 5 श्रेणियों में बंदियों की संख्या के आधार पर पुन: विभाजित किया जाता है।

(3) अल्पवयस्क कारागार- इसमें अल्पायु के बंदी रखे जाते हैं।

(4) हवालात कारागार- इसमें विचाराधीन कैदी रखे जाते हैं।

(5) महिला कारागार- इसमे सिर्फ महिला बंदियों को रखा जाता है।

(6) खुले कारागार- इन कारागृहों में सुरक्षा न्यून होती है। इन कारागृहों में अच्छे आचरण वाले बंदियों तथा सामान्य कारावासों की आधे से अधिक सजा की अवधि को पूरा करने के पश्चात् बंदियों को भेजा जाता है।

(7) आदर्श कारागार- इन कारागृहों को मध्यम सुरक्षात्मक कारागृहों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इन कारागारों में केवल निम्न प्रकार के कैदियों को रखे जाने का प्रावधान है -

(1) गंभीर अपराध करने वाले,

(2) बंदी आकस्मिक अपराधी या प्रथम अपराधी हो,

(3) शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ,

(4) अच्छे व्यवहार का अभिलेख एवं,

(5) दीर्घ कालीन सजा

उपरोक्त प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के जेलों के विकास का संक्षिप्त अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि प्राचीन काल के कारागृहों में न तो कैदियों के रहने की उचित व्यवस्था थी और न ही उनके भोजन, पानी, स्वच्छ वस्त्र, इत्यादि की व्यवस्था का कोई प्रबंध था। कारागृह अत्यंत दयनीय स्थिति में थे और इन कारागृहों में कैदियों को कठोर यातनाऐ दी जाती थीं।

18 वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में इंग्लैंड, यूरोप एवं अमेरिकन देशों में कारागृहों की दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये लेकिन ब्रिटिश भारत में कारागृहों की दशा दयनीय ही बनी रही क्योंकि ब्रिटिश प्रशासन द्वारा अपने उपनिवेश (भारत) के लिए कोई आर्थिक सहायता उपलब्ध नहीं कराई गई।

वर्तमान समय में भारतीय कारागारों को जो स्वरूप प्राप्त है उसकी शुरूआत भारत का ब्रिटिश उपनिवेश बनने के पश्चात् ही हुई है। ब्रिटेन का उपनिवेश बनने के बाद भारतीय कारागार प्रशासनिक व्यवस्था में नये युग का सूत्र-पात हुआ साथ ही साथ वैधानिक व्यवस्था में भी परिवर्तन हुये। ब्रिटिश भारत के कारागारों की दशा को सुधारने के लिए ईस्ट-इंडिया कंपनी के संचालकों ने प्रयास किए जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश शासन ने विभिन्न समितियों का गठन करके भारतीय कारागृहों की दशा को सुधारने का उन समितियों के सुझावों के आधार पर प्रयास किया।

भारत के स्वतंत्र होने के बाद देश में कारागृहों एवं बंदियों की दशा को सुधारने के विभिन्न प्रयास किये गये। केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान राशि प्रदान करके जहां कैदियों को मूलभूत सुविधाये उपलब्ध कराईं गईं वहीं विभिन्न राज्यों में नवीन कारागृहों का निर्माण कार्य किया गया। महिला एवं बाल अपराधियों को रखने के लिए अलग से कारागृह निर्मित किये गये। कैदियों को कारागृहों में विभिन्न प्रकार के उद्योग कार्यों में लगाया गया बदले में उन्हें पारिश्रमिक प्रदान किया जाने लगा। कारागृहों में जो सुधारवादी कार्यक्रम लागू किये गये उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) धार्मिक एवं नैतिक

(2) शैक्षिक और

(3) शारीरिक व्यायाम एवं मनोरंजन आदि।

केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के प्रयासों से जहां भारतीय कारागारों की स्थिति में सुधार हुआ

वहीं कारागृह प्रशासन को भी कैदियों से उचित व्यवहार करने की अपेक्षा की गई।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय कारागार व्यवस्था में प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान काल तक कई क्रांतिकारी बदलाव आये हैं। केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों ने भी कारागारों में विकास के लिए पर्याप्त प्रयास किये, हालांकि इसमें अभी भी कई खामियाँ है, जिनकों सुधारने की पर्याप्त आवश्यकता है।

¤ ¤ ¤

Notes & References :-

(1) Narval Marris- "The future of Imprisonment on chicago lpress, chicago, 1974 quoted in 5 m. Diaz." "Prison Administration in India", The Indian Journal of Public Administration Vol. XXV, (Jan- march) 1979, No. 1 The Indian Institute of Public Administration New Delhi, P. 124

(2) Ibid

(3) Harish Chandra Saksena, "prisons and prison relation", encyclopedia of social work in India Vol. 1, Publication Division, Government of India New Delhi, 1987, p.313

(4) max Grunhut-penal refrom clarendon press, oxford, 1948 P. 24-25, 15-8 A Comparative Study ,

(5) S.M. Diaz, op. cit, p. 120

(6) K.V.R. Aiyanger, "Some Aspects of Ancient Indian Poli..."

(7) Vasudev upadhaya , op, cit, p. 323

(8) S. Prakash,"History of Indian Prisan System" The Jaurnal of Corrertional work, No. XXII Jail Training School, Lucknow, 1976, P. 89

(9) वासुदेव उपाध्याय op. cit. p. 323

(10) वासुदेव उपाध्याय op. cit. p. 324-325

(11) A.L. Bashan "The wonder that was India"

(12) V.R. Ramchandara Dikhitar "The "

(13) वासुदेव उपाध्याय op. cit. p. 327

(14) शुक्ला-दास ''क्राइम्स एण्ड पनिशमेंट इन एनसियन्ट इंडिया'' अभिनव, नई दिल्ली, 1977

(15) मो. हामिद कुरेशी, 'राजगिर' रिवाईज्ड आर. ए.जी. घोष, डायरेक्टर जनरल ऑफ आर्केलॉजी, नई दिल्ली 1998, P. 27-28 quoted in Indra J. Singh op, cit, p. 20

(16) V. R. Ramchandra .... op cit, p. 172-173, quoted in Indra J. Singh op, Cit, p. 20

(17) C.S. Malliah "Development of prison administration in India" Social ...

(18) Jad

(19) Ibid

(20) सत्यप्रकाश सेंगर ''क्राइम एण्ड पनिसमेंट इन मुगल इण्डिया'' सेटरलिंग - दिल्ली 1967, पृ. 34

(21) Ibid, pp 35-36

(22) R.N. Datir "prison is a social system "popular prakasan, Bombay- 1981 p-47

(23) Ibid, p. 50

(24) Ibid, p-50

(25) C.S. Malliah, op. cit. , p. 36

(26) टेफ्ट डोनाल्ड- क्रिमनॉलाजी - पृ. 470

(27) लाइनेल फॉक्स :- स्टेडी इन पेनोलॉजी , प्रकाशित IPPC 1964 P. 177

(28) H.E. Barwes & N.K. Teeters, New Horizon's in criminology

(29) Negley K. Teeter's :-

(30) गिलिन एण्ड गिलिन- क्रिमनोलॉजी

(31) डोनाल्ड टेफ्ट :- क्रिमनोलॉजी (चौथा संस्करण) पृ. सं. 408

(32) लियोन रिडझिनो विझ :- द ग्रोथ आफ क्राइम पृ. क्रं. 257

(33) Vidya Bhusan "prisan Administration in Uttar pradesh" 1953 P.12

(34) G.R. Madan, "Indian Social Problems", Vol. 1, Allied, New Delhi, 1981 p. 126

(35) Bejay Shankar Kaikerwal "Economic and social Aspect of Crimes in India", Allen & Unwin, London, 1934, p. 198

(36) G.R. Madan, op. cit. p. 127

(37) Devakar, "Prison's and prison Reforms in British India", Social deffrence Vol. XX, Number 79, January 1985, National Institute of Social Deffrence , Minister of Social welfare, New Delhi, p.12

(38) Kumkum Chanda "The Indian Jail", Vikas, new Delhi, 1983 P. 150

(39) G.R. Madan, op. cit. p. 127

(40) R.N. Datir, op. cit. , p. 57

(41) Devakar, op. cit. p. 13

(42) Kum-Kum Chanda op. cit. p.

(43) C.S. Malliah, op. cit p. 38

(44) G.R. Madan op. cit. p. 128

(45) C.S.Malliah op. cit. p. 38

(46) Kum-Kum Chanda op. cit. p. 151

(47) Extract from the report of indian Jails Committee (1919-1920), Vol. I, Superintendent Government Control

(48) Vidya Bhusan, op. cit. p. 22

(49) Planning Commission, "Plans and prospects of social welfare in India,- 1951-1961", Government of India, New Delhi, 1963, p. 143

(50) H. C. Saksena, op. cit. p. 315

(51) Ibid

(52) C.S. Malliah, op. cit, p. 40

(53) H.C. Saksena, op. cit. p. 315

(54) "India 1983", Ministry, of Information and Broadcasting ,Government of India New Delhi, 1983, p. 450

(55) C.S. Malliah. op. cit. p. 450

(56) Report of the Chief united Nations Correspondent in India in the field of the prevention of crime and the Treatment of offenders, (from 1-1-1983 to 31-12-1983) ministry of social welfare, government of India, New Delhi, pp. 1-2

(57) जस्टिस ए. एन. मुल्ला समिति- 31 मार्च 1983 को जेलों से संबंधित सुधार के लिए गठित समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी।

(58) डॉ. ना. नि. परांजपे : अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन (संस्करण 2000)।

(59) डॉ. डी. एस. बघेल उपराध शास्त्र (संस्करण 2000)।

(60) डॉ. श्रीवास्तव :- अपराध शास्त्र

¤ ¤ ¤

अध्याय 3

विधि एवं कारावासियों के अधिकार

विधि स्वतंत्रता की रक्षा के लिए है। किंतु राज्य के प्राधिकार और विधि तथा व्यवस्था बनाए रखने से उसके कर्तव्य का मानव भावनाओं और लोगों की स्वतंत्रता से हमेशा विरोध रहा है जैसा कि इतिहास ने प्रदर्शित किया है, स्वतंत्रता ऐसी मूल चीज है जो मानव के लोकाचार और सभ्यता को पूर्णता प्रदान करती है। उसके बिना किसी को सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती और जो समस्त मानव जाति का अंतिम लक्ष्य है। किंतु स्वतंत्रता को इस प्रकार नियंत्रित किया जाना है जिससे कि सब उसका समान रूप से उपयोग कर सकें। पूर्ण स्वतंत्रता न तो संभव है और न ही वह किसी समाज में पायी जाती है।

कारागारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और कैदियों के अधिकार

अपराध, दमन और अन्याय हमेशा मानव स्थितियों के अंग रहे हैं। उसी प्रकार कैदखाने हैं जिनमें व्यक्तियों को उनके असामाजिक और गैरकानूनी कृत्यों के लिए रखकर दण्डित किया जाता है। पारंपरिक रूप से कारागारों और कैदियों को समाज के द्वारा उल्लंघन पूर्ण रहस्यपूर्ण और घृणित तत्वों के रूप में माना जाता है। कारागारों का इतिहास और दण्डित व्यक्तियों के लिए कैद में रखने के स्थान के रूप में उसका उपयोग हाल ही की उत्पत्ति नहीं है बल्कि इसका चलन बहुत पुराना है। इस शताब्दी के प्रारंभ तक किसी कारावास के विधि बहिष्कृत सहवासियों (विधि विद्रोही सहवासियों) को समाज के कानून का पालन कर्ता व्यक्ति के द्वारा भोगे जाने वाले किसी अधिकार का दाबा करने के लिए कभी योग्य नहीं समझा गया। उसे जेल में केवल अपनी मूर्खता का अहसास कराने और अपनी दुर्दशा के माध्यम से उसकी सजा भुगतने के लिए जेल में डाला गया।

ब्रिटेन में सोलहवीं शताब्दी के मध्य काल में अधिकतर किशोर अपराधियों, हट्टे-कट्टे भिखारियों, आबारागर्दी करनेवालों (बदमाशों) और वेश्यावृत्ति कर्ताओं जैसे कुछ श्रेणियों के अपराधियों को दण्ड के रूप में ''कैद की सजा सहित अनुभव'' का समय आरंभ हुआ।[1] लंदन का 'ब्राइड वैल' एम्सटरडम रासफियस तथा स्पहिन्हूइस की स्थापना क्रमश: 1557, 1595 और 1597 में की गई, फ्रांसिस फ्लोरेंटाइन हास्पाइस की स्थापना लगभग 1677 में हुई, रोम में सेंट माइकेल्स हास्पाइस में लड़कों और महिलाओं के लिए सुधारालयों की स्थापना 1704 में तथा 1735 में हुई, इन सभी स्थानों में इन संस्थाओं को स्थापित किया गया, जबकि दूसरी ओर इन प्रयोगों से विद्धध जनता में जोरदार प्रतिक्रिया हुई। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक प्रयोग का काल समाप्त हुआ। उस समय अधिकांश शारीरिक या बड़े दण्डों के बदले कैद की सजा को सम्पूर्ण

रूप से मान लिया गया।[2]

ब्रिटिश कारावास व्यवस्था के सुधार के प्रति एक महत्वपूर्ण योगदान ग्लेड्सटन समिति का था। इस समिति को कारावास जीवन की प्रमुख विशेषताओं में ''खोजी जाँच'' करने के लिए नियुक्त किया गया था। कारावास इतिहास में ग्लेड्स्टन समिति की रिपोर्ट को 'आतेमहत्वपूर्ण और बहुत अग्रगामी दस्तावेज' माना गया। रिपोर्ट ने स्पष्ट रूप में इंगित किया कि सजा के अपमार्जक उद्देश्य पर अनुचित बल दिया गया था और बंदीगृहों में सजा भोग रहे कैदियों के सुधार पर बहुत कम जोर दिया गया। समिति ने सिफारिश की कि कैदियों को न केवल दण्डित कैदियों के बतौर माना जाए बल्कि इस तंत्र को इस प्रकार अभिकल्पित किया जाए कि वह अलग-अलग कैदियों के विशिष्ट मामलों में अपनाने के योग्य हो सके।[3] समिति के द्वारा यह भी कहा गया कि ''लाड्र्स सदन'' की समिति ने गलती से यह निष्कर्ष निकाला ''कि जिस तंत्र को सामान्यत: एक पृथक तंत्र के रूप में जाना जाता था उसे अब कारागार अनुशासन की स्थापना के रूप में न माना जाए और उसका सख्ती से पालन एक महत्वपूर्ण सिद्धांत न माना जाए।'' यह सिद्धांत कि कारागारों में ''कठिन परिश्रम, मोटा खाना और कड़ा बिस्तर'' की व्यवस्था हो, अब उपयोगी नहीं है बल्कि पुरानी संकल्पनाएँ है।[4]

समिति की रिपोर्ट को गृहसचिव ने कारावास प्रशासन के नए आधार के रूप में मान्यता दी। यह प्रस्तावित किया गया कि कैदियों की उच्च भावनाओं को बनाए रखने, उन्हें प्रेरित करने और सचेत रखने के लिए कारागृह व्यवहार को प्रभावी रूप में अभिकल्पित किया जाए और कैदियों को जब वे कारागृहों में आते हैं, उसकी अपेक्षा जब वे कारागृहों से सजा काटकर बाहर निकलते हैं, वे शारीरिक रूप से और नैतिक रूप से बेहतर पुरूष और महिलाओं के रूप में जेल से बाहर निकलें।[5] ग्लेड्स्टन समिति की सिफारिशों के आधार पर कारावास अधिनियम 1898 पारित हुआ जिसने इंग्लैंड में वर्तमान प्रणाली को विधिक रूप प्रदान किया। पाँच मूल सिद्धांत जिन पर इंग्लैंड में मौजूदा कारावास तंत्र आधारित है, इस प्रकार है:-

(1) यह कि उपयुक्त समयावधि की सजाओं वाले सभी कैदियों के लिए कारावास प्रणाली एक रचनात्मक प्रशिक्षण नैतिक, मानसिक और व्यवसायिक प्रकार की हो।

(2) यह कि ऐसा प्रशिक्षण केवल इस प्रयोजन के लिए अलग रखी गई समरूप स्थापनाओं में संपूर्ण रूप में दिया जा सकता है।

(3) यह कि विशिष्ट प्रशिक्षण कारागृह सभी कैदियों के लिए सामान्य कारावास भवनों की सुरक्षा प्रदान करे, यह जरूरी नहीं।

(4) यह कि कारागृह के बाहर के समाज की सेवाएं प्रत्येक व्यवहार्थ समय पर प्रशिक्षण में सहायतार्थ ली जाए। और

(5) यह कि समाज का यह निरंतर मिलनेवाला दायित्व कैदी के जेल से छूटने के पश्चात भी उसके सामाजिक पुर्नवास के प्रति प्रभावी सहायता के रूप में बनाए रखा जाए।[6]

मैकाले ने पहली बार भारत सरकार का ध्यान भारतीय जेलों में पायी जानेवाली भयंकर और अमानवीय स्थितियों की ओर आकर्षित किया। उनके सुझाव पर कारागृह प्रशासन और कारागृह स्थितियों के बारे में जॉच करने के लिए 1836 में एक समिति को नियुक्त किया गया। यह प्रथम समिति थी जिसने भारतीय जेलों की मौजूदा स्थितियों पर विचार किया और उनकी जाँच की और उसने अपनी रिपोर्ट 1838 में प्रस्तुत की जिसमें (कारागृह के प्रशासन में) अनुशासन हीनता, भ्रष्टाचार और आम सड़कों पर बाहरी श्रम में कैदियों को लगाने की प्रणाली की कटु आलोचना की गई।[7] दुर्भाग्यवश समिति ने अपनी सिफारिशों में जानबूझकर अच्छे आचरण के लिए नैतिक और धार्मिक शिक्षण शिक्षा अथवा ऐसी किसी प्रणाली जैसे समस्त सुधारात्मक प्रभावों को अस्वीकृत कर दिया।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि समिति की रिपोर्ट पर दण्ड के निवारक (अपमार्जक) पक्ष के इंग्लैंड में विद्यमान समकालीन विचारों का प्रभाव पड़ा। किंतु समिति के पक्ष में जो एक बात जाती है, वह यह है कि इस समिति की सिफारिशों से भारत में कारागृह सुधारों की प्रक्रिया शुरू हुई।

बहुत वर्षों तक समिति की स्थापना के पश्चात कारागृह सुधारों और कैदियों के मानवीय व्यवहार की संकल्पना में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। किन्तु 1894 में कारागृह अधिनियम पारित हुआ जिसमें भारत में वर्तमान कारागृह के लिए विधिक आधार प्रदान किया गया।[9] यह कहा गया कि कुछ उपयोगी और उचित उपबंधों के बावजूद अधिनियम में मुख्यत: कारागृह प्रशासन की ब्रिटिश प्रणाली के समकालीन विचारों को शामिल किया गया।

किंतु जेल के भीतर जेल की स्थितियों और कैदियों के प्रति व्यवहार में कोई बड़ा परिवर्तन नहीं आया। यह कभी नही सोचा गया कि कैदियों को जेल से बाहर किए जाने पर उसी समाज में रहना

है,जिसमें से उसे अपने अविधिक (गैर कानूनी) कार्यों के कारण बहिष्कृत किया गया था किंतु किसी प्रकार से दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात दण्ड के सुधारात्मक पहलू के विचार पर अपेक्षित ध्यान दिया गया ऐसा इस तथ्य के कारण संभव हुआ कि विश्व युद्ध के दौरान निर्दोष जनता को व्यापक रूप में यातनाएँ दी गई और उन पर अत्याचार किए गए। इससे राज्यों को मानवता की संकल्पना पर पुर्नविचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जनता (प्रजा) के प्रति मानवीय व्यवहार के लिए और राज्य की सत्ता के विरूद्ध प्रजा के अर्न्तनिहित अधिकारों की रक्षा के लिए एक आंदोलन शुरू किया गया।

मानव अधिकार आंदोलन और कैदियों पर उसके प्रभाव

1948 में संयुक्त राष्ट्र संगठन में मानव अधिकारों की वैश्विक घोषणा के रूप में एक आंदोलन शुरू किया गया।[10] इस दस्तावेज में विधि के कुछ मूल सिद्धांतों का प्रावधान था, जिन्हें नगरपालिका न्यायालयों के द्वारा न्याय के प्रशासन की प्रक्रिया में लागू किया जाना था। इन सिद्धांतों में व्यवहार की समानता, व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुरक्षा के अधिकार और यातना, दुष्टतापूर्ण,क्रूर, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार से छुटकारा जैसी कुछ विशिष्ट संकल्पनाएँ शामिल थीं।[11]

एमनेस्टी इंटरनेशलन ने कैदियों के प्रति व्यवहार के लिए कुछ न्यूनतम मानक नियम निर्धारित करके मानव अधिकार आंदोलन में योगदान दिया।[12] इस दस्तावेज में कैदियों के प्रति व्यवहार के लिए बहुत से उपयोगी उपबंध है। इसमें उम्र, लिंग, अपराध के प्रकार और किए गये अपराध के गुरूत्व के आधार पर कैदियों को अलग-अलग रखने का प्रावधान है। इन नियमों ने कारागृह अपराधों के लिए दण्ड के रूप में कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा एकांत कैद, भोजन में कटौती तथा अन्य हानिकर उपायों जैसे दण्ड की भी भर्त्सना की। नियमों में कैदियों के सामाजिक पुर्नवास और जेल से रिहा होने के बाद के कार्यक्रम के बारे में व्यवस्था की गई।[13]

मानव अधिकारों पर यूरोपीय कन्वेंशन एक ऐसा बड़ा दस्तावेज है जिसने मानव अधिकार आंदोलन को गति प्रदान की।[14] उक्त चर्चित अन्य दस्तावेजों (प्रलेखो) के समान इसने भी कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार की व्यवस्था की और राज्य के अव्यवस्थित (ऊलजलूल) और काल्पनिक कृत्यों के विरूद्ध कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षण निर्धारित किए। इस दस्तावेज की बड़ी उपलब्धि यह है कि मानव अधिकार आयोग के रूप में मानव अधिकारों की रक्षा के लिए एक तंत्र की व्यवस्था की गई जिसके अुनसार सदस्य देशों की

प्रजा कंन्वेंशन उन्हें जिन अधिकारों या सुरक्षणों की गारंटी देती है, उसके विभिन्न अनुच्छेदों के उल्लंघन के लिए उपचारों की मांग कर सकती है।[15]

यातना से संरक्षा पर एक महत्वपूर्ण दस्तावेज संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 में पारित किया, इस प्रलेख ने कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार की वकालत की है और उनके प्रति यातना, अमानवीय, दुष्टतापूर्ण तथा अपमानजनक व्यवहार या उन्हें दण्डित करने के विरूद्ध बहुत से सुरक्षण प्रदान किए हैं।

इन कन्वेंशनों और घोषणाओं का यह प्रभाव हुआ है कि न्यायालयों ने दण्ड के सुधारात्मक पक्ष को पहचाना और कैदियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में जिन्हे जेल से रिहा होकर समाज में एक सुधरे हुए व्यक्ति के रूप में जाकर रहना है, मानना शुरू किया। आज न्यायालय व्यक्तियों के अर्न्तनिहित अधिकारों के रूप में कुछ न्यूनतम सुविधाएँ प्रदान करने और कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार और उनके सामाजिक पुर्नवास पर जोर देने में व्यस्त हैं।[16]

भारत में कैदियों के अधिकारों के संबंध में संवैधानिक और अन्य सांविधिक उपबन्ध

भारतीय संविधान में कैदियों के अधिकारों की कोई विशिष्ट गारंटी नहीं है। किंतु संविधान के भाग 3 में जो भी अधिकार वर्णित हैं वे कैदियों को भी उपलब्ध हैं क्योंकि कैदी कारागृह में एक व्यक्ति के रूप में रहता है। संविधान के अलावा कारागृह अधिनियम 1894, कैदी अधिनियम 1900 और कैदी (न्यायालयो में उपस्थिति) अधिनियम 1955 जैसी कुछ अन्य संविधियाँ भी हैं जिनमें कैदियों को कुछ अधिकार प्रदान किए गए हैं। कारागृह और पुलिस नियम-पुस्तकें, जिनमें कैदियों के लिए कुछ नियम और सुरक्षण भी हैं, इन नियमों के पालन के लिए कारागृह प्राधिकारियों पर कुछ दायित्व डालती हैं।

संबैधानिक उपबन्ध

भारत के संविधान में एक महत्वपूर्ण उपबन्ध जिसका प्रयोग सामान्यत: न्यायालयों के द्वारा किया जाता है, अनुच्छेद 14 है जिसमें समानता का सिद्धांत सम्मिलित है, वह इस प्रकार है:

राज्य विधि (कानून) के सामने किसी व्यक्ति की समानता से अथवा भारत की राज्य सीमा के भीतर विधियों के समान संरक्षण से इंकार नहीं करेगा। यह नियम कि 'समरूप को एक जैसा माना जाए' और अनुच्छेद 14 में यथा समाविष्ट उचित वर्गीकरण की संकल्पना कैदियों की श्रेणी और विभिन्न श्रेणियों में

वर्गीकरण के उनके आधार को निर्धारित करने हेतु न्यायालयों के लिए बहुत उपयोगी मार्गदर्शक रहीं हैं।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19 भारत के नागरिकों को छह स्वतंत्रताओं की गारंटी देता है ।[17] इन स्वतंत्रताओं के साथ-साथ कुछ स्वतंत्रताएँ जैसे- 'घूमने फिरने की स्वतंत्रता' 'निवास करने और रहने की स्वतंत्रता' और 'वृत्ति, व्यवसाय, व्यापार अथवा कारोबार की स्वतंत्रता' का उपयोग कैदियों के द्वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि ये स्वतंत्रताएँ इसी प्रकार की है और बंदीकरण की स्थिति की वजह से हैं।

किन्तु 'बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' 'किसी संघ का सदस्य बनने की स्वतंत्रता' आदि का उपयोग कैदी के द्वारा कारागृह में रहते हुए भी किया जा सकता है और इस स्वतंत्रताओं का उसकी कैद की सजा या दण्ड से कुछ लेना-देना नहीं है किंतु वास्तव में इन स्वतंत्रता का उपयोग कारागृह की परिसीमाओं के अंतर्गत किया जाएगा।

अनुच्छेद 20 का खंड (1) व्यक्तियों की संरक्षा कार्योत्तर विधियों से करता है उसमें व्यवस्था है [18]:

किसी व्यक्ति को अपराध के रूप में किए गए कार्य के समय लागू विधि (कानून) के उल्लंघन के सिवाय किसी अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जाएगा और न उसे अपराध किए जाने के समय विधि के अधीन लागू दण्ड से बड़ा दण्ड ही दिया जाएगा।

तब अनुच्छेद 20 के इस खंड में किसी कैदी को किसी ऐसे दण्ड या दांडिक स्थितियों (कैद या सजा सहित) से बचाने की व्यवस्था है, जो दंड किसी ऐसे समय विधि के द्वारा प्राधिकृत नहीं थे जब उसने कथित कार्य किया हो ओर जिसके लिए उसे दोषी ठहराया गया तथा विधि के अधीन दिए अनुसार उस समय मुकदमें में विचार के पश्चात कैद की सजा दी गई हो दूसरे शब्दों में उसके लिए ऐसे कठोर परिश्रम की कैद की सजा की स्थितियाँ अधिनियमित नहीं की जा सकती और न ही दी जा सकती हैं जो जिस समय उसने अपराध किया हो और जिसके लिए सम्बन्धित कैद की सजा उसे दी गई हो, उस समय विधि के द्वारा निर्धारित न की गई हो।

अनुच्छेद 20 (2) में 'दोहरी जोखिम' का सिद्धांत शामिल है [19], अर्थात:
किसी व्यक्ति को उसी अपराध के लिए एक से अधिक बार अभियोजित या दंडित नहीं किया जाएगा।

यह खंड ''नेमो डेबेट विस वेक्सरी'' के सामान्य विधि नियम को दर्शाता है कि किसी व्यक्ति को उसी अपराध के खतरे में दो बार नहीं रखा जाना चाहिए उसी अपराध के लिए परवर्ती अभियोजन और दण्ड के लिए पूर्ववर्ती अभियोजन और दण्ड पूर्णत: सुरक्षा का कार्य करेगा।

एक महत्वपूर्ण सुरक्षण, जो चल रही न्यायालयीन जाँच (मुकदमे) और 'कैदियो' के लिए उपयोगी है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 (3) में दिया गया है।[20] इस उपबंध के कारण जेल के प्राधिकारी अथवा पुलिस प्राधिकारी कैदियों को ऐसा साक्ष्य देने को बाध्य नहीं कर सकते जिसमें आपराधिक परिणामों के लिए उनके प्रकटीकरण की संभावना हो। अभियोजन का कर्तव्य उचित संशयों के परे मामले (प्रकरण) को प्रमाणित करने का है और अभियुक्त को स्वयं अभिशंसी सबूत (साक्ष्य) प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

जहाँ तक कैदियों के अधिकारों का संबंध है, संविधान का अनुच्छेद 21 मुकदमेबाजी का एक बड़ा केन्द्र बिंदु रहा है। इसमें स्वातंत्रता का सिद्धांत सम्मिलित है। उसमें व्यवस्था है:

विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि में प्रदत्त के सिवाय किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से बंचित नहीं किया जाएगा।

इस सरल शब्दों में दिए गए उपबन्ध का प्रयोग भारत के सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा कैदियों, जिनके बारे में संविधान में उनके अधिकारों की कोई औपचारिक गारंटी नहीं है[21], सहित व्यक्तियों के कुछ महत्वपूर्ण अधिकारों की संरक्षा करने हेतु कुछेक पूर्ववर्ती मामलों में और हाल ही में अधिक व्यापक रूप में किया गया है।[22] मेनका गांधी के मामले के पश्चात यह उपबंध न केवल कार्यपालिका की ओर से किए गए मनमाने कार्यो से रक्षा करता है बल्कि ऐसे विधायी आघातों से रक्षा करता है जो किसी अनुचित या अतार्किक विधि से विद्वेष नहीं रखते।[23] व्यक्तियों को जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए अच्छी और उचित कार्यविधि होनी चाहिए। अनुच्छेद 21 का मूल उद्‌देश्य विधानपालिका (विधानांग) के प्राधिकार को परिसीमित करने का नहीं है बल्कि कार्यपालिका या विधानपालिका की ओर से किए जानेवाले मनमाने और अनुचित आघातों से संरक्षा करने का है।

अनुच्छेद 22 (4) से (7) में निरोधक कैद विधियों के अधीन कैद किए गए ''कैदियों'' के लिए कुछ विशेष सुरक्षण प्रदान किए गए हैं। खंड (4)[8] में कैद की अधिकतम अवधि दो माह की व्यवस्था

है । जिसके लिए कैदी को सलाहकारी बोर्ड का अभिमत प्राप्त किये बिना बंदी बनाकर रखा जा सकता है।[24] सलाहकारी बोर्ड की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना इस अवधि से अधिक की कैद के मामले में कैद का आदेश अमान्य हो जायेगा।

अनुच्छेद 22 का खंड (5) बंदी को दो अधिकारों की गारंटी देता है[25] वे हैं :-

1. कैद करने का आदेश देने वाले अधिकारी को 'यथाशीघ्र' बंदी बनाए गए व्यक्ति तथा बंदी बनाने के कारणों और उन तथ्यों की सूचना दी जाए, जिन तथ्यों के आधार पर अधिकारी को आदेश पारित करने हैं,

2. बंदी बनाये गये व्यक्ति को यथाशीघ्र बंदी बनाने के आदेश के विरुद्ध अपने मामले की कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त ब्यौरे दिये जाने चाहिए।

यह खंड बंदीकर्त्ता अधिकारी को इस प्रकार कर्त्तव्यशील बनाता है कि वह बंदी के द्वारा अपने बचाव की तैयारी के लिए आवश्यक ब्यौरे और उसे कैद किये जाने के आधारों की पूर्ति उसे करे।

अपर्याप्त तथ्यों या ब्यौरों और आधार की अस्पष्टता कैद को अमान्य कर सकती है।[26]

अनुच्छेद 22 के खंड (6) में व्यवस्था है कि प्राधिकारी जनहित में बंदी को कुछ तथ्यों की जानकारी देने से इन्कार कर सकता है।[27] किन्तु दूसरी ओर खंड (5) में बंदी बनाने वाले प्राधिकारी को ऐसे कुछ तथ्य प्रकट करने होंगे और ऐसे ब्यौरे देने पड़ेगें, जो बंदी के लिए अपने बचाव, की तैयारी हेतु अनिवार्य हों।

अनुच्छेद 22 के खंड (7) के अधीन सलाहकारी बोर्ड के गठन का उपबंध है।[28] यह ऐसा निकाय होगा जो कर्यांग नियंत्रण से युक्त होगा और एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निकाय रहेगा। अनुच्छेद 21 गांरटी देता है कि किसी व्यक्ति को विधि के द्वारा स्थापित कार्य विधि के अनुसार के सिवाय उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से बंचित नहीं किया जाएगा। यह अधिकार सभी नागरिकों तथा गैर नागरिकों को उपलब्ध है।

अनुच्छेद 22 के खंड (1) और (2) सामान्य विधि के अधीन बंदीकरण के बारे में है और यथाशीघ्र गिरफ्तारी के कारणों की सूचना दिए जाने के अधिकार, उसे अपनी पसंद के किसी वकील से सलाह लेने और अपना बचाव करने के अधिकार किसी मजिस्ट्रेट के सामने प्रस्तुत किए जाने के अधिकार को सुनिश्चित करते हैं।

अनुच्छेद 22 के खंड (3) के अधीन ये चार सांविधिक सुरक्षण विदेशी शत्रु को तथा ऐसे व्यक्तियों को मना किए गए हैं जिन्हें निरोधक बंदीकरण के लिए प्रदत्त किसी विधि के अधीन गिरफ्तार किया जाए अथवा बंदी बनाया जाए।

किसी ऐसी विधि जिसमें निरोधक बंदीकरण की व्यवस्था हो के अधीन बंदियों के लिए प्रदत्त सुरक्षण कार्यक्षेत्र में अत्यंत सीमित है। यह संवैधानिक आवश्यकता कि बंदीकरण का आदेश देनेवाला प्राधिकारी यथाशीघ्र ऐसे व्यक्ति को उन कारणों की सूचना देगा जिनके आधार पर आदेश दिया गया और आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन देने का उसे अतिशीघ्र अवसर प्रदान करेगा इस अर्थ में सीमित है कि आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी को तथ्यों को अस्थगित करने की विवेकाधीन शक्ति प्राप्त है बशर्ते कि वह उन्हें तथ्यों को प्रकट करना लोकहित के विरूद्ध समझे। कारणों की जानकारी देना और सलाहकारी बोर्ड की रिपोर्ट संविधान के द्वारा प्रदत्त केवल सीमित सुरक्षण है। कार्यपालिका ही यह निश्चय करती है कि किसी व्यक्ति को बंदी बनाया जाए और किस अवधि तक बंदी बनाकर रखा जाए। केवल सलाहकारी बोर्ड को कार्यपालिका के अतिक्रमण और उसकी मनमानी कार्यवाही के विरूद्ध निर्देश दिया जा सकता है। इस प्रकार अनुच्छेद 22 निरोधक बंदीकरण के बारे में न्यूनतम कार्यविधिक संरक्षा प्रदान करता है।

अन्य सांविधिक (कानूनी) उपबन्ध

इन उपबंधों के प्रकार के अनुसार और अध्ययन के प्रयोजन के लिए इनको निम्नलिखित भागों में विभक्त किया गया है :

शारीरिक संरक्षा का अधिकार

राज्य के अनिवार्य कर्तव्यों में एक व्यक्ति की शारीरिक रूप में संरक्षा का है। अतः कारागृह अधिनियम की धारा 4 में कैदियों के आवास के लिए एक उपबन्ध है।

(1) आवास और स्वच्छता संबंधी स्थितियाँ:-

राज्य सरकार ऐसी सरकार के अधीन आनेवाले राज्य क्षेत्रों में कैदियों को कारागृहों में ऐसे आवास की व्यवस्था करेगी जो इस प्रकार से निर्मित और नियंत्रित हों कि कैदियों को अलग-अलग रखने के बारे में इस अधिनियम की अपेक्षाओं के अनुरूप हों।[29]

इस प्रकार कैदियों को ऐसे खुले स्थान में, जहां धूप आती हो, वर्षा का जल प्रविष्ट होता

हो, ठंडक रहती हो अथवा मौसम की अन्य तरंगें हों, नहीं रखा जा सकता। इसके अतिरिक्त कैदी किसी कक्ष के समान आवास में एक छत के नीचे आवास के हकदार हैं। [30]

कारागृह अधिनियम की धारा 7 राज्य सरकार पर ऐसे समय अस्थायी आवास की व्यवस्था करने का दायित्व डालती है जब कैदियों की भरमार हो तथा महामारी का प्रकोप हो। [31]

धारा 13 के अधीन चिकित्सा अधिकारी सफाई स्थितियाँ बनाए रखने के लिए उत्तरदायी है।[32]

(2) कैदियों की मानसिक और शारीरिक स्थिति:

धारा 14 में व्यवस्था है कि जब कोई कैदी ऐसा लगे कि वह स्वस्थ (फिट) नहीं है, तब चिकित्सा अधिकारी को उसकी मानसिक स्थिति पर एक रिपोर्ट देनी होती है।[33] उसमें व्यवस्था है:

जब कभी चिकित्सा अधिकारी को यह विश्वास करने का कारण प्रतीत हो कि जिस अनुशासन या व्यवहार, जिसके अधीन कैदी को रखा गया हो, उसके कारण उसकी मानसिक अवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ा हो अथवा घातक रूप में प्रभाव पड़ने की संभावना हो, तब चिकित्सा अधिकारी को लिखित रूप में जैसा वह उचित समझे, ऐसे प्रेक्षणों सहित मामले की रिपोर्ट अधीक्षक को देगा। यह रिपोर्ट और उस पर अधीक्षक के आदेशों सहित तत्काल महानिरीक्षक को सूचनार्थ भेजी जाएगी।

कारागृह हिरासत में कैदी की मृत्यु होने पर चिकित्सा अधिकारी के द्वारा एक संपूर्ण चिकित्सा वृत्त जिसमें कैदी की बीमारी, उसके प्रति व्यवहार, खुराक, उसके द्वारा किए गए परिश्रम का ब्यौरा होगा, तथा अन्य आवश्यक तथ्य अभिलिखित किए जाएंगे। [34]

चिकित्सा अधिकारी को नए सहवासियों का परीक्षण करना होगा और कैदी के स्वास्थ्य और अन्य बातों पर निर्भर करते हुए कैदी के द्वारा किए जाने वाले कार्य के प्रकार के बारे में जेलर को परामर्श देना होगा। [35]

(3) कैदियों को अलग-अलग रखना:

कैदियों के पृथक्करण के बारे में भी उपबन्ध है। उस उपबन्ध में दिया है :

जिस कारागृह में महिला तथा पुरूष कैदी हों, उसमें महिला कैदियों को अलग भवनों में कैद किया जाएगा अथवा उसी भवन के अलग हिस्सों में इस प्रकार रखा जाएगा कि वे पुरूष कैदियों को न

देखने पाए या उनसे वातचीत न कर सकें अथवा उनसे कोई संपर्क न कर सकें। [36]

जिस कारागृह में 21 वर्ष से कम उम्र के पुरूष कैदी रखे जाएँ, उसमें उन्हें अन्य कैदियों से सर्वथा अलग रखने तथा उनमें से ऐसे कैदियों को जिन्होंने यौवनारंभ किया हो, यौवनारंभ न करने वाले कैदियों से पृथक रखने के लिए साधनों की पूर्ति की जाएगी। [37]

अनभिशंसित (दोषी न ठहराए गए) अपराधिक कैदियों को अभिशंसित अपराधिक कैदियों से पृथक रखा जाएगा।[38] सिविल कैदियों को अपराधिक कैदियों से पृथक रखा जाएगा। [39]

(4) साथी कैदियों से सुरक्षा:

सहवासियों की अन्य सभी कैदियों से शारीरिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए यह व्यवस्था है कि जेल में किसी कैदी के प्रवेश से पूर्व उसकी तलाशी की जाएगी और तलाशी के दौरान जो वस्तु कैदी के पास पायी जाए, वह जेलर को सौंपी जाएगी। महिला कैदी के मामले में ऐसी तलाशी मेट्रन (अधीक्षिका) के द्वारा ली जाएगी। [40]

(5) नि: संग कैद:

नि: संग कैद का इस्तेमाल अन्य कैदियों की सुरक्षित अभिरक्षा को अथवा दण्ड के रूप में दी गई सजा को सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। किन्तु कारागृह अधिनियम की धारा 21 में व्यवस्था है:

किसी जेल कोठरी का इस्तेमाल नि: संग कैद के लिए नहीं किया जाएगा यदि कैदी को किसी समय कारागृह के अधिकारी से बात करने के साधन उपलब्ध न हों और यदि कैदी को उसमें चौबीस घंटों से अधिक समय तक कैद किया जाए, तो चिकित्सा अधिकारी के द्वारा उसका परीक्षण दिन में कम से कम एक बार किया जाए।

अधिनियम की एक विवादग्रस्त धारा 24 में कहा गया है कि मृत्यु दण्ड के अधीन प्रत्येक कैदी अन्य सभी कैदियों से अलग कोठरी में रखा जाएगा और उसकी निगरानी दिन तथा रात में प्रभारी गार्ड के द्वारा की जाएगी।

(6) हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ डालना:

नियम 26.23 में व्यवस्था है :- [41]

कैदी को नियम 26.4 (3)[26] में दिए हुए के सिवाय कारागृह में कैद के समय हथकड़ी नहीं

डाली जाएगी।[42] जिस कैदी को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 124-क[43] अथवा 153-क[44] के अधीन दोषारोपित किया जाए, उसे हथकड़ी नही डाली जाएगी यदि वह पहले से सजा न भुगत रहा हो अथवा मार्गरक्षी कमान अधिकारी को यह विश्वास करने का निश्चित कारण न हो कि ऐसा कैदी नियम 26.22 ग अथवा च में वर्णित श्रेणी के अंतर्गत आता है।[45]

जहाँ तक बेहतर श्रेणी के न्याय-जाँच के अधीन आने वाले कैदियों का सम्बन्ध है, उन्हें हथकड़ियाँ न पहनायी जाएं, सिवाए नियम 26.22 के खंड (1)(क), (ख), (ग) में उल्लिखित परिस्थितयों के।[46] फिर भी यदि उन्हें इन परिस्थितियों से अन्यथा हथकड़ियाँ पहनायी जाएँ तो सम्बन्धित अधिकारी के द्वारा लिखित रूप में कारण दर्ज किए जाए। [47]

(7) कैदियों से व्यवहार:

(क) न्यायजाँच के अधीन आनेवाले कैदी:

ऐसे कैदियों को सिद्ध दोष ठहराए गए कैदियों की तुलना में उच्च स्तर दिया जाएगा और इस वजह से उन्हें अपने स्रोतों से अपने स्वयं के कपड़े, भोजन तथा अन्य अतिरिक्त वस्तुएँ प्राप्त करने की अनुमति दी जाएगी[48] और उन्हें उचित समय पर ऐसे स्रोतों से सम्पर्क करने की अनुमति दिए जाने का हक होगा और यदि कैदी ऐसा सम्पर्क करने में असमर्थ हों , तो जेलर उन्हें सम्पर्क करने की व्यवस्था कराएगा।

(ख) सिविल कैदी:

सिविल कैदी भी रखे जाते है और न्यायालय जाँच 34 के अधीन आनेवाले कैदियों के जैसा उनके साथ व्यवहार किया जाएगा।[49] उन्हें जेल में अपनी इच्छानुसार कार्य करने और उसके लिए अपने स्वयं के औजारों का प्रयोग करने की छूट होगी और वे जो कार्य करेंगे उसके लिए उन्हें पूर्णत: भुगतान किया जाएगा। [50]

(ग) अपराधिक कैदी:

जिस अपराधिक कैदी को सश्रम कारावास की सजा दी गई हो, उसे एक दिन में नौ घंटों से अधिक कार्य नहीं करने दिया जाएगा।[51] चिकित्सा अधिकारी ऐसे कैदियों का परीक्षण हर पन्द्रह दिन में करेगा और अपने वृत्त टिकट 37 में कार्य के प्रकार और कैदियों के वजन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव दर्ज करेगा। यदि चिकित्सा अधिकारी के द्वारा यह पाया जाए कि श्रम के द्वारा और उसे दिए गए काम के कारण

उसके स्वास्थ्य पर विपरीत रूप में प्रभाव पड़ा, तो ऐसे कैदी को उस श्रम के लिए काम पर नहीं लगाया जाएगा और उसे ऐसा काम दिया जाएगा जो उसके लिए उपयुक्त हो और जो काम चिकित्सा अधिकारी के द्वारा अभिशंसित किया जाएगा।[52]

(9) कारागृह अपराध और दण्ड:

कारागृह अधिनियम में जानबूझकर अवज्ञा, बल प्रयोग तथा अपशब्दों का प्रयोग जैसे अनेक कारागृह अपराध परिभाषित किए गए हैं।[53] अधीक्षक को अपराधों का निर्धारण करने और दण्डित करने के लिए अपने विवेक का व्यापक रूप में प्रयोग करने के अधिकार दिए गए हैं। दिए जाने वाले दंड में कठिन श्रम, नि: संग कैद, भोजन में कटौती आदि शामिल है।[54] किन्तु ऐसे दो या अधिक दण्डों को संयुक्त करने का निषेध है, जिनका कैदी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़े, जैसे भोजन में कटौती को कठिन श्रम के साथ संयुक्त नहीं किया जा सकता। [55]

कारागृह अपराधों के लिए दण्ड दिए जाने के जेल अधीक्षक की विवेकाधीन शक्ति महानिरीक्षक के द्वारा नियंत्रित की गई है क्योंकि अधीक्षक को ऐसे दंड देने के लिए महानिरीक्षक की पूर्व अनुमति लेनी होती है। [56]

कारागृह अधिनियम की धारा 49 के अधीन इस अधिनियम की धारा 46 में जो व्यवस्था है, छोड़कर अन्य दंडों को देने का पूर्व निषेध है।[57] इसमें यह भी दिया है कि अधीक्षक केवल चिकित्सा अधिकारी की ऐसी रिपोर्ट के अनुसार कार्य करेगा कि सम्बन्धित कैदी दंड को सहन करने के योग्य है अथवा नहीं।[58] किंतु कैदी के द्वारा किए गए क्रूरतम अपराधों के सम्बन्ध में मामला तथ्यों के अभिलेख सहित न्यायालय को निर्दिष्ट किया जाएगा।[59]

(10) भोजन (खुराक):

'बेहतर श्रेणी' के अंतर्गत आनेवाले कैदियों को क और ख श्रेणी, सिद्धदोष कैदियों के लिए यथा प्रदत्त मात्रा में खुराक दी जाएगी 'साधारण' कैदियों के रूप में वर्गीकृत न्यायजॉच के अधीन कैदियों के जहाँ तक भोजन का सम्बन्ध है, 'ग' श्रेणी में रखे गए कैदियों जैसा व्यवहार किया जाएगा, किन्तु न्यायजाँच अधीन कैदी भोजन की अनुपूर्ति प्राधिकारियों के माध्यम से निजी क्रय के द्वारा कर सकेगें।[60]

कैदियों को उनके सम्बन्धियों या मित्रों के द्वारा दिए जाने वाले समस्त भोजन की जाँच

प्राधिकारियों के द्वारा की जाएगी।[61]

सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार-

नियम 26.21 क घोषित करता है[62]:-

न्याय जाँच के अधीन कैदियों को उनके पिछले जीवन-स्तर के आधार पर श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। वर्गीकरण प्राधिकारी जिला दंडाधिकारी के अधीन न्याय जाँच करने वाला न्यायालय होता है। किंतु कैदी को सक्षम न्यायालय के सामने लाए जाने से पूर्व के काल में सम्बन्धित पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी के द्वारा उसे 'बेहतर श्रेणी' या 'साधारण श्रेणी' के रूप में वर्गीकृत करने हेतु स्वविवेक का प्रयोग किए जाने का अधिकार है। केवल वही कैदी अस्थायी रूप से 'बेहतर श्रेणी' के रूप में वर्गीकृत किए जाएगें जो सामाजिक स्थिति, शिक्षा अथवा जीवन की आदत के द्वारा उच्च जीवन यापन के आदी रहे हों। इस तथ्य पर विचार नहीं किया जाएगा कि कैदी पर किसी विशेष श्रेणी के अपराध किए जाने का मुकदमा चलाया जाए। थोड़ी मात्रा में साक्षरता का होना, अपने आप में 'बेहतर श्रेणी' वर्गीकरण के लिए पर्याप्त नहीं है और किसी ऐसे कैदी जिस पर मुकदमा चल रहा हो और सम्बन्धित पुलिस अधिकारी को जिसका जीवन स्तर ऐसा न प्रतीत हो कि वह सामान्य शहरी या देहाती लोगों के जीवन से निश्चित रूप में उच्च है, उसे इस प्रकार वर्गीकृत नहीं किया जाएगा।

उपर्युक्त नियम कैदियों की सामाजिक स्थिति और अन्य आदतो के आधार पर उनकी श्रेणी को इंगित करता है।

(1) परिवार के सदस्यों तथा मित्रों से भेंट :-

जेल नियम-पुस्तक में व्यवस्था है कि जिन कैदियों पर मुकदमा चल रहा हो, उन्हें परिवार के सदस्यों तथा मित्रों से एक सप्ताह में दो बार संपर्क करने दिया जाए।[63]

अन्य नियम में उपबंधित है कि सिद्ध दोष कैदियों को परिवार के सदस्यों और मित्रों से एक सप्ताह में एक बार मुलाकात करने दी जाए।[64] जहां तक निरोधक बंदीकरण के अधीन 'नजरबंदियो' का सम्बन्ध है, नियमों में कुछ भी नहीं कहा गया है और मित्रों तथा परिवार के सदस्यों से मिलने की सुविधा के बारे में बहुत सारी भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गई हैं।[65]

(2) पैरोल (वचनबद्धता):-

कैदी के सामाजिक पुनर्वास के लिए पैरोल को एक उपयोगी साधन माना जाता है क्योंकि पैरोल परिवार के सदस्यों से मिलने का अवसर प्रदान करता है और इस प्रकार कैदी अपने परिवार के प्रति अपने दायित्व का अहसास कर सकता है। [66]

धारा 58 (क) उपबंधित करती है कि अपराधी के आचरण के प्रकार और उसके द्वारा किए गए अपराध के गुरूत्व पर निर्भर करते हुए उपयुक्त सरकार को पैरोल के लिए उपबन्ध बनाने चाहिए। [67]

(3) कैदियों की अस्थायी नियुक्ति (रिहाई):

कारागृह अधिनियम में यह उपबन्धित है कि कैदियों को अस्थायी रूप में रिहाई यात्राओं में लगने वाले आवश्यक समय और कारागृह से प्रस्थान तथा कारागृह में वापसी आगमन के दिनों को छोड़कर एक वर्ष में 10 दिन से अधिक न होने वाली अवधि के लिए कुछ शर्तों के अधीन की जाए। [68]

किंतु किसी कैदी को उपर्युक्त उपबन्ध के अधीन रिहा न किया जाए, यदि -

(क) उसने रिहाई के समय छूट सहित अपनी रिहाई का आधा भाग जेल में न बिताया हो अथवा छूट सहित अपनी कैद की सजा के दो वर्षों से कम न होने वाली अवधि दोनों में जो अवधि कम हो, न बिताई हो।

(ख) कारागृह में उसका आचरण अच्छा रहा हो।

(ग) उसकी पिछली रिहाई की अवधि की समाप्ति की तारीख से बारह महीने बीत चुके हों, यदि इस उपबन्ध के अधीन पिछली रिहाई के सम्बन्ध में ऐसा हो। [69]

राजनीतिक अधिकार:-

चूंकि कैदी कारागृह में बंद होने के बावजूद 'व्यक्ति' और 'नागरिक' है, अत: उन्हें मूल रूप में वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो जेल से बाहर के लोगों को हैं। वे चुनावों में भाग ले सकते हैं। उन्हें न केवल अपना मत देने का अधिकार है बल्कि यदि वे अन्यथा पात्र हों, उन्हें चुनाव लड़ने का अधिकार भी प्राप्त है। उनकी कैद की सजा का सहवासियों के राजनीतिक अधिकारों से कोई संबंध नहीं है।

किंतु कुछ ऐसी अनर्हताएँ हैं, जो जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में दर्ज हैं चुनाव लड़ने या मतदाता होने के कैदियों के अधिकार इन अनर्हताओं के अधीन है। एक बड़ा कारण, जिस पर अधिनियम में

विधिवत विचार किया गया है वह नैतिक चरित्रहीनता का है जो व्यक्ति मतदाता बनने या उम्मीदवार बनने हेतु अनर्ह ठहराये गये हों, वे वही हैं जिन्हें नैतिक भ्रष्टता या चरित्रहीनता से संबंधित अपराधों के लिए दंडित किया गया होगा।

संसद या राज्यविधानमंडल की सदस्यता के लिए अर्नहता: इस अधिनियम की धारा 8 उपबंधित करती है [70] :-

भारतीय दंड संहिता की धारा 153 क [71] या धारा 171ड. [72] या धारा 171 च [73] या धारा 505 की उप-धारा (2) या उप-धारा (3) के अधीन अथवा इस अधिनियम की धारा 125 या 135 या धारा 136 की उप-धारा (2) के खंड (क) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का सिद्धदोष व्यक्ति ऐसा दोषी ठहराए जाने की तारीख से छह वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह ठहराया जाएगा।

यदि किसी व्यक्ति को किसी अपराध के लिए किसी सक्षम न्यायालय के द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया हो और सिद्धदोष ठहराए जाने की तारीख से दो वर्षो से कम न होने वाली अवधि के लिए कैद की सजा सुनाई गई हो, तो उसे भी जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत अनर्ह अयोग्य ठहराया जाएगा और ऐसी अनर्हताएँ पाँच वर्षों की अवधि तक जारी रहेगी।

जो व्यक्ति जमाखोरी या मुनाफाखोरी के विरोध के लिए अथवा खाद्य पदार्थ या औषधियों की मिलावट के लिए विधि के अधीन अपराधों के लिए सिद्धदोष ठहराया जाए और छह मास से कम न होने वाली अवधि के लिए उसे कैद की सजा दी जाए, उसे भी उसके सिद्धदोष ठहराए जाने की तारीख से पाँच वर्षों की अवधि के लिए अनर्ह ठहराया जाएगा।

(2) मतदान के लिए अनर्हताएँ :

धारा 11-क में कहा गया है-

यदि कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता की धारा 171ड. या धारा 171च के अधीन या इस अधिनियम की धारा 125 या 135 या धारा 136 की उप-धारा (2) के खंड (क) के अधीन आता है, तो उसे मतदाता बनने से अनर्ह ठहराया गया है।

भारत में कैदियों के अधिकारों की न्यायिक वृद्धि-

भारतीय संविधान विनिर्दिष्ट रूप में कैदियों को किसी प्रकार के मूल अधिकारों का विवरण नहीं देता। किंतु न्यायिक कार्यालयों (अदालतों) ने न्यायिक सक्रियता के माध्यम से भारतीय संविधान के भाग 3 में सुरक्षित विभिन्न स्वतंत्रताओं के विषय-क्षेत्र में बृद्धि की है। परिणामत: कैदियों के कुछ न्यूनतम अधिकार और संरक्षण विकसित हुए।

शारीरिक संरक्षा का अधिकार

अमेरिका में न्यायालयों के द्वारा अपेक्षित प्रक्रिया खंड का प्रयोग इतने व्यापक रूप में किया गया है कि 'वाणिज्य खंड' के तहत न केवल वाणिज्यिक अधिनियमनों बल्कि अपराधिक प्रशासन से सम्बन्धित विधियों को भी उसमें शामिल किया गया। जहाँ तक कैदियों के अधिकारों का संबंध है, इन अधिकारों के लिए मुकदमेबाजी का केन्द्र यह रहा है कि क्या अमेरिका संविधान किसी व्यक्ति का पीछा कारागृह में करेगा ?[74]

अनेक प्रकरणों (मुकदमों) में हिचकिचाने के पश्चात अमेरिका सर्वोच्च न्यायालय ने अंत में सकारात्मक रूप में उत्तर दिया और लोगों को राज्य के द्वारा बनाई गई विधियों को कारागृह परिसरों से भी अच्छी और उचित न होने के आधार पर चुनौती देने का रास्ता प्रशस्त किया।[75] इसके अतिरिक्त यह भी निर्धारित किया गया कि कैदी कारागृह की चहार दीवारी के भीतर भी एक व्यक्ति है। जब न्यायाधीश डगलस ने एक अग्रणी प्रकरण में निम्नलिखित कहा, उन्होंने एक मानवोचित टिप्पणी दी[76]:

कैदी फिर भी व्यक्ति है, समस्त संवैधानिक अधिकारों के हकदार हैं, यदि उनकी स्वतंत्रता में कटौती कार्यविधियों के द्वारा संवैधानिक रूप में न की जाती, यह अपेक्षित प्रक्रिया की समस्त आवश्कताओं की पूर्ति करता है।[77]

न्यायाधीश हवाइट ने चार्ल्स बल्फ प्रकरण में वही निष्कर्ष निकाला जब उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा: किन्तु, हालांकि उसके (कैदी के) अधिकार वातावरण के द्वारा कम किए जा रहे हों, कैदी को जन अपराध करने के लिए कारावास का दण्ड दिया जाता है, तब उसकी संवैधानिक संरक्षाएँ (बचाव) संपूर्णत: नहीं छिनती।[78] इस देश के संविधान और कारागृह के बीच लोहे का पर्दा नहीं लगा है।[79]

अत: अमेरिका में न्यायालय ने संवैधानिक संरक्षाओं के रूप में जेल के सहवासियों को

राहत प्रदान करना शुरू किया, एक बड़ी संकल्पना जो उजागर हुई, वह कैदी की शारीरिक सुरक्षा की है। यह अधिकार दुष्टतापूर्ण और असाधारण दण्डों के सभी मामलों पर लागू किया गया है। लूसियाना फ्रांसिस मामलें में चार न्यायाधीशों ने बहुमत से निर्धारित किया कि चौदहवाँ संशोधन अपने देय प्रक्रिया खंड के द्वारा दुष्टतापूर्वक तरीके में राज्य के द्वारा फाँसी को निषिद्ध करेगा।[80] इसी प्रकार बुल्फ प्रकरण में न्यायालय ने निर्धारित किया कि:[81]

पुलिस के द्वारा मनमाने रूप से अनुचित ढंग से घुसने के विरूद्ध व्यक्ति की एकान्तता और गोपनीयता की सुरक्षा, जो चौथे संविधान के प्रकरण पर है, स्वतंत्र समाज के लिए मूल बात है, अतः यह 'आदेशित स्वतंत्रता की संकल्पना' में अन्तर्निहित है और उसी रूप में देय प्रक्रिया खंड के माध्यम से राज्यों के विरूद्ध प्रयोज्य है। [82]

हुट्टों मामले में न्यायालय ने निर्धारित किया कि पृथक कमरों में कैद चौदहवें संशोधन के देय प्रक्रिया खंड का उल्लंघन है।[83]

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा व्यक्तियों की संरक्षा की कुछ घोषणाओं के साथ-साथ अमेरिका निर्णयों का प्रभाव भारतीय सर्वोच्च न्यायालय पर देखा जा सकता है। मेनका गाँधी प्रकरण में 1978 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया कि अनुच्छेद 21 में विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि में एक अच्छी और उचित कार्यविधि सम्मिलित है [84], वह केवल कार्यविधि की झलक नहीं या राज्य के द्वारा अधिनियमित ऐसे विधायन का टुकड़ा मात्र नहीं है जिसने जनता के जीवन या व्यक्तिगत सम्पत्ति के प्रबंचन के लिए किसी प्रकार की कार्यविधि निर्धारित की हो। [85] अर्थात सर्वोच्च न्यायालय ने 28 वर्षों की दीर्घ अवधि के पश्चात इस दलील को स्वीकार किया कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा समाविष्ट 'विधि' ऐसी अच्छी और उचित विधि को इंगित करती है, जिसे गोपालन मामले में उठाया गया। [86]

अतः जब एक बार यह स्थापित हो गया कि व्यक्तियों को स्वतंत्रता से वंचित करने वाली राज्य के द्वारा बनाई गई विधि के विरूद्ध जाँच करायी जा सकती है और उसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार होना चाहिए, तो लोगों ने इस प्रकार विधि का विरोध करना (विधि को चुनौती देना) शुरू किया कि वह प्राकृतिक न्याय के स्थापित उद्देश्यों (धारणाओं) के विरूद्ध है अथवा अनुचित, अतार्किक है।

किंतु भारतीय दण्ड प्रणाली का एक बड़ा दोष यह है कि उसने कुल मामलों में पुलिस तथा

कारागृह प्राधिकारियों को बंधनहीन शक्तियाँ प्रदान की हैं। प्राधिकारियों के द्वारा सामान्यतः मुलजिमों पर अत्याचार किए जाने के लिए इस शक्ति का दुरूपयोंग किया गया है। आंखे फोड़ने की भागलपुर घटना, शारीरिक प्रहार की प्रेमचंद [87] की घटना और कारागृहों में जिन व्यक्तियों पर मुकदमें चल रहे हों, उनकी मृत्यु की घटना [80] जैसी अनेक सदमा पहुँचाने वाली घटनाओं की सूचना दी गई है।

एमेस्टी-इंटरनेशनल की नवीनतम रिर्पोट में यह कहा गया है कि कम से कम सौ देशों में 'विधि के शासन' का पालन कभी-कभार होता है और कैदियों के प्रति यातना तथा दुर्व्यवहार इतने व्यापक रूप में किया जाता है कि उसकी भर्त्सना जितने कड़े शब्दों में की जाए, कम है। [89] इन देशों में भारत को भी रखा गया है। यहाँ पुलिस की पाशविकता सामान्य है। एमेस्टी-इंटरनेशनल की रिर्पोट पर टिप्पणी करते हुए एक दैनिक समाचार-पत्र [90] लिखता है:

जब भारत ऐसे राष्ट्रों में गिना जाता है जहाँ मानव-अधिकार वास्तविक रूप में नहीं पाए जाते, तब विश्व में सबसे बड़ा प्रजातंत्र होने की सभी बातें खोखली- सी प्रतीत होती हैं। समाज को संपूर्ण रूप में नृशंस (कठोर या पाशविक) बनाने का एक निश्चित तरीका विधि लागू करनेवाले तंत्र को विधिक प्रक्रिया के लघुपथन की अनुमति देना है और पुलिस जवान को सरसरी तौर पर जल्लाद बनने दे। इस देश में व्यापक रूप में अपनायी जानेवाली पुलिस प्रणाली, जैसा कि एमेस्टी-इंटरनेशनल में सही रूप में इंगित की गई है डाकू या नक्सलबादी का लेबल लगाकर (नाम लेकर) पुलिस हिरासत (अभिरक्षा) और मुठभेड़ में निरपराध लोगों को जान से मार डालने की है। कारागृहों और पुलिस हवालात में भी जनता को संरक्षा की वह गारंटी नहीं है, जिसके वे हकदार हैं। [91] ऐमेस्टी-इंटरनेशनल की रिर्पोटों में यह भी कहा गया कि हाल के वर्षों के दौरान प्राप्त की गई अनेक रिर्पोटें प्रदर्शित करती हैं कि राजनीतिक कैदियों को भी आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडू और पश्चिमी बंगाल में यातनाएं दी जा रही हैं। किंतु यह कहा गया कि शायद ही ऐसा कोई राज्य होगा जहाँ ऐसी घटनाएँ घटित न होती हों।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में सहवासियों के न्यूनतम शारीरिक समरक्षण की कोशिश की है और कर रहा है। मेनका गांधी [92] मामले के बाद तथा पठित अनुच्छेद 21 ने उस कार्यविधि तथा विधि की जाँच की है जिनमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरूद्ध कार्यविधि को निर्धारित किया गया।

(क) विद्युत निगरानी:-

डी. बी. एम. पटनायक[93] के मामले में नकसलियों ने यह विवाद उठाया कि जीवित तार तंत्र, जो कारागृह के बाहर हो अनुच्छेद 21 में यथा प्रविष्ट स्वतंत्रता के उनके अधिकार का उल्लंघन करता है क्योंकि वह उनमें भय की भावना उत्पन्न करता है, अतः वह कार्य अनुच्छेद 21 में समाविष्ट उनके अधिकार पर कठोर और आसाधारण रोक लगाने के बराबर हैं। अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील यह थी कि जेल की बाहरी दीवारों का विद्युतीकरण असंवैधानिक है क्योंकि ''भागने का प्रयत्न करने वाला कैदी उस तंत्र के उपयोग के द्वारा वास्तविक रूप में मृत्युदण्ड प्राप्त करेगा दूसरी ओर उस अपराध के लिए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 224 के अधीन अधिकतम दण्ड दो वर्ष की कैद की सजा है।''[94] आगे यह दलील दी गई कि यदि न्यायालय ऐसी अमानवीय युक्तियों को अनुमति दे और उनका अनुमोदन करे तो एक दिन कारागृह शमशान में बदल जाएगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के शारीरिक समरक्षण की संकल्पना पर विचार करते हुए कहा कि कैदियों को कारागृह से भाग खड़े होने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वे कोई अपराधीकृत कार्य करने की कोशिश करते हैं तो स्वाभाविक रूप में वे इसके परिणाम भोगेंगे। जहाँ तक विद्युत तार तंत्र का संबंध है, वे इस आधार पर उचित हैं कि नक्सलवादियों ने जेल से भागने की कोशिश की थी, अतः सुरक्षा तंत्र सख्त बनाया गया। किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में एक महत्वपूर्ण प्रेक्षण दिया। उसने कहा:

''सिद्ध दोष केवल दोषी ठहराए जाने के कारण ऐसे समस्त मूल अधिकारों से वंचित नहीं किए जाते जो उन्हें अन्यथा मिलते हैं। दोषी ठहराए जाने के पश्चात विधि के प्राधिकार के अधीन कारागृह में रहने की बाध्यता अपने स्वयं के बल से भारत के सारे राज्य क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक भ्रमण के अधिकार अथवा किसी वृत्ति को करने का अधिकार जैसी मूल स्वतंत्रताओं से वंचित किया जाता है। इस प्रकार वृत्ति का व्यक्ति अपनी सजा भुगतते समय सलाह मशवरा करने के अपने अधिकार से वंचित रहता है किन्तु संविधान अनुच्छेद 19 और 21 के तहत अन्य स्वतंत्रताओं की गारंटी देता है।''[95]

(ख) शारीरिक प्रहार:

सुनील वत्रा[23] मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों के शारीरिक संरक्षण अधिकारों पर विस्तार से चर्चा की।[96] यह एक रेखांकित मामला है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश को संबोधित कारागृह के सहवासियों की शिकायतों की प्रविष्ट एक साधारण हस्तलिखित पत्र जिसे अंत में

त्वरित उपचार प्रदान करने के लिए बंदी प्रत्यतीकरण याचिका की रिट में परिवर्तित किया गया।

इस मामले में यातना की एक बड़ी घटना यह थी कि किसी कारागृह अधिकारी के द्वारा उसके गुदा में एक लकड़ी को बलपूर्वक प्रविष्ट किए जाने के कारण उसकी गुदा फट गयी। कैदी के चिकित्सकीय परीक्षण ने वार्डर के द्वारा उसको यातना दिए जाने के तथ्य की पुष्टी की।

सर्वोच्च न्यायालय अत्याधिक सदमें में आया जब आगे यह मालूम हुआ कि न केवल निम्न श्रेणी के अधिकारी वरन उच्च अधिकारी भी इस तरह के बेतुके कार्यों में सलंग्न थे। न्यायाधीश कृष्ण अय्यर जिन्होंने सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय सुनाया, ने संयुक्त राष्ट्र घोषणा के उपबन्ध को उद्घृत किया : [97]

कैदियों से व्यवहार में इस बात पर जोर दिया जाए कि वे समाज से वहिष्कृत नहीं है बल्कि उनके निरंतर अंग हैं, अत: कैदियों के सामाजिक पुनर्वास के कार्यों में संस्था के कर्मचारियों को यथासंभव सहायता देने के लिए अभिकरणों को सूचीबद्ध किया जाए।

प्रत्येक संस्था के संबंध में कैदी को अपने परिवार से और मूल्यवार सामाजिक अभिकरणों से वांछनीय संबंध बनाए रखने और उनमें सुधार करने के प्रभारित कर्तव्य वाले सामाजिक कार्यकर्ता होने चाहिए। कैदियों के सिविल हितों, सामाजिक सुरक्षा और शारीरिक सुरक्षा से संबंधित अधिकार जो विधि और कैद की सजा से अधिकतम सीमा तक मेल खाए के संरक्षण के लिए कदम उठाए जाएँ। [98]

कैदियों के सामाजीकरण और पुर्नवास के महत्व पर विचार करने के बाद न्यायाधीश अय्यर ने निर्धारित किया कि प्रहारों के अलावा किसी प्रकार की शारीरिक यातना देना और कैदी को किसी एकान्त स्थान में अकेले कैद करना आवश्यक सुख-सुविधा से वंचित करना है। किसी दूरस्थ कारागृह, जहाँ मित्रों और अन्य संबंधियों से मुलाकातें असंभव हो जाएँ, में स्थान्तरण अपमानजनक श्रम का आबंटन किसी भीषण या कठोर जत्थे को सौंपना दण्डात्मक होने के समान है और अनुच्छेद 21 में यथा समाविष्ट व्यक्तिगत स्वतंत्रता अतिबंधन है। मूल अधिकारों के द्वारा गारंटित किसी प्रकार की स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए विधि के द्वारा निर्धारित कार्यविधि ''अच्छी और उचित'' होनी चाहिए। कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा किए गए इस प्रकार के कार्य न केवल अनुच्छेद 19 के तहत औचित्य की कसौटी का उल्लंघन है बल्कि अनुच्छेद 21 के पर एक आघात भी है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की संकल्पना पर बोलते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि उसे कार्यविधिक अथवा अन्य औपचारिक जटिलताओं के आधार पर मना नहीं किया

जा सकता। उसने निर्धारित किया कि :

न्यायालय हमेशा अन्याय को संशोधित करने के लिए तैयार है, किंतु यह कोई भी प्रत्येक पीड़ित वास्तविक बाधाओं और कारागृह यथार्थताओं को जानते हुए न्यायालय में रिट करे, यह कोई व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं है। यथार्थ प्रविधिकताएँ और विधिक बारीकियाँ बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए कार्यवाहियों के रूप में एक अनौपचारिक संदेश भी विचारार्थ लेने वाले न्यायालय को कोई रोक नहीं है वशर्ते कि मूल तथ्य पाए जाए : फिर भी न्यायालयों का भय और उनकी दूरी विधिकता और काल्पनिकता संस्था को अपहुँचनीय बनाते हैं। पीड़ित को सहायता पहुँचाने वाली विधि को लेकर कोई पद्धति तैयार करना अधिक यथार्थवादी है।[99]

जेल में चल रहे निरर्थक कार्य (व्यवसाय) को रोकने और नियंत्रित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा कारागृह प्राधिकारियों को बहुत से निर्देश जारी किए गए हैं और यह निर्धारित किया गया कि कैदी की बात सुने बिना अपर्याप्त भोजन, कठोर परिश्रम, शरीर पर प्रहार, सिद्धदोषियों के साथ अन्याय विचाराधीन कैदियों को रखना, किसी स्थान पर आवश्यकता से अधिक कैदी रखना कैदियों की भरमार करना और जेल अधिकारियों के द्वारा भारी दण्ड दिया जाना अनुच्छेद 19 में समाविष्ट मूल संवैधानिक अधिकार के अतिबंधन के समान है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निर्धारित किया कि कैदियों की समस्याओं पर नई विधि की आवश्यकता है और वर्तमान विधि कैदियों को संरक्षण प्रदान करने में असफल रही है।[100]

(ग) हथकड़ियाँ पहनाना और बेड़ियाँ डालना:-

प्रेमशंकर शुक्ला के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कैदियों को हथकड़ियाँ पहनाने की बात मान ली।[101] पंजाब पुलिस नियम-पुस्तक में कहा गया कि प्रत्येक ऐसा कैदी जिस पर मुकदमा चल रहा हो और जो तीन वर्ष की जेल की सजा से दण्डनीय गैरजमानतीय अपराध का अभियुक्त हो उसे नेमी तौर पर हथकड़ियाँ पहनायी जाएँ[102], सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह निर्णय अनुच्छेद 14, 19 और 21 का उल्लंघन करना है। न्यायालय ने निर्धारित किया कि केवल उन्ही कैदियों को हथकड़ियाँ पहनायी जाएँ, जब उनके भाग जाने का स्पष्ट और आसन्न खतरा हो। यह भी संगत लिखित अभिलेख की सहायता सहित स्थापित अभियुक्त के स्पष्ट तथा असंदिग्ध आचरण और स्वभाव पर आधारित होना चाहिए।[103]

एक बड़ा प्रश्न जो मामले से संबंधित था, यह था कि जिसकी व्यक्तिपरक संतुष्टि का

प्रयोग इस प्रश्न का निर्णय लेने के लिए किया जाएगा कि कैदी को हथकड़ियाँ पहनायी जाएँ अथवा नहीं ? सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि मामला निः संदेह संबंधित कैदी [104] की अभिरक्षा के लिए उत्तरदायी प्राधिकारियों के निर्णय के अंतर्गत आता है किन्तु प्राधिकारी के पर्यवेक्षण किए जाने की गुंजाइश है और निः संदेह रूप में न्यायालय यह निर्धारित करते हुए पर्यवेक्षणीय अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकते हैं कि प्राधिकारी अभिरक्षक को हथकड़ियाँ पहनाने और कारणों के सम्बंध में भी न्यायालय को सूचित करे।[105]

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निर्धारित किया कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 5 के साथ-साथ अनुच्छेद 21 और 19 का संयुक्त प्रभाव यह रहा है कि कैदी को अमानवीय व्यवहार सहित यातना नहीं दी जा सकती अथवा उसे अपमानित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 5 [106] उपबन्धित करता है:

किसी को भी कठोर, अमानवीय या अपमानशील व्यवहार से दण्डित नहीं किया जाएगा और न ही यातनाएँ दी जाएगी।

अनुच्देद 10 [107] में दर्ज है:

जिन व्यक्तियों को उनकी स्वतंत्रता से वंचित किया जाए, उनके साथ मानवजन की अर्न्तनिहित गरिमा के लिए आदर सहित मानवतापूर्वक व्यवहार किया जाए।

सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि हथकड़ियाँ पहनाना प्रथम दृष्यटा अमानवीय है और इसलिए अनुचित या कठोरता पूर्ण है और प्रथम आवेग में मनमाना कृत्य है। उचित कार्यविधि को न अपनाना और हथकड़ियाँ तथा बेड़ियाँ डालने का वस्तुनिष्ठ अनुवीक्षण करना जीव वैज्ञानिक पाशविक कार्यनीतियों का अनुसरण करना है और यह अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल है। [108]

न्यायालय ने विना किसी विवाद के राज्य का यह दावा स्वीकार किया कि हथकड़ी पहनाने का प्रयोग केवल यह सुरक्षित करने के लिए किया जाता है कि कैदी अभिरक्षा से भागने न पाए।[109] उसने निर्धारित किया कि किसी कैदी को भागने से रोकने के लिए राज्य मनुष्य के हाथ और पैर नहीं बांध सकता, इस्पात के छल्लों से उसके अंगों को नहीं जकड़ सकता, मार्गों में उन्हें घसीट नहीं सकता और न्यायालयों में उन्हें घंटों खड़ा नहीं कर सकता। ये कृत्य यातना देने जैसे हैं, कैदी की गरिमा को गिरानेवाले हैं, समाज को सभद्र बनाते हैं और हमारी सांविधिक संस्कृति की आत्मा को भ्रष्ट करते हैं। [110]

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि केवल ऐसी परिस्थिति जिसमें लोहे की जंजीर से बंदी बनाना विधिमान्य ठहराया जा सकता है यह है कि सम्बन्धित कैदी के निकल भागने से रोकने का कोई अन्य संभावित और उचित तरीका नहीं था। यह भी उचित ठहराया जाना चाहिए और केवल पुलिस अधिकारी की संतुष्टि ही उसके लिए काफी नहीं है। इतना ही नहीं जब भी वंचित करने के ऐसे घोर प्रयासों (उपायों) का प्रयोग किया जाए तब अभिरक्षण प्राधिकारी को उस प्रकार के व्यवहार के कारणों को दर्ज करना होगा और उसके ऐसे आदेशों की समीक्षा न्यायालय के द्वारा की जाएगी, अन्यथा ऐसी कार्यविधियाँ अनुचित और अतार्किक होने के कारण अनुच्छेद 21 के तहत गलत करार दी जाएगी।[111]

अनुच्छेद 21 उल्लंघनीय होने के कारण पुलिस नियम-पुस्तक के कुछ भागों को असंवैधानिक रूप में घोषित करते हुए कि प्रत्येक ऐसा कैदी, जिस पर मुकदमा चल रहा हो, गैर जमानती अपराध के लिए दोषी है, तीन से अधिक वर्षों की कैद की सजा के लिए दंडनीय है[112], उसे नामी तौर पर हथकड़ी पहनायी जाए, न्यायालयों ने कहा है कि ऐसे न्यायजाँच अधीन कैदी के अभियोग का प्रकार हथकड़ी पहनाने के लिए कसौटी नही है। स्वतंत्रता का घोर हनन और व्यक्ति को जंजीरों से जकड़ने का आधार है कि भाग निकलने का पुलिस नियंत्रण के तोड़े जाने का 'स्पष्ट तथा आसन्न खतरा' या इसके लिए स्पष्ट प्रमाणन कि धारणा मात्र होना चाहिए। न्यायाधीश अय्यर ने कहा :

न्याय जाँच अधीन अभिरक्षा की सुस्पष्ट विधि इस प्रकार अनैतिक अभिरक्षा प्रथा के विरूद्ध है। हम विधि से हथकड़ियाँ हटाते हैं तो भाग 3 के सात्विक मूल्यों के अनुरूप पुलिस आचरण को मानवीय बनाते हैं। विधि को दृढ (निश्चित या अटल) होना चाहिए, अनुचित नहीं, कड़ा (सख्त) होना चाहिए पर पीड़क नहीं, सशक्त होना चाहिए, कठोर नहीं।[113]

चार्ल्स शोभराज मामले मे एक विदेशी न्याय जाँच अधीन कैदी ने सफाई में कहा कि नजरबंदी की तारीख से उसे बेड़ियों में जकड़कर रखने का जेल अधीक्षक का आदेश, इस सिफारिश के बाबजूद कि बेड़ियाँ हटायी जाएँ, अनुच्छेद 21 का हनन है।[114] आगे सफाई में यह भी कहा गया कि कारागृह अधिनियम की धारा 56 जिसके तहत कारागृह प्राधिकारियों को किसी व्यक्ति को बेड़ियों से जकड़ने की अनियंत्रित और अपरिवर्तित शक्तियाँ प्रदान की गई हैं, अनुच्छेद 14 और 21 के विरूद्ध है।[115]

सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि कारागृह अधिनियम की धारा 56 असंवैधानिक नहीं

है क्योंकि वह अपनी प्रयोज्यता के बारे में कुछ पूर्व शर्तें निर्धारित करती है। वर्तमान मामले में ये शर्तें विद्यमान नहीं, अतः वर्तमान मामले में इस धारा को लागू नहीं किया जा सकता। बेड़ियाँ डालने का उपबन्ध सामान्य मामले में प्रयुक्त नहीं किया जाता किंतु उसका प्रयोग कैदी की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए ऐसे समय किया जाता है जब कोई दूसरा विकल्प न हो।[116]

न्यायालय ने यह भी कहा कि लगातार कई दिन तक बेड़ियाँ डालना कैदी को मानव से निरीह जानवर में बदल देता है और यह कठोर तथा आसाधारण दण्ड के समान है जिसे न केवल मानवाधिकार आयोग के द्वारा निषिद्ध किया गया है[117] बल्कि अनुच्छेद 21 जिसमें किसी अनुचित तथा अतार्किक कार्यविधि की निंदा की गई है, के द्वारा भी वर्जित किया गया है।[118]

(घ) एकांत कारावास :-

सर्वोच्च न्यायालय ने एकान्त में अकेला रखकर कैद करने की संकल्पनाओं पर और सुनील बत्रा मामले में संविधान के अनुच्छेद 21 के द्वारा गारंटित व्यक्तियों के अधिकार बनाम उसके उद्देश्य पर चर्चा की।[119] अर्जीकर्ता जो एक अभियुक्त था और जिसे तिहाड़ जेल में कैद किया गया था ने शिकायत की कि इस तथ्य के बाबजूद उसकी मृत्यु की सजा हाई कोर्ट के द्वारा पुष्टि के अधीन और सर्वोच्च न्यायालय के संभावित अपील के अधीन है, उसे एकांत कारावास में रखा गया। अर्जीवर्ती द्वारा दावापूर्वक कहा गया कि कारागृह अधिनियम की धारा 30 एकान्त में किसी कैदी को कैद करके रखने का अधिकार कारागृह प्राधिकारियों को नहीं देती क्योंकि वह अपने आप में पर्याप्त दण्ड के बराबर है और इस तरह का पर्याप्त दण्ड देना विधि न्यायालयों का काम है न कि कारागृह के अधिकारियों का।

मामले पर बहुत गहराई से विचार करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय लिया कि धारा 30 को कभी दण्ड के रूप में एकान्त में कैद करने के लिए नहीं बनाया गया। एकान्त में कैद करने जैसे वंचित करने के भारी उपायों से बाहर के लोगों से तथा कारागृह के सहवासियों से संबंध पूर्णतः कट जाने का होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 26 में यथा समाविष्ट व्यापक और विस्तृत प्रकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में बात करने, घुलने, मिलने और साथ ही कैदियों की संगति करने की स्वतंत्रता शामिल है। अतः किसी व्यक्ति को एकान्त में कैद करना भारतीय संविधान के भाग 3 में यथा उपबंधित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के अतिलंघन के बराबर है।[120]

सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निर्णय लिया कि कारागृह अधिनियम की धारा 30 को असंवैधानिक नहीं ठहराया जा सकता किंतु वह ऐसी कार्यविधि निर्धारित करती है जो अच्छी और उचित है भले ही इस उपबंध के अंतर्गत एकान्त कैद न आती हो और इस उपाय को साधारण मामलों में पर्याप्त दण्ड के रूप समझा जाना चाहिए।[121]

किशोर सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायाधीन कृष्ण अय्यर और न्यायाधीश पाठक के माध्यम से यह निर्णय देते हुए कि यदि उसका प्रयोग बिना किसी न्यायिक नियंत्रण के बिना किया जाए, तो संविधान की भावना का उल्लंघन होता है, कि एकांत में कैद के उपयोग के बारे में अपने पूर्ववर्ती विनिर्णय की पुष्टि की। संबंधित कैदी के लिए सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना 'घूमना' अशिष्टता और असभ्य तरीके से व्यवहार करना, इतिवृत्त टिकट को फाड़ना और इसी तरह की घटनाओं के काल्पनिक आधार पर कैदियों को घोर दण्ड देने को "उचित, ठीक और तर्कसंगत" रूप में नहीं माना जा सकता।[122] ऐसा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की भावना के अंतर्गत है सर्वोच्च न्यायालय ने राज्यों को ऐसे निर्देश जारी किये कि मानवता के उच्च मूल्यों के संबंध में पुलिस और कारागृह कर्मचारियों को शिक्षित किया जाना चाहिए और वे संविधान तथा लोगों का आदर करें।[124]

जगमोहन सिंह[125] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के सामने अर्जिकर्ता की ओर से यह दलील दी गई कि मृत्यु दंड भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 का इस आधार पर उल्लंघन है कि:

(ड.) मृत्यु दण्ड और उसके कार्यावयन की विधि-

(क) मृत्यु दण्ड :-

(1) अनुच्छेद 19 में समाविष्ट समस्त मूल अधिकारों का मृत्यु दण्ड से हनन होता है। अत: जो विधि मृत्यु दण्ड निर्धारित करती है वह अनुचित है तथा आम जनता के हित में नहीं।

(2) मृत्यु दण्ड का निर्णय देना या न देने के न्यायाधीशों का विवेकाधिकार किन्ही दिशा निर्देशों या मानकों पर आधारित नहीं है अत: वह असीमित, अपरिवर्तित और अनियंत्रित है, अत: संविधान के अनुच्छेद 14 के द्वारा उस पर प्रहार किया गया।

(3) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 इस तथ्य के कारण निष्प्रभावित हुई है कि वह न्यायाधीशों

को दो वैकल्पिक दण्डों के बीच अर्थात मृत्यु दण्ड और आजीवन कारावास में से चुनने का व्यापक विवेकाधिकार देती है जो कि एक आवश्यक विधायी कार्य है और न्यायापालिका को उससे कुछ लेना देना नहीं है।

(4) विधि में मृत्यु दण्ड और आजीवन कारावास के बीच चुनाव करने के लिए महत्वपूर्ण कारणों और परिस्थितियों की न्याय जाँच के लिए कोई विनिर्दिष्ट कार्यविधि उपबंधित नहीं है। चूँकि दोष के लिए केवल अपराधिक कार्यविधि संहिता के अधीन न्याय जाँच होती है अत: कार्यविधि का पता करने के अभाव में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के मापदण्डों का उल्लंघन होता है।[126]

उच्चतम न्यायालय ने अर्जीकर्ता के दावे अस्वीकार कर दिए और मृत्यु दण्ड की विधि मान्यता को बरकरार रखा तथा निर्धारित किया कि विधानांग के लिए प्रत्येक और हर मामले के लिए विधि और नियम निर्धारित करना असम्भव है। न्यायाधीशों को कोई अनियंत्रित व अपरिवर्तित विवेकाधिकार नहीं है किंतु उनका विवेकाधिकार प्रत्येक मामले के प्रमाणित कारणों और परिस्थितियों के द्वारा निर्धारित होते हैं। अत: दो विकल्पों के बीच चुनाव करने का अधिकार न केवल मनमाना विवेकाधिकार है बल्कि न्यायिक विवेकाधिकार है। इसमें भी अधिक मृत्यु दण्ड को कठोर या असाधारण घोषित करना विधायिका का काम है न कि न्यायालयों का। न्यायालयों को देश की निर्धारित और व्यवस्थित विधि से कुछ लेना देना नहीं है।[127]

राजेन्द्र प्रसाद[128] मामले में सर्वोच्च्व न्यायालय के सामने यह फिर से दलील दी गई कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 के तहत हत्या के प्रत्येक और हर मामले में मृत्यु दण्ड को उचित नहीं ठहराया जा सकता। इस दण्ड को शुरू करने में विधायिका का अभिप्राय उसके सीमित या प्रतिबंधित प्रयोग के लिए था। अर्थात केवल ऐसे कठोर और वृत्तिक अपराधियों, जो जानबूझकर लोगों को जान से मारते हैं, के लिए था। अर्जीकर्ता की ओर से यह भी दावा किया गया कि हत्या के लिए दो वैकल्पिक दण्डों के बीच चुनाव करने हेतु न्यायाधीशों को दिया गया मनमाना विवेकाधिकार अनियंत्रित, असीमित और अपरिवर्तित है। अत: भारतीय संविधान, जो मनमाने पन की निंदा करता है के अनुच्छेद 14 के अधीन औचित्य की कसौटी का उल्लंघन करता हैं।

इससे भी अधिक मृत्यु दण्ड अपने आप में कठोर है और आधुनिक आपराधिक विधि, जिसमें दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना है, न कि उसे मौत के घाट उतारना, की मूल आवश्यकता की

पूर्ति नहीं करता। अतः मृत्यु दण्ड केवल ऐसे कठोर और खतरनाक अपराधियों तक सीमित रखा जाए जो सभ्य समाज के लिए कलंक है।[129]

सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से अर्जीकर्ता के दावों को स्वीकार किया और निर्धारित किया कि मृत्यु दण्ड कठोर है और वह केवल श्वेत जैसे अपराधियों के लिए रखा जाए जो समाज की शांति के लिए खतरनाक हों अन्यथा हत्या के प्रत्येक मामले में मृत्यु दण्ड सुनाना अनुचित है और ऐसा करने से आधुनिक आपराधिक न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती।[130]

किन्तु न्यायमूर्ति सेन ने अपने अल्पमत निर्णय में निर्धारित किया कि न्यायिक अदालतों को मृत्यु दण्ड के उन्मूलन या निरमूलन के प्रश्न पर निर्णय करने का अधिकार नहीं है। यह एक आवश्यक न्यायिक रूप में स्थापित मान दण्ड है कि वे किसी ऐसे दण्ड के प्रकार या दायरे पर पुर्नविचार न करें, जिसे विधायकों के द्वारा विधिवत मान्यता दी गई हो, उन्होंने आगे व्यक्त किया कि दण्ड के प्रश्न पर विशेष अनुमति याचिका की सुनवाई करते समय अदालतों को यह अधिकार नहीं है कि वे भारतीय दंड संहिता की धारा 30 की पुर्नरचना या उसके उन्मूलन पर विचार करे।[131]

यह विचार व्यक्त किया जाता है कि इस तथ्य की वजह से अल्पमत निर्णय अधिक उचित प्रतीत होता है कि आवश्यक विधायी कार्य न्यायिक अदालतों को प्रत्यायोजित नहीं किए जाने है।

बचन सिंह[132] मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत मृत्यु दण्ड देने या न देने का विवेकाधिकार अनुचित तथा अतार्किक है, अतः वह भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 तथा 21 के अनुरूप नहीं है। इससे भी अधिक आधुनिक युग में जब इस दण्ड के सुधारात्मक पहलू के लिए जोरदार मांग है, ऐसे में मृत्यु दण्ड की कोई उपयोगिता नहीं रही।

सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से मृत्यु दण्ड की विधिमान्यता को स्वीकार किया। उसने निर्धारित किया कि विधानमंडल के द्वारा मृत्यु दण्ड पर ''लोगों की गरिमा को घटाने के लिए प्रयुक्त अमानवोचित (अपमानजनक) होने के रूप में कभी विचार नहीं किया, अतः यह तर्कसंगत (युक्तियुक्त) नहीं है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन हत्या के मामलों हेतु मृत्यु दण्ड संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन है।''[133]

किन्तु न्यायमूर्ति भगवती ने अपने अल्पमत निर्णय में कहाः

भारतीय दंड संहिता की धारा 302 जहाँ तक आजीवन कारावास के विकल्प के रूप में मृत्यु दण्ड दिए जाने को उपबंधित करती है, शक्ति वाह्य (अधिकारातीत) और शून्य है क्योंकि वह संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करती है क्योंकि वह ऐसा कोई विधायी दिशा-निर्देश नहीं देती है कि कब मृत्यु दण्ड थोपने के द्वारा जीवन की ज्योति बुझा देने की अनुमति दी जाए।[134]

किंतु यह व्यक्त किया गया कि मृत्यु दण्ड की प्रयोज्यता के बारे में सही विचार आधुनिक उन्मूलकतायी आन्दोलन के जनक बेक्करिया ने अभिव्यक्त किया है: मृत्यु दण्ड नजीरों में उचित होगा, प्रथम: यदि कोई फाँसी लोकप्रियता से स्थापित सरकार के विरूद्ध किसी विद्रोह को रोके, और द्वितीयत: यदि कोई फाँसी अपराध करने से दूसरों को भय दिखा कर रोके। कुछ विद्वानों के द्वारा विवेक के क्षेत्र में मृत्यु दण्ड के लिए दोहरे मापदण्ड अपनाएँ जाने को उन उन्मूलकतावादी मामले में एक बड़ी असक्तता के रूप में देखा गया।[135]

यह कहा गया कि सर्वोच्च न्यायालय ने प्रारम्भिक हिचकिचाहटों और भ्रमों[136] के बाद अंत में मृत्यु दण्ड के दायरे को कम करने का प्रयत्न किया और अंतत: दीना[137] मामले में इस चरण पर पहुँचा कि मृत्यु दण्ड ''विरले से विरलतम मामले'' में दिया जाना चाहिए।

(ख) रस्सी के द्वारा फांसी पर लटकाना:

मानवधिकारों के इस युग में जब भारत का सर्वोच्च न्यायालय भी प्रत्येक ऐसी कार्यविधि की निंदा करके लोगों को गरिमा की सुरक्षा करने के सर्वोत्तम प्रयत्नों की कोशिश कर रहा है। जो अनुच्छेद 21 में ''न्यायोचितता'' की कसौटी को घटाने में सहायक हो। वर्तमान युग में रस्सी से लटकाना बहुत विवादग्रस्त पहलू रहा है क्योंकि वर्तमान युग में आधुनिक सुधारवादियों के द्वारा उसे अपराधी को फांसी की पुरानी से पुरानी परम्परा की प्रविधि के रूप में देखा गया।

दीना[138] के मामले में भारत में यथा प्रचलित मृत्यु दण्ड की फांसी की विधि की संवैधानिक विधि मान्यता को (रस्सी के द्वारा लटकाने को) कठोर और जंगली करार देकर चुनौती दी गई, अत: अनुच्छेद 21 के द्वारा प्रहार किया गया। याचिका करता ने सफाई दी कि तरीका पुराना है और उसका मानवाधिकारों के युग में कोई औचित्य नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यह पुलिस का मामला है कि मृत्यु दण्ड कैसे दिया जाए और इसलिए इस पर निर्णय लेना विधानमण्डल का काम है। इसके अतिरिक्त विधानमण्डल

अपनी प्रजा के नैतिक मूल्यों की गरिमा के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है और न्यायालयों को प्रजा की भावनाओं के नैतिक पक्ष से कुछ भी लेना देना नहीं है। एक बार जब विधानमण्डल मृत्यु दण्ड के दिए जाने के लिए विशेष विधि उपबंधित करता है तब उसका कार्य समाप्त हुआ माना जाय और उसके पश्चात न्यायालयों को यह निर्णय करना है कि विधानपालिका द्वारा निर्धारित मृत्यु दण्ड के कार्यान्वयन की पद्धति संविधान के अनुरूप है अथवा वह संविधान के अधिदेशों का पालन नहीं कर रही है।[139] अंतिम रूप में न्यायालय ने अभिमत दिया कि मृत्यु दण्ड कार्यान्वित करने के लिए का आपराधिक कार्यविधि की संहिता की धारा 354 (5) में निर्धारित विधि को कठोर असाधारण या जंगली के रूप में नहीं लिया जा सकता और इसलिए धारा 354 (5) भारतीय संविधान[67] के अनुच्छेद 21 में यथा निर्धारित 'न्यायोचितता' की कसौटी का उल्लंघन नहीं करती।[140]

न्यायोचित कार्यविधि का अधिकार

गोपालन[141] मामले में याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए दावों में से एक यह था कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा समाविष्ट वाक्यांश ''विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि'' में 'न्यायोचित और उचित' कार्यविधि शामिल है न कि लोगों के जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता छीनने के लिए राज्य के द्वारा निर्धारित कार्यविधियों की सदृश्यता मात्र। कदाचित सर्वोच्च न्यायालय पर उस समय विद्यमान अद्भुत परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा और उसने ऐसे अपीलकर्ता की दलील को ठुकरा दिया जो निवारक नजरबंदी विधियों के तहत 'नजरबंद' था तथा यह निर्णय दिया कि 'विधि' से तात्पर्य राज्य के द्वारा बनाई गई विधि से है और न्यायालय उस विधि के औचित्य या अनौचित्य की जाँच करने के लिए सक्षम नहीं है।[142] ''हाथ में कुछ नहीं'' वाले इस सिद्धांत ने न्यायाधीशों और वकीलों के मस्तिष्कों पर सामान्य प्रभाव उत्पन्न किया कि उच्चतम न्यायालय ने लोगों को राज्य की दया पर छोड़ दिया है और संविधान समय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में विफल रहा है ऐसे समय इस मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय उस समय प्रचलित गड़बड़ियों और अन्य परिस्थितियों के विरूद्ध न्यायाधीशों की जोरदार प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है जब यह मामला न्यायालय के सामने लाया गया। उच्चतम न्यायालय ने अपना निर्णय इस दलील पर आधारित किया कि चूंकि हमारे संविधान के निर्माताओं ने स्वैच्छिक रूप से ने अमेरिकी संविधान के ''अपेक्षित प्रक्रिया खण्ड'' को छोड़ दिया अत: ''अपेक्षित प्रक्रिया खण्ड'' में यथा समाविष्ट प्राकृतिक न्याय की अस्पष्ट

संकलपना ''विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि'' में अंर्तनिहित नहीं ठहराया जा सकता।[143]

गोपालन[144] मामले में यथा विवादित ''न्यायोचित और उचित'' कार्यविधि की संकल्पना 28 वर्षों के बाद मेनका गांधी[145] मामले में फिर से उठाई गई। इस मामले में याचिकाकर्ता ने उसी तरह के विचार पर दावा प्रस्तुत किया जैसा कि गोपालन[146] मामले में प्रस्तुत किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने शब्दों ''व्यक्तिगत स्वतंत्रता'' और 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि' का व्यापक तात्पर्य निकाला। इस मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा मुख्य बात पर विचार किया गया वह यह था कि :

क्या अनुच्छेद 21 किसी व्यक्ति को किसी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किए जाने से पूर्व विधि के द्वारा निर्धारित अत्याधिक मनमनी और कल्पनापूर्ण कुछ अनुरूपता रखने वाली कार्यविधि मात्र की अपेक्षा करता है अथवा कार्यविधि को इस अर्थ में कुछ पूर्वेक्षाओं की पूर्ति करना चाहिए कि वह न्यायोचित और उचित हो ?[147]

उच्चतम न्यायाल ने निर्धारित किया कि वाक्यांश 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि' न्यायोचित, उचित और तर्कसंगत कार्यविधि को स्पष्ट करता है, न केवल अनुरूपता, मनमाने या अवास्तविक कार्यविधि को और इससे भी आगे किसी प्रकार की कोई कार्यविधि का निर्धारण मात्र अनुच्छेद 21 के अधिदेश के पालनार्थ पर्याप्त नहीं है।[148] न्यायालय के द्वारा आगे यह निर्धारित किया गया कि 'प्राकृतिक न्याय' के ऐसे सिद्धांत 'न्यायोचित और उचित' कार्यविधि में शामिल किए गए हैं, जो कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के व्यापक क्षेत्र और धारिता में अर्न्तनिहित हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की संकल्पना को उच्चतम न्यायालय के द्वारा व्यापक निर्वचन दिया गया और विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि ने अंततः राज्य के मनमाने और अवास्तविक कार्यों के विरूद्ध न्यायालयों में बहस के विरूद्ध एक अच्छा आधार प्रदान किया।

(ग) जमानत के लिए अधिकारः-

बाबू सिंह के मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह दलील प्रस्तुत की गई कि बिना किसी कारण जमानत मंजूर करने से इंकार करना ऐसे समय मना करना जब अपीलकर्ता परिवार के सभी पांच पुरूष सदस्य जेल में हों अनुचित होने के बराबर और प्राकृतिक न्याय के नियमों के विरूद्ध हैं।[149] उच्चतम न्यायालय ने सम्पूर्ण मामले पर विचार करने के पश्चात कुछ शर्तों के तहत अपीलकर्ता की जमानत

मंजूर कर ली और निर्णय दिया कि इन परिस्थितियों में जमानत अस्वीकार करना लोगों की स्वतंत्रता का अनुचित वंचन है क्योंकि जब राज्य द्वारा अपनाई गई कार्यविधि उचित न हो तब उनकी अपील अस्वीकृत न की जाए और ऐसे कोई कारण नहीं कि अपील र्ता की जमानत स्वीकृत न की जाए।

निः संदेह जमानत मंजूर करने की अनुमति स्वीकृत करना या स्थगित करना विशुद्धतः विवेकाधीन है। यह विवेकाधिकार, किंतु इस अर्थ में अमर्यादित नहीं है कि वह न्यायिक विवेकाधिकार है और उसे किन्हीं औचित्यपूर्ण सिद्धांतों पर प्रयुक्त किया जाए। वैंजामिन कारडोजों के द्वारा न्यायिक विवेकाधिकार की संकल्पना बहुत सुंदर ढंग से कही गई है:

न्यायाधीश उस समय भी जब वह स्वतंत्र हो पूर्णतः स्वतंत्र नहीं है वह अपनी इच्छा से नवीन प्रक्रिया प्रवर्तित नहीं कर सकता, वह ऐसी गलती करना वाला एक नाईट नहीं है जो खूबसूरती के या अच्छाई के अपने स्वयं के आदर्श का पीछा करने में अपनी इच्छा से घूमे-फिरे। उसे अपनी प्रेरणा औचित्यकृत सिद्धान्तों से प्राप्त करनी है। आकर्षणकारी संवेदना अस्पष्ट और अनियमितीकृत परोपकारिता के सामने नहीं झुकना है। उसे ऐसे सामाजिक जीवन जो समस्त सद्विवेक पर्याप्त व्यापक हो में परम्परा अनुरूपता के द्वारा पद्यतीकृत प्रणाली के द्वारा अनुशासित तथा व्यवस्था की आदिकालीन आवश्यकता की अधीनता के द्वारा सूचित विवेकाधिकार का करना है। यही वह विवेकाधिकार का क्षेत्र है जो बना रहता है।[150]

वर्तमान युग में यह कहा गया कि मानवाधिकारों की संकल्पना ने सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है जौर जमानत को भी। लोगों की जमानत उस समय स्वीकृत की जाए जब अभियुक्त के बारे में ऐसी कोई अनुचित आशंका न हो कि वह भाग जाएगा और न्यायालय के सामने उपस्थित होने को टालेगा। दण्ड संविधियों का अंतिम उद्देश्य समाज को अभियुक्त के प्रहारों से बचाना तथा उसे विधि का पालन करने वाले समाज में रहने योग्य अच्छा नागरिक बनाना है। किसी कैदी के समाजीकरण के लिए जमानत बहुत उपयोगी साधन है। इसके अतिरिक्त याचिकाकर्ता किसी ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा जो जेल अभिरक्षा में रहता हो, अपनी सफाई तैयार कर सकेगा। यह न केवल सामाजिक और आम न्याय को प्रोत्साहित करेगा बल्कि न्याय जांच अधीन कैदियों को ऐसी अभिरक्षा में रखने में भारी सरकारी व्यय की भी बचत करेगा, जहाँ अभिलेख को देखते हुए कोई खतरा या कोई गड़बड़ी या भाग जाने की गुंजाईश न हो।

बाबू सिंह [151] मामले में निम्नलिखित दिशानिर्देश दिए गए जिन पर जमानत स्वीकृत करने या मना

करने के समय विचार किया जाए:

(1) आरोपित अपराध का प्रकार और गुरूत्व, प्राप्त किए गए प्रमाण का प्रकार और प्रमात्रा। दोष सिद्ध होने पर जो दण्ड पार्टी को दिया जाना हो। जब अभिकथित अपराध अधिक घोर और उच्च प्रमात्रा का हो और परिणामत: दण्ड बहुत अधिक और कठोर होगा, तब न्यायालय के द्वारा यह अनुमान लगाया जा सकता है कि न्यायालय में अभियुक्त का उपस्थित होना संभव नहीं होगा बशर्ते कि जमानत अस्वीकृत की गई हो।

(2) क्या जमानत स्वीकृत करने से न्याय के उद्देश्यों का हनन होगा ?

(3) व्यक्ति का विगत आचरण और यह तथ्य की जमानत याचिकाकर्ता आदतन अपराधी है या नहीं और अन्य सामाजिक परिस्थितियाँ।

(4) यदि किसी न्यायालय ने अभियुक्त को निर्दोष पाया हो और अन्य पार्टी ने अपील की हो तो जमानत से मना न किया जाए।

(5) यदि अपराध सिद्ध हो जाए तो अभियुक्त की सुरक्षा और वह समयाविधि जो उसने जेल में बिताई हो बनाम वह अधिकतम कैद की सजा जिसके लिए उसे सजा सुनाई जा सकती हो पर अपेक्षित विचार किया जाना चाहिए।[152]

(2) न्यायालय में प्रतिनिधित्व किए जाने का अधिकार:-

हॉसकॉट[153] के मामले में याचिकाकर्ता को नकली विश्वविद्यालय ड्रिग्रियाँ जारी करने के प्रयत्न करने के अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया। अपीलकर्ता एक रीडर था जिसके पास विज्ञान में पी. एच. डी. की डिग्री थी। सत्र न्यायालयों ने इस मामले में अपीलकर्ता की न्यायजाँच के समय बहुत सदय दृष्टिकोण अपनाया तथा न्यायालय के उठने तक की साधारण कैद की सजा दी। राज्य ने उसके विरूद्ध उच्च न्यायालय में अपील की। उच्च न्यायालय ने अपील तथा इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि अभियुक्त समाज का जिम्मेदार व्यक्ति था दण्ड को तीन वर्ष की कैद की सजा में बड़ा दिया। याचिकाकर्ता ने उच्चतम न्यायालय में चार वर्षों के बाद दायर की और उस समय वह कैद की सजा की अपनी पूरी अवधि काट चुका था। याचिकाकर्ता के द्वारा बिलम्ब के लिए जो कारण बताया गया वह यह था कि उसे निर्णय की प्रतिलिपि केवल चार वर्षों के बाद दी गई। हांलांकि उच्चतम न्यायालय ने विशेष याचिका को इस आधार पर खारिज

कर दिया कि दो अवर न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों में हस्तक्षेप न करने की तयशुदा परम्परा नहीं थी। किंतु न्यायालय ने निर्धारित किया कि जो पद्धति किसी व्यक्ति को अपने अपील करने के अधिकार का प्रयोग करने से रोकती हो या उससे प्रतिबन्धित करती हो वह अनुचित होने के समान है तथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरूद्ध है और इसलिए उस पर अनुच्छेद 21 के द्वारा प्रहार किया गया है। न्यायालय ने न्यायोचित कार्यविधि के दो अवयवों को उद्घृत किया :

(1) यह कि दोषी को उचित अवधि के भीतर फैसले की एक प्रति दी जाए जिससे की वह अपील के अपने अधिकार का प्रयोग कर सके।

(2) संबंधित व्यक्ति को मुफ्त विधिक सहायता प्रदान की जाए, यदि वह किसी प्रकार अपनी निर्योग्यता अथवा निर्धनता के कारण विधिक सहायता की व्यवस्था न कर सके।[154]

एस भौमिक[155] के मामले में उच्च्तम न्यायालय ने फिर से विधिक सहायता और न्यायोचित कार्यविधि की संकल्पना पर चर्चा की।उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि "मुफ्त विधिक सेवा" का अधिकार न्यायोचित और उचित कार्यविधि का अनिवार्य अंग है। जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में अंर्तनिहित है। "मुफ्त विधिक सेवा" देने के राज्य के दायित्व को इतना कह देने मात्र से समाप्त नहीं किया जा सकता कि वह वित्तीय या प्रशासनिक कारणों से उसे प्रदान नहीं कर सकता। न्यायालय का कर्तव्य यह देखना और अभियुक्त को यह सूचित करने का भी है कि उसे विधिक सेवा का अधिकार है। भले ही वह उसकी माँग न करे।[156]

(3) त्वरित न्याय-जाँच (विचारण) का अधिकार:-

न्यायोचित कार्यविधि की संकल्पना में उचित रूप में त्वरित न्याय-जाँच भी जरूरी है। न्याय के अपराधिक प्रशासन की प्रणाली कुछ अधिक तकनीकी है अत: मामलों के निर्णय में विलम्ब होता है। इस विलम्ब के लिए जो कारण दिए जाते हैं वह प्रथम असक्षम न्यायिक अमला, द्वितीय अदक्ष पुलिस तंत्र और तृतीय न्यायालयों में अपनाई जाने वाली तकनीकी कार्यविधि।

हुसैनआरा खातून [157] के मामले में बहुत से न्याय-जाँच अधीन अभियुक्तों ने उच्चतम न्यायालय में बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के लिए याचिका दायर की। यह ऐसे लोग थे जो बिहार के जेलों में बहुत से वर्षों से अपनी न्याय-जाँच की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ न्याय-जाँच अधीन अभियुक्तों ने इतना समय जेल

में बिताया जिसके लिए उन्हें कैद की सजा दी जा सकती थी वशर्ते कि उनके विरूद्ध अपराध प्रमाणित हो जाता। उच्चतम नयायालय ने निर्धारित किया कि उचित रूप में त्वरित न्याय-जाँच का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट अधिकार का आवश्यक अंग है। त्वरित न्याय-जाँच को आपराधिक न्याय के सार के रूप में माना गया। अमेरिका में त्वरित न्याय-जाँच की संकल्पना घटते संशोधन स्पष्टतः अनुबंधित है, जो उपबंधित करती है कि :

सभी आपराधिक अभियोजनों में अभियुक्त को त्वरित और सरकार न्याय-जाँच के अधिकार का उपभोग करेगा।

न्यायमूर्ति भगवती [158] ने भी निम्नलिखित शब्दों में संकल्पना का वर्णन किया:

यद्यपि अमेरिकी संविधान से भिन्न त्वरित न्याय-जाँच विनिर्दिष्ट रूप में मूल अधिकार के रूप में वर्णित नहीं, तथापि मेनका गाँधी [159] मामलें में यथा व्याख्यित अनुच्छेद 21 का व्यापक क्षेत्र तथा मात्रा में अंतनिर्हित है।[160]

न्यायालय ने निर्णय दिया कि जो कार्यविधि उचित रूप में त्वरित न्याय-जाँच को सुनिश्चित न करे उसे ''न्यायोचित तथा उचित कार्यविधि'' के रूप में नहीं माना जा सकता। [161]

उच्चतम न्यायालय ने आगे यह निर्धारित किया कि जो न्याय-जाँच अधीन कैदी बिना न्याय-जाँच के ऐसी दीर्घविधियों के लिए जेल में रखे जाए जो उनकी सजा दी गई अधिकतम अवधि से अधिक हो, दोष ठहराए जाए पर उनका निरन्तर कैद में रखना अवैध है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में समाविष्ट मूल अधिकार का हनन है। न्यायालय ने इस मामले में गरीब लोगों को मुख्य विधिक सहायता सेवा की संकल्पना को भी अनुमोदित किया।

त्वरित न्याय-जाँच की संकल्पना पुनः एक बार सुनील बत्रा मामले में उजागर हुई जब उच्चतम न्यायालय ने कार्यविधिक औपचारिकताओं की उपेक्षा करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण और दी गई राहत की रिट के लिए एक याचिका के रूप में तिहाड़ जेल के बंदियों की शिकायतों का वर्णन करते हुए एक साधारण हस्तलिखित पत्र पर विचार किया।[162]

उच्चतम न्यायालय ने इस मामले में यह निर्धारित करते हुए एक ऐतिहासिक निर्णय दिया कि केवल कार्यविधिक बाधाओं के कारण न्याय से मना नहीं किया जा सकता। न्यायालयों का यह कर्तव्य

है कि वे यह देखें कि लोगों को दी गई यातनाएँ और दुष्टताओं के संबंध में किसी उचित श्रोत से उन्हे प्राप्त सूचना का संज्ञान ले और यथा शीघ्र उनको राहत पहुँचाए विधि का अंतिम उद्देश्य न्याय प्रदान करना है और कार्यविधि उस न्याय को आसानी से प्राप्त करने के लिए निर्धारित है। अभियुक्तों को राहत से मना नहीं किया जा सकता जब यह प्रतीत हो कि कार्यविधि की प्रविधिकताओं के कारण यातना और हिंसा की घोर घटनाएँ हो रहीं हैं, अन्यथा विधि का वास्तविक प्रायोजन ही समाप्त हो जाएगा।[163]

उच्चतम न्यायालय ने फिर से प्रेमशंकर शुक्ला मामले में उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश को संबोधित तार के आधार पर तिहाड़ जेल में एक कैदी की सुरक्षा करने के लिए अपने तंत्र का प्रयोग किया और अभियुक्त को राहत प्रदान की गई।[164]

इसी प्रकार किशोर सिंह के मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक ऐसे अभियुक्त जिसे अवैध रूप में बेड़ियाँ डाली गई थीं, को त्वरित उपचार प्रदान करने, बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए इस तार को याचिका में परिवर्तित कर दिया गया।[165]

हुसैन आरा खातून[166] मामले में फैसले का अनुसरण करते हुए मद्रास उच्च न्यायालय ने जगन्नाथ नायडू[167] मामले में दूरगामी प्रभाव वाला फैसला दिया। इस मामले में न्यायामूर्ति एस रत्नवेल पंडीयन ने राज्य में समस्त दण्डाधिकारियों को उन सभी आपराधिक मामले में जिनमें पुलिस ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लम्बित रखी हो तथा कैद से छः महिने के भीतर आरोप पत्रक बनाने की चिंता न की हो उनमें जाँच पड़ताल (अन्वेषण) को रद्द करने का निर्देश दिया। न्यायालय ने यह भी निर्देशित किया कि ऐसे मामले में सभी अभियुक्तों को तुरन्त छोड़ दिया जाए और उनके विरूद्ध सभी कार्यवाहियाँ अबिलम्ब रोकी जाएँ। किंतु न्यायालय ने इस आदेश की प्रयोज्जता केवल उन मामलों में परिसीमित की जिनमें छः महीनों से लंबित पड़ी जाँच पड़ताल जारी रखने से संबंधित दण्डाधिकारी से पुलिस की विनिर्दिष्ट अनुमति न मिली हो।[168]

मद्रास उच्च न्यायालय के इस ऐतिहासिक निर्णय ने राज्य के न्याय-जाँच विचारधीन तीन लाख मामलों को प्रभावित किया उसने छोटे अपराधों के लिए आरोपित व्यक्तियों को राहत प्रदान की किन्तु उन्हें पुलिस के द्वारा अत्याधिक संत्रस्त किया गया। मामला हजारों निर्धन व्यक्तियों के प्रति किए गए अपमान और उनके द्वारा सहन किए गए कष्टों का है, जो उन्होंने पुलिस की निर्गम प्रवृत्ति तथा दीर्घकालिक विधिक प्रक्रिया के कारण सहन किए।

न्यायधीश पंडियन ने कहा कि विचाराधीन व्यक्तियों के मामलों की जाँच स्पष्ट करती है कि कुछ मामले पिछले 17 वर्षों से लम्बित थे। उन्होंने आगे कहा कि अधिकांश ऐसे विचाराधीन व्यक्तियों को किन्ही छोटे मामलों में भी चुपचाप कैद की यातना भुगतनी पड़ी जो बहुत निर्धन थे और व्यवहारिक रूप में दीन-हीन थे और जिनके पास जमानत कराने के लिए पर्याप्त साधन नहीं थे। कुछ मामलों में व्यक्तियों को उनके दोषी ठहराए जाने पर जो कैद की सजा मिलती उस अधिकतम अवधि से भी अधिक समय तक बंदी बनाकर रखा गया।

यह कहा जा सकता है कि विचाराधीन व्यक्तियों की समस्या एक गंभीर समस्या है और उस पर अविलंब ध्यान दिए जाने की जरूरत है किन्तु इस समस्या के लिए एक संस्था या दूसरी संस्था पर दोषारोपण करना अत्यन्त कठिन है। पुलिस कार्यविधि और दण्ड प्रशासन तंत्र इसके लिए समान रूप से जिम्मेदार है। वर्तमान पद्धति में निर्धन और दीन-हीन व्यक्ति की दुर्दशा हो रही है और उन्हें पुलिस तथा जेल प्राधिकारियों के द्वारा संत्रस्त किया जा रहा है, जबकि जिन लोगों के पास पर्याप्त साधन है, वे बचाव के रास्तों का पूर्ण उपयोग कर रहे हैं।

(4) पृथक व्यवहार के लिए विचाराधीन व्यक्तियों और 'नजरबंदियो' के अधिकार:-

विचाराधीन व्यक्तियों और 'निवारक नजरबंदियो' के लिए अलग व्यवहार की आवश्यकता है क्योंकि 'निवारक नजरबंदियो' के विरूद्ध कोई अपराध सिद्ध नहीं किया जाना है। निवारक नजरबंदियों को केवल निवारक उपाय के रूप में कारागृह में रखा जाता है, जो दण्ड के रूप में नहीं है किंतु हमारे देश में विशेषकर कारागृहों का तंत्र जिन प्रयोजनों के लिए उसे स्थापित किया गया, उन्हें वह प्राप्त नहीं कर सका। सामान्यत: विचाराधीन कैदियों तथा नजरबंदियों से अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाता है और उनको अपराधियों के साथ रखा जाता है। हाल ही की एक पुस्तक में इस प्रकार दिया गया है :

कारागृह कैद की सजा का एक सर्वाधिक वीभत्स पहलू वह तथ्य है कि न केवल युवा अपराधियों को अधिक उम्र वाले अपराधियों के कमरों में रखा जाता है बल्कि जिसकी न्याय-जाँच होनी बाकी है, उनको भी सिद्ध दोष कैदियों के साथ उन्ही कमरों में रखा जाता है। सिद्ध दोष कैदी प्रहार करके

अपनी मैथुनिक (यौन) तुष्टि करने में थोड़ा सा खोते हैं अर्थात उनकी थोड़ी सी हानि होती है क्योंकि उन्हें तो किसी प्रकार अपना समय गुजारना है जैसी आज स्थितियाँ है, कारागृह में कैद संवासियों के जीवन के लिए काम-वासना निश्चित रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कैद से छुट्टी(पैरोल) देने की जो प्रणाली है, उसमें संशोधन किए जाने की अत्यन्त आवश्यकता है। अच्छा व्यवहार करने वाले तथा अच्छे रिकार्ड वाले व्यक्तियों को सप्ताहांतो पर अपने परिवारों और सम्बन्धियों के साथ घर पर रहने के लिए रिहा किया जाना चाहिए।[169]

अत: विचाराधीन अभियुक्तों और नजरबंदियों को विशेष हैसियत प्रदान किए जाने की जरूरत है। सुनील बत्रा [170] मामले में उच्चतम न्यायालय ने व्यापक परिप्रेक्ष्य में कैदियों की समस्याओं पर चर्चा की। न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने सिद्ध दोषियों के साथ विचाराधीन अभियुक्तों तथा नजरबंदियों को रखने की पद्धति की निंदा की और इस पद्धति के विरूद्ध निम्नलिखित शब्दों में प्रतिक्रिया व्यक्त की :

विचाराधीन व्यक्ति, जो अनुमानत: दोष ठहराए जाने तक निरपराध है और जिन्हें कारागृह भेजा जा रहा है उन्हें सम्पर्क विकार के द्वारा अपराधी बना दिया जाता है - एक अभिरक्षक दुराग्रह है जो अनुच्छेद 21 में औचित्य का और अनुच्छेद 19 में तर्किकता की कसौटी का उल्लंघन करता है। यह कितनी दुष्टतापूर्ण बात होगी कि यदि कोई चिकित्सकीय जाँच के लिए किसी चिकित्सालय में जाना चाहता हो किंतु वहाँ संक्रामक रोगों वाले मरीजों के साथ रखे जाने पर एक दूसरी बीमारी लेकर घर आता हो। हम संकट की घंटी बजाते हैं कि कारागृह सुधार एक संवैधानिक वाध्यता (अनिवार्यता) है और उसकी उपेक्षा किए जाने पर कड़ी न्यायालय कार्यवाहियाँ की जा सकेगीं। [171]

(5) क्षतिपूर्ति (मुआवजे) का अधिकार:-

यदि कोई व्यक्ति अनुचित और अवैध कार्यविधि के द्वारा अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जा रहा है, तो उसकी ऐसी कैद के परिणाम राज्य की गलफत के विरूद्ध उसे मुआवजा प्राप्त करने के लिए सक्षम बनाएँगे। स्वतंत्रता से उसे अवैध और अनुचित रूप में बंचित किए जाने के विरूद्ध क्षतिपूर्ति कि ए जाने के अधिकार पर हाल ही में रूदल शाह[172] के मामले में चर्चा की गई है। इस मामले में 3 जून, 1968 को मुजफ्फरपुर के एक दण्ड न्यायालय के द्वारा याचिकाकर्ता को छोड़ दिया गया,जो 14 वर्षों की लम्बी अवधि तक जेल में रहा जिसे अन्त में 16 अक्टूबर1982 को रिहा किया गया। उसने उच्चतम

न्यायालय में अपनी अवैध कैद के विरूद्ध याचिका दी। सामान्यत: मामला वहीं खत्म हो जाता क्योंकि अवैध कैद के विरूद्ध मान्य न्यायिक उपचार अभिरक्षा से रिहाई है। किंतु इस मामले में याचिकाकर्ता ने न्यायालय से इस अवैध कैद के लिए मुआवजा, डाक्टरी चिकित्सा और पुर्नवास स्वीकृत करने की मांग की।

याचिकाकर्ता ने इस मामले में न केवल न्यायालय की सहानुभूति प्राप्त की बल्कि उच्चतम न्यायालय ने राज्य प्रशासन से ऐसा उचित स्पष्टीकरण देने को कहा कि जिस वजह से राज्य ने ऐसे निरपराध व्यक्ति को 14 वर्ष तक जेल में कैद रखा जिसे सक्षम न्यायालय द्वारा सामान्य न्याय जाँच के पश्चात छोड़ दिया। यह ध्यान में रखना रोचक है कि उच्चतम न्यायालय को राज्य का उत्तर बहुत अधिक समय तक प्राप्त नहीं हुआ। अंत में न्यायालय को जो उत्तर में प्राप्त हुआ, वह यह था कि याचिकाकर्ता की कैद उसकी मानसिक खराबी के कारण बढ़ायी जाती रही। यह राज्य और उसके प्रशासकों की ओर से अधिक बेतुकापन था कि यद्यपि शल्य चिकित्सा की इस घोषणा के पश्चात् कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ है, उसकी रिहाई पाँच वर्षों से अधिक अवधि तक आगे स्थगित कर दी गई क्योंकि राज्य विधि विभाग ने उसकी रिहाई अनुमोदित नहीं की। इन तथ्यों तथा परिस्थितियों ने घोर गफलत करने के लिए उच्चतम न्यायालय के द्वारा राज्य सरकार को उत्तरदायी ठहराया। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि याचिकाकर्ता कभी किसी समय विक्षिप्त पाया जाता, तो उसकी विक्षिप्तता (पागलपन) जेल में उसकी गैरकानूनी कैद [173] के फलस्वरूप बाद में घटित होती।

इस मामले में ऐतिहासिक निर्णय देते हुए, उच्चतम न्यायालय ने एक बार फिर राज्य के घोर प्रमाद और अनौचित्यपूर्ण कार्य के विरूद्ध किसी शोषित नागरिक को आर्थिक क्षतिपूर्ति स्वीकृत करते हुए मानव अधिकार अभियान को योगदान दिया। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने न केवल राज्य सरकार की यह दलील (प्रार्थना) कि (राज्य के इस कार्य के लिए) उसे उत्तरदायी न माना जाए, ठुकरा दी, बल्कि यह भी निर्धारित किया कि जब राज्य विभिन्न प्रकार के कार्यों में संलग्न है और कस्तूरीलाल [174] मामले में जो सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं, वे आधुनिक समय में [175] अच्छी विधि नहीं है। तब राज्य द्वारा दी गई उपर्युक्त सफाई और भी अच्छी नहीं है।

न्यायालयों की ऐसे संत्रस्तों को आर्थिक क्षतिपूर्ति और चिकित्सा सुविधा तथा पुर्नवास जैसे अन्य हरजाने स्वीकृत न करने की सामान्य प्रवृत्ति है, जिन्हें रिटों के द्वारा राज्य की गफलत के कारण अवैध

रूप में बंदी बनाकर रखा गया किंतु इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने पीड़ित को आर्थिक क्षतिपूर्ति स्वीकृत करके उस उक्ति को दूर कर दिया।

इस मामले ने रिटों के द्वारा आर्थिक क्षतिपूर्तियों का दावा करने के लिए उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के द्वार खोल दिए। उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के समर्थन में निम्नलिखित प्रकार से कारण दिए:

यदि उच्चतम न्यायालय की शक्तियाँ अवैध कैद से रिहाई के आदेश पारित करने को सीमित की जाएँ तो अनुच्छेद 21,जो जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी देता है अपनी महत्वपूर्ण विषय-वस्तु से निरावृत्त हो जाएगा। कहने का एक प्रकार जिसमें उस अधिकार का उल्लंघन रोका जा सकता है, और अनुच्छेद 21 के अधिदेश का अपेक्षित पालन कराया जा सकता है, यह है कि आर्थिक क्षतिपूर्ति की अदायगी में उसके उल्लंघनकर्ताओं को अर्थदंडित किया जाए। प्रशासकीय कठिनता (जठरता), जिससे मूल अधिकारों का मजेदार अतिलंघन होता है, न्यायपालिका को अपनाने के लिए खुली किसी अन्य विधि से संशोधित नहीं की जा सकती। क्षतिपूर्ति का अधिकार ऐसे साधनों के गैरकानूनी कार्य के लिए कुछ प्रशामक है, जो जनहित के नाम में किए जाते हैं और अपनी रक्षा के बतौर राज्य की शक्तियों के लिए अपनी सुरक्षा हेतु प्रस्तुत किए जाते हैं। व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति समादर प्रजातंत्र का सच्चा गढ़ हैं। अत: राज्य को याचिकाकर्ता के अधिकारों[176] के प्रति उसके अधिकारियों के द्वारा की गई क्षति की पूर्ति की जानी चाहिए।

उच्चतम न्यायालय में भागलपुर जेल में विचाराधीन कैदियों को अंधा बनाने की घटना लम्बित है। जिसमें जेल अधिकारियों के द्वारा दी गई यातनाओं के लिए आर्थिक क्षतिपूर्ति हेतु प्रार्थना की गई है। रूदल शाह [177] मामला निश्चित रूप से भागलपुर जेल के विचाराधीन कैदियों का मामला तय करने के लिए मार्गदर्शक बनेगा।

कैदियों के राजनीतिक अधिकार

प्लेटो के समान रोम वासियों ने न केवल राज्य और व्यक्ति को अलग किया बल्कि यह भी मान्यता दी कि हरेक के निश्चित अधिकार और कर्तव्य हैं। गेटेल[178] कहते हैं : राज्य सामाजिक अस्तित्व के लिए एक आवश्यक और स्वाभाविक तंत्र था, किंतु राज्य के बजाय व्यक्ति को राजनीतिक तथा विधिक

विचार का केन्द्र बनाया गया और व्यक्तियों के अधिकारों की सुरक्षा से मुख्य संबंध रहा जिसके लिए राज्य अस्तित्व में आया। इस प्रकार राज्य को एक विधिक व्यक्ति के रूप में देखा गया जो अपने प्राधिकार का प्रयोग निश्चित सीमाओं के अन्दर करे, और नागरिक को एक विधिक व्यक्ति के रूप में देखा गया जिसके पास ऐसे अधिकार हों जिनका सुरक्षण अन्य लोगों के विरूद्ध और स्वयं सरकार के द्वारा [179] अविधिक अतिक्रमण के विरूद्ध किया जाए।

भारतीय संविधान में भी इसी प्रकार का दर्शन पाया जाता है जो संविधान के भाग 3 में कुछ मूल अधिकारों की गारंटी में झलकता है। मूल अधिकारों को समान रूप में संजोए रखने के रूप में संज्ञा दी जाती है और उसे उपचार के अधिकार तथा कार्य के कारण के रूप में लिया जाए क्योंकि मूल अधिकारों का अतिलंघन अपने आप में मूलक है। [180]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा उपबंधित जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार सर्वाधिक मूलक है, उसमें कहा गया है:

किसी भी व्यक्ति को विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के सिवाय उसके जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 21 में यथाप्रयुक्त अभिव्यक्तियों 'जीवन' और 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' का व्यापक अर्थ है। उच्चतम न्यायालय ने खड्ग सिंह [181] के प्रकरण में निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 में प्रयुक्त 'प्राण' शब्द का अर्थ केवल पशु का जीवन नहीं वरन् यह उन सभी सीमाओं और सुविधाओं तक विस्तृत है जिसके द्वारा जीवन का उपभोग किया जाता है। यह अनुच्छेद शरीर के अंग-भंग करने का निषेध करता है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में व्यवस्था है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं। इससे तात्पर्य है कि सक्षम विधानमंडल के द्वारा पारित किसी विधि के द्वारा व्यक्तियों को निवारक रूप में अथवा दण्डात्मक रूप में कैद किया जा सकता है। किंतु जिस व्यक्ति को विधि के द्वारा विधिमान्य, विधि के द्वारा दण्डात्मक रूप में या निवारक रूप में उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से बंचित किया गया हो, फिर भी उसे जीवन का अधिकार तथा स्वतंत्रताओं (चलने फिरने की स्वतंत्रता को छोड़कर) का अधिकार प्राप्त है। निःसंदेह पारम्परिक सिद्धांत यह था कि एक बार जब किसी व्यक्ति को उचित अधिकार के अधीन उसकी

व्यक्तिगत स्वतंत्रता से बंचित किया गया हो, तब वह किन्ही अन्य अधिकारों का हकदार नहीं होगा, ऐसे अन्य अधिकारों का जो केवल स्वतंत्र व्यक्तियों के लिए है। सिवाय इस तरह के अधिकार यदि ऐसे कोई अधिकार हों जिनकी अनुमति कैदियों को नियंत्रित करने वाली विधियों के अलावा अनुमति दी गई हो।

किंतु अधिक आधुनिक और सभ्य समाजों में इस संकल्पना में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। जैसा कि मानवाधिकारों की सर्वभौम घोषणा में कहा गया है:

सभी मानव गरिमा में बराबर है।[182] प्रत्येक विधि के सामने सब व्यक्ति के रूप में मान्यता पाने का अधिकारी है।[183]

अब मानवाधिकारों पर इस प्रकार के संकल्पों के अपनाये जाने के बाद कोई भी व्यक्ति भले ही वह कारागृह में बंद हो मानव के रूप में समाप्त नहीं हो जाता और इसलिए वह उन न्यूनतम अधिकारों का हकदार है जो मानव गरिमा से प्रथक नहीं किए जा सकते। दूसरे शब्दों में अंतर्राष्ट्रीय चार्टरों ने इस प्रस्ताव पर बल दिया है कि एक ऐसा मूल स्तर है जिस पर सभी व्यक्तियों को विधि के द्वारा समान होने के रूप में माना जाना चाहिए और वह भी अन्य शर्तें होने के बावजूद इस प्रकार माना जाए और इसलिए किसी भी बजह से मानव गरिमा के स्तर के नीचे उन्हें अवक्रमित न किया जाए।[184]

अनुच्छेद 21 के अधीन भारतीय नागरिकों को कुछ स्वतंत्रताएं प्रदान की गई हैं। कैदी भी नागरिक है क्योंकि कारागृह अभिरक्षा उनके नागरिकता के अधिकार को प्रतिबंधित नहीं करती। अत: ये स्वतंत्रताएँ कैदियों को भी समान रूप से उपलब्ध हैं। किन्तु 'घूमने फिरने की स्वतंत्रता' 'रहने तथा बस जाने की स्वतंत्रता' और 'वृत्ति पेशा व्यापार या व्यवसाय की स्वतंत्रता' जैसी कुछ स्वतंत्रताएँ कैदी को नहीं दी जा सकतीं क्योंकि उन्हें कैद की सजा है। परंतु कैदी को 'बोलने व अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता' तथा 'किसी संघ का सदस्य बनने की स्वतंत्रता' जैसी स्वतंत्रताएँ उपलब्ध हैं।

चिंतन की उपर्युक्त दिशा का ध्यान रखते हुए असंवैधानिक क्षेत्र में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' 'संघ की स्वतंत्रता' तथा 'आम चुनाव में भाग लेने की स्वतंत्रता' जैसी कैदियों की कुछ राजनीतिक स्वतंत्रताओं के दायरे का परीक्षण करना चाहिए।

(1) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:-

प्रजातांत्रिक देशों में विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ऐसी एक महत्वपूर्ण राजनीतिक

स्वतंत्रता है जो आम तौर पर लोगों को स्वीकृत की गई है। भारतीय संविधान में भी अनुच्छेद 19 (क) के द्वारा इस स्वतंत्रता का भी उल्लेख है। किंतु यह स्वतंत्रता इस अर्थ में निरपेक्ष नहीं है कि अनुच्छेद 19 का खण्ड (2) इन स्वतंत्रताओं पर अनुज्ञेय प्रतिबंधों के लिए कुछ अधिकार वर्णित करता है। पहली बार कैदियों के लिए इस स्वतंत्रता और उसकी उपलब्धता के दायरे पर उच्चतम न्यायालय के द्वारा पी पाण्डूरंग सांजगिरि [185] मामले में चर्चा की गई। इस मामले में याचिकाकर्ता को भारत की रक्षा, जनसुरक्षा और जन व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए हानिकर तरीके से काम करने से रोकने के लिए भारतीय रक्षा नियमावली 1962 के नियम 30 (1) (ख) के अधीन महाराष्ट्र सरकार द्वारा बम्बई जिला कारागृह में बंदी बनाया गया। उसने सरकार की अनुमति से शीर्षक 'अनुचा अनतगंगात' (अणु के भीतर) के अधीन मराठी में एक पुस्तक लिखी। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों, जिन्होंने पुस्तक की विषयसूची की सारणी को पढ़ा, इस पुस्तक पर अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया:

हम संतुष्ट हैं कि हस्तलिखित पुस्तक में वस्तुनिष्ठ रूप में प्राथमिक अणुओं के सिद्धांत का वर्णन है। पाण्डुलिपि से ऐसा नहीं लगता है कि वह शोध कार्य है किंतु ऐसा लगता है कि वह लोगों को प्रमात्रा सिद्धांत के बारे में [186] लोगों को शिक्षित करने और उसके ज्ञान का प्रचार करने के लिए लिखी गई है।

अत: पुस्तक विशुद्धत: वैज्ञानिक हित की हैं और वह संभवत: भारत की रक्षा, जनसुरक्षा तथा जन व्यवस्था के अनुरक्षण के लिए कोई हानिकर नहीं। सितम्बर 1964 में कैदी ने महाराष्ट्र सरकार को उसके प्रकाशन के लिए पाण्डूलिपि जेल से बाहर भेजने की अनुमति प्राप्त करने के लिए आवेदन किया। किंतु सरकार ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। उसने फिर से पाण्डूलिपि को जेल से बाहर भेजने की अनुमति के लिए जेल अधीक्षक को आवेदन किया किंतु उसे भी ठुकरा दिया गया। तत्पश्चात उसने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर की कि वह उसके प्रकाशन के लिए उसके द्वारा लिखित पुस्तक की पाण्डूलिपि जेल से बाहर भेजने की उसे अनुमति देने हेतु राज्य को निर्देशित करें। राज्य ने अपने प्रति शपथ पत्र में यह अभिकथन नहीं किया कि इस पुस्तक का प्रकाशन भारत रक्षा अधिनियम के उद्देश्यों को हानिकर होगा। किंतु निश्चयपूर्वक कहा कि कैद में रहते हुए कैदी को पुस्तकें प्रकाशित करने की अनुमति देना विधि के द्वारा आवश्यक नहीं है। बम्बई के उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि कैद के आदेश के द्वारा किसी नागरिक के सिविल अधिकार और स्वतंत्रताएँ किसी प्रकार कम नहीं की जा सकती

और यह कि कैदी को उसकी कैद पर लागू शर्तों के अन्दर अपनी गतिविधियाँ जारी रखने की हमेशा छूट है। न्यायालय ने आगे निर्णय दिया कि ऐसे कोई नियम नहीं हैं जो प्रकाशित किए जाने के लिए पुस्तक जेल से बाहर भेजने से वर्जित कर सकें। उच्च न्यायालय ने राज्य को वह पाण्डूलिपि प्रकाशनार्थ भेजने का निर्णय दिया।

राज्य ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरूद्ध अपील की और उच्चतम न्यायालय के सामने तथ्य रखे कि जब किसी व्यक्ति को कैद किया जाता है, वह अपनी स्वतंत्रता खो देता है, वह तब किसी प्रकार स्वतंत्र व्यक्ति नहीं रहता और इसलिए वह केवल ऐसे विशेषाधिकारों का प्रयोग कर सकता है जो कैद के आदेश के द्वारा उसे दिए गए हैं। अपनी इस दलील के समर्थन में गोपालन [187] मामले को निर्दिष्ट किया गया।

उच्चतम न्यायालय ने राज्य की अपील को खारिज कर दिया और अंत में कैदी के पक्ष में निर्णय देते हुए बंबई उच्च न्यायालय के निर्णय का अनुमोदन किया।

यह मामला उस गोपालन मामले से हटकर प्रगामी व्याख्या का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिस गोपालन मामले में उच्चतम न्यायालय ने मानवाधिकार की संकल्पना पर चर्चा करने में अपनी रूचि नहीं दिखाई थी।

मेनका गांधी मामले [188] में उच्चतम न्यायालय ने बोलने और अभिव्यक्त करने के अधिकार पर विस्तार से विचार किया। इस मामले में जो मुख्य प्रश्न था, वह यह था कि क्या किसी पत्रकार को अनुच्छेद 19 (1)(क) के तहत और अनुच्छेद 21 के तहत विदेश जाने का अधिकार है ? क्या वह कार्यविधि जिसके द्वारा याचिकाकर्ता का पासपोर्ट उसकों सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना जब्त किया गया 'न्यायोचित कार्यविधि' कही जा सकती है ?[189]

उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में यथा निर्दिष्ट 'कार्य विधि' का मात्र प्रतिरूपण न हो बल्कि उसे 'उचित, न्यायोचित तथा तर्क सम्मत' होना चाहिए। [190]

अत: कोई भी ऐसी कार्यविधि जो व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना उसके अधिकारों को क्षति पहुँचाने की अनुमति देती है उसे 'अनुचित तथा अतर्कसम्मत' के रूप में निराकृत किया जाना चाहिए।

प्रत्येक ऐसी क्रिया (कार्य) जो किसी मूल अधिकार के स्वतंत्र प्रयोग के लिए सहायक हो और उसके लिए अनिवार्य हो, उस मूल अधिकार के अंग के रूप में समझा जाता है। [191]

(2) कैदी और प्रेस साक्षात्कार:-

कैदी को पत्रकार के द्वारा साक्षात्कार लिए जाने का अधिकार है, बशर्ते कि पत्रकार भी उसका साक्षात्कार लेने के लिए सहमत हो।

प्रभा दत्त [192] मामले में याचिकाकर्ता पत्रकार दो पेशेवर अपराधियों, रंगा और बिल्ला का साक्षात्कार लेना चाहता था। दोनों पूर्वोक्त कैदियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 301 के तहत मृत्यु दंड से दंडित किया गया था और उनके द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई मृत्यु दंड के लिए की गई क्षमा प्रार्थना को अस्वीकृत की गई थी। कैदी पत्रकार के द्वारा चाहे गए उनके साक्षात्कार के लिए सहमत थे। उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 'कारागृह नियम-पुस्तक' के नियम 549 (4) में यह उपबंधित है कि मृत्यु दंड के अधीन प्रत्येक कैदी को ऐसे साक्षात्कारों और अपने रिश्तेदारों, दोस्तों तथा विधिक सलाहकारों, जैसा कि अधीक्षक उपयुक्त समझे, से अन्य संपर्क करने की अनुमति दी जाएगी। खंड 4 में पत्रकार या समाचार-पत्र के व्यक्तियों से स्पष्टत: निर्दिष्ट नहीं किया गया किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें हमेशा तथा अच्छे कारणों के बगैर एक निन्दित कैदी का साक्षात्कार लेने के अवसर से बंचित किया जाए। यदि किसी परिस्थिति में ऐसा करने के लिए वजनदार कारण हो, जिन्हें हमेशा लिखित रूप में दर्ज किया जाए, तो साक्षात्कार से मना किया जाए। किंतु वर्तमान मामले में न्यायालय पर ऐसा कोई कारण या विचार पारित नहीं हुआ और न्यायालय ने याचिकाकर्ता को साक्षात्कार लेने की अनुमति प्रदान की और उन्हें 'समाज के मित्र' की संज्ञा दी। [193]

इसी प्रकार कैदियों को डाक के द्वारा सूचना (संदेश) सम्प्रेषण की स्वतंत्रता उपलब्ध है। किंतु यह एक अलग प्रश्न है कि डाक सामान्यत: लोकहित में कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा नियंत्रित (सेंसर) की जाती है।

(3) मृत्यु दंड और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:-

उच्चतम न्यायालय ने प्रसिद्ध रंगा-बिल्ला दोहरी हत्या मामले में अपराधियों की उन याचिकाओं को अस्वीकृत कर दिया जिनमें उन्होंने काफी अधिक समय तक मृत्यु के निलंबन के लिए प्रार्थना

की थी क्योंकि वे जेल जीवन के कुछ अनुभवों को लिखना चाहते थे। इस मामले का अन्यथा निर्णय होता, यदि वे पेशेवर अपराधी न होते। मृत्यु दंड के कैदी को, जो ऐसी कोई चीज लिखना चाहे, जो महान ऐतिहासिक वैज्ञानिक या शैक्षिक मूल्य की हो, किसी उचित अवधि के लिए मृत्यु दंड के निस्पादन के निलंबन के द्वारा अपना कार्य पूंर्ण करने हेतु पर्याप्त अवसर और समय दिया जाए।

(4) संसर्ग (साहचर्य) की स्वतंत्रता:-

पुरूषों का अपने आप के लिए कार्य करने के अधिकार के बाद उनका सर्वाधिक प्राकृतिक विशेषाधिकार अपने साथी जनों द्वारा किए जा रहे कार्य में स्वयं के कार्य को संयुक्त करने और उनके साथ मिलकर काम करने का है।[194]

संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय ने इवान्स [195] मामले में निर्णय दिया कि व्यक्तियों को अपने स्वयं के सहभागियों का साथ करने का अधिकार है जिससे कि वे अपनी अधिमान्यताओं और नापसंदगियों को व्यक्त कर सकें और जिन समूहों को वे पसंद करते है, उनमें शामिल होकर अपने निजी जीवन को सजा-संवार सकें।

किसी प्रजातांत्रिक राज्य में जहाँ सरकार आम राय पर आधारित है, वहाँ लोगों की निष्ठा और सम्मति न केवल व्यक्तियों की स्वतंत्रता का समादर करती हुई मानी जाती है बल्कि एक दूसरे का साथ करने के लिए व्यक्तियों की स्वतंत्रता को मान्यता देने के लिए अपने स्वयं के स्वभाव से विवश है, बशर्ते कि ऐसे साहचर्य का प्रयोजन अपने स्वयं के प्रयोजन और समस्त व्यक्तियों के सामान्य तथा व्यापक साहचर्य के रूप में कल्याण से मेल भी खाए। किंतु प्रजातांत्रिक राज्य संगठन के द्वारा दी गई स्वस्थ रियायतें मात्र इस प्रकार की हैं कि व्यक्तियों को संघ और समितियों में, पार्टियों (दलों) में वृत्ति, सहकारी, वैज्ञानिक, तकनीकी तथा सांस्कृतिक संगठनों से जुड़ने की अनुमति दी जाती है।[196]

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19 (1)(ग) में 'साहचर्य की स्वतंत्रता' की व्यवस्था है। कैदी भी नागरिक होने के नाते इस स्वतंत्रता का उपभोग करते हैं। नि: संदेह राज्य जेल में बंद व्यक्तियों पर उचित प्रतिबंध लगा सकता है, किंतु इसके बाबजूद वे किसी सामाजिक, सांस्कृतिक या राजनीतिक के सदस्य बन सकते हैं।

चूंकि कैदी कारागृह के परिवार के बाहर नहीं घूम-फिर सकते, अत: उन्हें किसी संघ के

कार्य में भाग लेना कठिन है। चूंकि वे 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' का उपभोग करते हैं, अतः वे कारागृह से संगठन के संचालन के बारे में अपने व्यक्तिगत विचार व्यक्त कर सकते हैं। ऐसे संगठन से किसी व्यक्ति की सदस्यता उसके संगठन से निकाले जाने पर समाप्त हो जाती है किंतु दूसरी ओर यदि उसे न निकाला जाए, तो कारागृह के प्राधिकारियों को उसकी सदस्यता से कुछ लेना-देना नहीं है। कारागृह में प्रतिबंधात्मक रूप में या दाण्डिक रूप में कैद मात्र होने से किसी व्यक्ति की सदस्यता समाप्त नहीं होगी। किंतु स्वतंत्रता का व्यवहारिक पहलू नगण्य है। उसके पीछे यह कारण है कि न तो कारागृह के प्राधिकारियों और न राज्य की अभिरूचि कैदियों की स्थिति सुधारने में है और इसके अतिरिक्त कैदी कारागृह में इतने अवनमित और दुखी हैं कि वे उसके बारे में सोच भी नहीं सकते। इस अधिकार के बारे में प्रतिष्ठित राजनीतिक नेताओं, जो किसी वजह से जेल में बंद हों, के द्वारा राजनीतिक संगठनों की बैठकों में अपना संदेश भिजवाने के लिए कहा जाता है।

किंतु इंग्लैंड में कैदियों का संघ बनाने की कैदियों की मांग पर गृह कार्यालय के द्वारा विचार नहीं किया गया। यह कहा जा सकता है कि यदि कैदी कोई 'कैदियों का संघ' किसी अच्छे प्रयोजन के लिए बनाना चाहते हैं, तो कारागृह प्राधिकारियों तथा राज्य से संघ बनाने के उनके अधिकार में हस्तक्षेप किए जाने की अपेक्षा नहीं है।

(5) चुनाव अधिकार:-

भारत जैसे प्रजातांत्रिक राज्य में मत देने की स्वतंत्रता मूल स्वतंत्रताओं में से एक है। प्रत्येक भारतीय नागरिक, जो आयु में 18 वर्ष का हो गया है मत देने के अधिकार का उपभोग करता है। सर्वभौम घोषणा में कहा गया:

प्रत्येक को अपने देश की सरकार में प्रत्यक्ष रूप से अथवा अपने द्वारा चुने गए प्रतिनिधि के माध्यम से भाग देने का अधिकार है और सरकार के प्राधिकार का आधार लोगों की इच्छा है, यह इच्छा आवधिक तथा यथार्थ चुनावों में प्रदर्शित होगी, चुनाव सर्वभौम तथा समान मताधिकार के द्वारा होंगे तथा जो गुप्त मतदान के द्वारा अथवा स्वतंत्र मतदान कार्यविधि के द्वारा आयोजित किए जाऐगें।[197]

भारतीय संविधान ने 'एक व्यक्ति और एक मत' की संकल्पना और व्यस्क मताधिकार को अपनाकर घोषणा की इस आवश्यकता की पूर्णतः पूर्ति की है। नागरिकों के द्वारा 'मतदान का अधिकार'

तथा 'चुनाव लड़ने का अधिकार' है और नागरिकता जेल परिसर के भीतर भी जारी रहती है। कैदियों को भी यह अधिकार हैं किंतु यदि वे अधिनियम[198] के अधीन वर्णित कुछ अपराधों के लिए सिद्ध दोष ठहराये गए हों तो जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत उन्हें अनिर्हय किया जा सकता है किंतु यदि कैदी और विचाराधीन कैदी मतदाता होने और चुनाव के लिए उम्मीदवार होने की शर्तों की अन्यथा पूर्ति करें तो उन्हें दोनों अप्रतिबन्धित अधिकार हैं। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत केवल उन्हीं व्यक्तियों को निर्वाचित होने से अथवा मतदाता होने से अनिर्हय किया गया है जिन्हें नैतिक चरित्रहीनता[199] से संबंधित किसी अपराध सिद्ध दोष ठहराया गया हो।

कैदियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकार

कारागृह विगत तीन शताब्दियों अथवा अधिक समय से सामाजिक नियंत्रण की एक संस्था की स्थिति में विकसित हुआ है। आज की स्थिति में जब मृत्यु दंड, देश निकाला और कालापानी को सामान्यत: अमानवीय और दुष्टतापूर्ण कहा जाता है तब कारागृह की संस्था निश्चित रूप से अधिक प्रभावक और सही बन गई है। वह न केवल समय के आदर्शो को धारण करती है बल्कि संगठनात्मक विज्ञान की अलोचिताओं को भी ग्रहण किए हुए है।

किंतु कारागृह अभिरक्षा में एक बड़ा दोष यह है कि वह कैदियों को बाहरी दुनिया से पूर्णत: काटकर बन्दी बनाता है। अत: कैदी के व्यवहार को बदलने के लिए राज्य के लिए यह न केवल आवश्यक है बल्कि अनिवार्य भी है कि वह कैदी के सामाजिक और सांस्कृतिक मापदण्डों पर अधिकतम ध्यान दे।

कैदियों के सामाजीकरण के प्रयोजनों के लिए यह देखा जाना चाहिए कि कैदी के संबंध बाहरी दुनिया से पूर्णत: न कटने पायें। कारागृह प्राधिकारियों को कैदी तथा उसके परिवार के सदस्यों और दोस्तों के बीच स्वस्थ्य संबंध बनाये रखने और उसमें सुधार किए जाने पर अपेक्षित ध्यान देना चाहिए। कैद की सजा का अंतिम प्रयोजन कैदी को एक अच्छा नागरिक बनाना है। अत: कैद की सजा के इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए कैदी की सजा के आरंभ से ही उसके जेल से रिहा होने के बाद के परिप्रेक्ष्य में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जेल प्राधिकारियों को कैदी से सम्पर्क करने हेतु बाहरी अभिकरणों को अनुमति देना चाहिए। ऐसा करने से संबंधित कैदी के सामाजिक पुर्नवास के लिए वह कार्य अंत में उपयोगी

होगा। श्री जवाहर लाल नेहरू ने नैनी जेल [200] पर निम्नलिखित शब्दों में असामाजीकरण के प्रतिकूल प्रभावों का ध्यान किया :

ये अधिकांश जीवित जन वर्षों और वर्षों तक किसी बच्चे या महिला अथवा जानवरों का भी दर्शन नहीं करते। उनका बाहरी दुनिया से सम्पर्क पूर्णत: टूट जाता है तथा कोई मानव सम्पर्क नहीं होता। वे भय और बदला, घृणा के क्रुद्ध विचारों में खो जाते हैं और इन्हीं को धारण करते हैं तथा संसार की अच्छाई, दया और आनंद को भूल जाते हैं। और उस समय तक बुराईयों में जकड़े रहते हैं जब तक घृणा क्रमश: अपना किनारा खो देती है और जीवन एक आत्मा रहित वस्तु यंत्र के समान नैमी जीवन बन जाता है। समय-समय पर कैदी के शरीर का वजन और माप लिए जाते हैं। किंतु मस्तिष्क और भाव जो स्वयं विगड़ते और अपवर्तित होते हैं उन्हें कोई कैसे तौल सकता है और जब भय और दमन का ऐसा भंयकर वातावरण हो तो लोग मृत्यु दंड के खिलाफ दलील देते हैं और उनकी यह दलीलें मुझे बहुत अधिक प्रभावित करती है। किंतु जब मैं कारागृह में बिताए जीवन की लम्बे समय तक की यातना को देखता हूँ तब में यह महसूस करता हूँ कि किसी व्यक्ति को धीरे-धीरे और अनुषों के द्वारा मारने की अपेक्षा उसे मृत्यु दंड देना बेहतर है।[201]

(1) परिवार के सदस्यों और मित्रों से मिलने का अधिकार:-

भारत के उच्चतम न्यायालय ने कैदी के सामाजीकरण के पहलू पर विचार किया 'फ्रांसिस कोराइल '[202] के मामले में सम्मानीय न्यायालय ने कैदियों के सभी वर्गों उदाहरण कैदी नजरबंद विचाराधीन और सिद्ध दोष के लिए अनुच्छेद 21 के दायरे पर विचार किया। इस मामले में याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत एक ब्रिटानी नागरिक के द्वारा अपने वकील और अपने परिवार के सदस्यों से मिलने और साक्षात करने के कैदी के अधिकार के बारे में प्रश्न उठाते हुए दायर की।

याचिकाकर्ता को गिरफ्तार करके केन्द्रीय कारागृह तिहाड़ में कोसीपोसा अधिनियम की धारा 3 के तहत 23 नम्बम्बर 1979 के आदेश के तहत बंदी बनाया गया। उसने अपनी कैद को चुनौती देते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट दायर की जिसे उच्चतम न्यायालय ने अस्वीकृत कर दिया। याचिकाकर्ता ने अपने वकील और अपने परिवार के सदस्यों से साक्षात्कार करने में घोर कठिनाई का अनुभव किया। उसकी लड़की जो लगभग पाँच वर्ष की थी और उसकी बहिन जो उसकी लड़की की देखभाल करती थी को एक महीने में

केवल एक बार मिलने की अनुमति दी गई। याचिकाकर्ती अपने विरूद्ध लम्बित एक आपराधिक कार्यवाही के बारे में वकील से मिलना भी चाहती थी। साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए जो कार्यवाही थी वह बहुत जटिल थी क्योंकि उसके लिए जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व अनुमति की आवश्यकता थी और वकील केवल सीमाशुल्क अधिकारी के सामने ही मिल सकता था। इस प्रकार याचिकाकर्ती को अपने वकील से साक्षात्कार करने तथा बच्चों से महीने में केवल एक बार मिलने को छोड़कर मिलने की सुविधा से पर्याप्त रूप से मना कर दिया गया।

साक्षात्कार और मिलने पर यह प्रतिबंध कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा कारागृह नियमावली के तहत लगाया गया है। जिस मुख्य आधार पर इस नियमावली की संवैधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई, वह यह है कि ये उपबंध, जहाँ तक मनमाने और अनुचित है, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करते हैं। याचिकाकर्ती की ओर से यह दावा किया गया कि परिवार के सदस्यों से महीने में केवल एक बार साक्षात्कार करने और मिलने की अनुमति देना भेदभावपूर्ण और अनुचित है, विशेषकर जब विचाराधीन अभियुक्तों को अपने परिवार और मित्रों से साक्षात्कार करने की सुविधा सप्ताह में दो बार [203] दी जाती है और सिद्ध दोष कैदियों को अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों से साक्षात्कार सप्ताह में एक बार करने की अनुमति है।[204]

याचिकाकर्ता ने आगे दलील दी कि नजरबंद संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत अपने वकील से परामर्श लेने का हकदार है।

अनुच्छेद 21 और कारागृह नियमावली के दायरे पर ब्यौरेवार चर्चा करने के पश्चात उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 में दर्ज 'जीवन के अधिकार' को मात्र जानवर अस्तित्व तक सीमित नहीं किया जा सकता। उसका तात्पर्य शारीरिक जीवंतता से भी अधिक है। जीवन के अधिकार में मानव गरिमा के साथ जीवन बिताने का अधिकार शामिल है और उसके साथ जो भी है नामत: जीवन की आवश्यकताएँ जैसे- पर्याप्त पोषण, वस्त्र और आवास तथा वाचन लेखन तथा विभिन्न रूपों में अपने आप को अभिव्यक्त करने, स्वतंत्रता पूर्वक विचरण करने और अपने साथियों की संगति करने तथा आने-जाने के लिए संविधाएँ शामिल हैं।[205]

उच्चतम न्यायालय ने आगे विचार व्यक्त किया कि 'निवारक नजरबंदी' तथा 'दंडात्मक

कैद' के बीच बड़ा भेद है। दंडात्मक कैद का इरादा ऐसे किसी व्यक्ति को दंड देना है, जो किन्ही अपराधों के लिए दोषी पाया गया हो, जबकि निवारक नजरबंदी दंड के रूप में बिल्कुल नहीं है बल्कि ऐसी गतिविधियों से बंदी को प्रतिबन्धित करने के लिए है, जिनसे समाज की शांति भंग होने की संभावना हो। यह राज्य के द्वारा उठाया गया एक निवारक कदम है। इन उद्देश्यों पर विचार करते हुए नजरबंद व्यक्तियों के साथ अधिक मानवता तथा गरिमा से व्यवहार करने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त जब विचाराधीन कैदी को रिश्तेदारों और मित्रों से एक सप्ताह में दो बार साक्षात्कार करने की सुविधा स्वीकृत की जाती है और सिद्धदोष कैदी को अपने रिश्तेदारों तथा दोस्तों से एक सप्ताह में एक बार साक्षात्कार करने की सुविधा दी जाती है, तब नजरबंद व्यक्ति पर यह प्रतिबंध कि वह अपने परिवार के सदस्यों से एक महीने में एक बार मिल सकता है या उनसे साक्षात्कार कर सकता है, उचित और अमनमाना नहीं माना जा सकता, विशेषकर जब एक नजरबंद विचाराधीन अभियुक्त या एक सिद्धदोष [206] की अपेक्षा उच्चतर स्तर पर होता है।

इस मामले में उच्चतम न्यायालय का निर्णय ऐतिहासिक हो सकता है क्योंकि उसने न केवल कैदी के सामाजीकरण के द्वारा कैद की सजा के विपरीत प्रभाव को न्यूनतम किया है बल्कि जेलों में कैदियों के प्रति व्यवहार के क्रम में उनके तीन वर्ग भी बनाये है।

परिवार के सदस्यों से मिलने के अधिकार को आसानी से परिवार के उत्सवों में उपस्थित होने के रूप में बढ़ाया जा सकता हैं। कैदियों को उचित जमानत बन्ध पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात प्राधिकारियों से पूर्व अनुमति के द्वारा इन उत्सवों में उपस्थित होने की अनुमति दी जाए, यदि वह अन्यथा आपत्तिजनक न हों। इसमें संदेह नहीं कि कैदी एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं है फिर भी उसे यथा संभव और यथा व्यावहारींय परिवार के सदस्यों से मिलने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से जेल से कैदी की रिहाई के बाद उसके सामाजिक पुर्नवास में अन्ततः मदद मिलेगी।

(2) धर्म का अधिकारः-

भारतीय संविधान की प्रस्तावना ने भारत को एक 'धर्मनिर्पेक्ष राज्य' घोषित किया। वह यह कि राज्य किसी विशेष धर्म के प्रति तटस्थ है किंतु वह सभी धार्मिक संस्थाओं की निष्ठा की रक्षा करता है। किसी प्रजातांत्रिक राज्य के लिए धार्मिक स्वतंत्रता अनिवार्य है तथा एक स्वस्थ्य चिन्ह है। सत्रहवी शताब्दी में हेरिंगटन बेस्ट [207] ने विचार किया :

विवेक की स्वतंत्रता के बिना सिविल स्वतंत्रता पूर्ण नहीं हो सकती और सिविल स्वतंत्रता के बिना विवेक की स्वतंत्रता पूर्ण नहीं हो सकती। विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रेस की स्वतंत्रता और साहचरी की स्वतंत्रता स्वीकृत किए बिना पूजा की स्वतंत्रता स्वीकृत करना असम्भव है। धार्मिक स्वतंत्रता सिविल स्वतंत्रता के बिना विद्यमान नहीं रह सकती और इसी प्रकार धार्मिक स्वतंत्रता के बिना सिविल स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं।[208]

धर्म की या विवेक की स्वतंत्रता से तात्पर्य है और उनमें शामिल है कि राज्य की यह सम्मति कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी विशेष धर्म या सम्प्रदाय को मानने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त राज्य की दिलचस्पी निवासियों के धार्मिक विचारों का अतिक्रमण करने की नहीं है। किसी विशेष 'धर्म' के मानने पर कोई विशेष सिविल विशेषाधिकार या विधिक रोक नहीं है।

संयुक्त राज्य उच्चतम न्यायालय ने क्रूज [209] मामले में कैदियों की धार्मिक स्वतंत्रता पर चर्चा की। इस मामले में कारागृह में धार्मिक भेदभाव के बारे में कैदी ने अपनी याचिका में आरोप लगाया। यह दावा किया गया कि जबकि दूसरे धार्मिक सम्प्रदायों के कैदियों को कुछ सुविधाओं की अनुमति दी गई वे सुविधाएं बौद्ध कैदियों को नही दी गईं। दूसरे सम्प्रदायों के कैदियों को धार्मिक सामग्री दी गईं जबकि बौद्ध कैदियों को नहीं तथा बौद्ध कैदियों को इस सुविधा से वंचित किया गया।

उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्य में वादी को अपना धर्म अपने साथी कैदियों जो पारम्परिक धार्मिक नीतिवचनों का पालन करते हैं, को दिए गए अवसर की तुलना में अपना धर्म मानने के उचित अवसर की मनाही के माध्यम से बौद्ध धर्म के विरूद्ध भेदभाव के द्वारा राज्य ने पहले और चौदहवें संशोधनों का उल्लंघन किया।[210]

भारतीय संविधान अनुच्छेद 25 (1) के माध्यम से 'धर्म की स्वतंत्रता' के बारे में कहता है। उसमें उपबन्धित है :

जनव्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबन्धों को छोड़कर समस्त व्यक्तियों को विवेक की स्वतंत्रता तथा धर्म को स्वतंत्रता पूर्वक मानने धार्मिक व्यवहार करने और धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता का हक है।

कैदी 'व्यक्ति' है और वे न तो अपनी नागरिकता खोते हैं और न ही अपने ऐसे अधिकार जो

कारागृह नियमावली के अंतर्गत नहीं आते तथा जिन्हें इस नियमावली के द्वारा वर्जित किया गया है। वे जेल में रहते हुए भी किसी पंथ या धर्म को मान सकते या उस पर अमल कर सकते हैं। कैदी के धार्मिक विश्वासों का समादर करना कारागृह प्राधिकारियों का कर्तव्य है। एक अन्तर्राष्ट्रीय घोषणां में वर्णित है:

यदि किसी संस्था में उसी धर्म के कैदी पर्याप्त संख्या में हों तो उस धर्म के एक अर्हता प्राप्त प्रतिनिधि को नियुक्त किया जाए या उसे अनुमोदित किया जाए। यदि कैदियों की संख्या उसे उचित ठहराए और स्थितियाँ अनुमति दे तो पूर्णकालिक आधार पर व्यवस्था की जाए।[211]

जहाँ तक व्यवाहारीय हो प्रत्येक कैदी को संस्था में की गई पूजा-अर्चना में भाग लेकर अपने धार्मिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की अनुमति दी जाएगी और अपने पास धार्मिक महत्व की पुस्तकें रखने की अनुमति भी होगी।[212]

यह निर्णय दिया गया कि भारत में कैदियों के धार्मिक विश्वासों पर कम से कम विचार किया गया है जो प्राधिकारी कारागृह का प्रशासन करते हैं उनके द्वारा इस अधिकार की व्यवहारिक उपयोगिता का अनुभव नहीं किया गया है।

नजरबंद व्यक्तियों को विशेष संरक्षण

अधिकांश प्रजातांत्रिक विधिक तंत्रों में निवारक नजरबंदी के बारे में विधियाँ हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21, संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान का पॉचवां संशोधन, जापानी संविधान का अनुच्छेद 21 तथा जर्मन प्रजातंत्रात्मक गणराज्य का अनुच्छेद 8 ये सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता को मनमाने ढंग से वंचित करने के विरूद्ध समरक्षण दिया जाना उपबन्धित करते हैं।

किसी प्रजातांत्रिक देश में प्रत्येक सदस्य को कुछ मात्रा में स्वतंत्रता दी जाती हैं जिससे कि वह अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित कर सकें। किंतु यह देखना राज्य का कर्तव्य है कि कोई भी व्यक्ति अपने आपकी अच्छी पूर्ति करने में दूसरे व्यक्तियों के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण न करें। भारतीय संविधान के भाग 3 में कुछ मूल अधिकारों की गारंटी दी गई है। ये मूल अधिकार स्वतंत्रताओं के रूप में हैं और इस प्रकार राज्य पर एक नकारात्मक दायित्व डाला गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा प्रविष्ट 'जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार' एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अधिकार है संविधान निर्माताओं ने इस मूल अधिकार के क्षेत्र और स्वरूप को पारिभाषित करने में बहुत अधिक समय लिया। इस

मूल अधिकार पर विचार-विमर्श से स्वतंत्रता तथा सामाजिक क्रांति के प्रश्न पर सदस्यों के दृष्टिकोण पर उत्तम अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। अनुच्छेद 21 कहता है :

कोई भी व्यक्ति विधि द्वारा स्थापित कार्य विधि के अनुसार के सिवाय अपने जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

शब्द 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' के क्षेत्र, स्वरूप, विषय-वस्तु और अर्थ संविधान में नहीं पाये जाते किंतु इस उपबन्ध को बनाने के इतिहास से यह तात्पर्य लगाया जा सकता है कि स्वतंत्रता की विशेषता शब्द 'व्यक्तिगत' से बनाने का उपक्रम किया गया है क्योंकि अन्यथा भ्रम पैदा होगा, व्यापक व्याख्या के लिए भाषातंरकार भ्रम में पड़ जाएगा परामर्शदात्री समिति ने सिफारिश की थी :

किसी भी व्यक्ति को विधि की अपेक्षित प्रक्रिया के बिना उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा और न किसी व्यक्ति को संघ के राज्य क्षेत्र के अन्दर विधियों के समान व्यवहार से इंकार किया जाएगा।[213]

प्रारूपण समिति ने इस उपबन्ध का बारीकी से परीक्षण करने के पश्चात न केवल अभिव्यक्ति 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के अनुसार के सिवाय' को शब्द 'विधि की अपेक्षित प्रक्रिया' के स्थान पर रखा, बल्कि शब्द 'स्वतंत्रता 'की विशेषता बताने के लिए शब्द 'व्यक्तिगत' जोड़ दिया जिससे कि शब्द 'स्वतंत्रता' अधिक 'विशिष्ट' और कदाचित 'विधि की अपेक्षित प्रक्रिया' जैसे अस्पष्ट तथा पारंपरिक वाक्यांश की अपेक्षा अधिक निश्चित और असंदिग्ध अर्थ दे सके। इस मूल्यवान उपबन्ध का मसौदा तैयार करने पर बड़ा विवाद हुआ और 'अपेक्षित प्रक्रिया' के समर्थकों ने कार्यकारी कार्यवाही के विरूद्ध प्राथमिक रूप में उसके कार्यविधिक सुरक्षणों के लिए इस खंड को बनाए रखना पसंद किया।

सर बी.एन.राउ, जिन्होंने न्यायामूर्ति फिलिक्स फ्रेंकफर्टर[214] के तत्व ज्ञान के अनुसार दलील दी कि 'अपेक्षित प्रक्रिया खंड' में जो न्यायिक समीक्षा की शक्ति अर्न्तनिहित है, वह न्यायपालिका के लिए भारीभरकम और अप्रजातांत्रिक है, उन्होंने 'अपेक्षित प्रक्रिया' के 'मूल अर्थ की ओर तथा सामाजिक प्रयोजनों के लिए विधानमण्डल पर ऐसी मूल व्याख्या के प्रभाव की ओर इंगित किया।'[215]

श्री के. एम. मुंशी, जो 'अपेक्षित प्रक्रिया खंड' के समर्थकों में से एक थे, ने भी कहा कि यह खंड निवारक नजबंदी के खिलाफ व्यक्तियों को अधिक सुरक्षा प्रदान करेगा। डॉ0 अम्बेडकर तटस्थ रहे और

उन्होंने केवल सिक्के के दोनों पक्ष प्रस्तुत किए तथा कोई ठोस निर्णय लेने से अपने आप को रोके रखा। श्री ए. के. अय्यर ने जो मूल रूप से 'अपेक्षित प्रक्रिया खंड' के कट्टर समर्थक थे बाद में 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि' के पक्ष में अपना मत दिया।[216] श्री अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर ने स्पष्टत: स्वीकार किया कि संयुक्त राज्य अमेरिका उच्चतम न्यायालय में यथा विकसित इस अभिव्यक्ति ने अमेरिका न्यायिक निर्णयों की दीर्घ अवधि में भिन्न पर्याय और अर्थ ग्रहण किया है जो इंग्लैंड में समझे जाने वाले अर्थ से इस दृष्टिकोण से भिन्न है कि ये निर्णय अधिकतर पारस्परिक रूप में विरोधी तथा असंगत हैं और यह कि यदि भारत में अपनाए जाएँ तो "यह खंड समस्त सामाजिक विधानन के लिए एक बड़ी बाधा पैदा करता है।"[217]

यह कहा जा सकता है कि अत्याधिक विवाद के वाबजूद अनुच्छेद 21 और 22, जो अंतत: संविधान सभा से उद्भूत हुए, ने विधानमंडल को वास्तविक रूप में जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के व्यक्ति के अधिकार के बारे में सर्वोच्च बना दिया क्योंकि उस पर उस समय देश में उपलब्ध असामान्य स्थितियों का प्रभाव पड़ा। किंतु भारत के उच्चतम न्यायालय ने समाज की बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निवारक नजरबंदी के साथ स्वतंत्रता की संकल्पना में खूबसूरती से सामंजस्य स्थापित किया।

(1) निवारक नजरबंदी:-

'निवारक नजरबंदी' का उद्देश्य और लक्ष्य किसी व्यक्ति को ऐसे किसी कार्य को करने से प्रतिबंधित करना है, जो वह अन्यथा करेगा। समाज में शांति स्थापित करने के लिए राज्य के द्वारा निवारक नजरबंदी के अस्त्र का प्रयोग ससावधानी बरतने के लिए किया जाता है। किंतु 'निवारक नजरबंदी' 'दांडिक कैद' से भिन्न है क्योंकि उसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को दंडित करना नहीं है बल्कि उसके द्वारा किए जा सकने वाले कार्य से उसे रोकना है। निवारक नजरबंदी विधियों का कार्यन्वयन सामान्यत: कार्यपालक प्राधिकारियों को दी गई व्यापक शक्तियों से जुड़ा है। इन प्राधिकारियों को किसी अपराध के वास्तविक रूप में किए जाने तक इंतजार नहीं करना होता और न ही कोई आरोप ही लगाना होता है, बशर्ते कि ऐसी कोई उचित आशंका या संशय हो कि व्यक्ति के द्वारा ऐसा कोई कार्य किया जाना संभावित है, जिसे उसके द्वारा किए जाने की अन्यथा आशा न हो और उसका कार्य ऐसे कुछ उद्देश्यों को भी हानिकारक हो, जिन्हें विधानन ने ऐसी नजरबंदी को उपबन्धित करते समय कि उसे नजरबंद किया जाए, दृष्टि में रखा हो। अत: 'निवारक नजरबंदी' से तात्पर्य न्यायालय के द्वारा बिना किसी विचारण के नजरबंदी से है।

यद्यपि निवारक नजरबंदी का उपाय आपराधिक विधि शास्त्र के नियमों के विरूद्ध है तथापि कार्यपालक प्राधिकारी भी हाथ बांधे बैठे नहीं रह सकते और समाज की शांति भंग करने वाले बम का विस्फोट चुपचाप बैठे नहीं देख सकते।

भारतीय संविधान के निर्माता 'निवारक नजरबंदी' की संकल्पना के ज्ञाता थे। उस समय उनके मस्तिष्क में जो लक्ष्य था, वह अंग्रेज शासित भारत के विभाजन के पश्चात साम्प्रदायिक उपद्रवों और विनाशकारी आन्दोलनों को नियंत्रित करने का था।

निवारक नजरबंदी के लिए विभिन्न राज्यों ने अनेक प्रांतीय तथा अन्य संविधियाँ पारित की हैं। संविधान के निर्माताओं ने संसद तथा राज्य विधानमंडलों[218] को निबारक नजरबंदी पर विधान तैयार करने के लिए प्राधिकृत किया है। संसद को भी राष्ट्र की रक्षा,[219] विदेशी मामले अथवा सुरक्षा से सम्बन्धित किन्हीं कारणों से निवारक नजरबंदी कदम उठाने की शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

निवारक नजरबंदी के लिए प्रथम और महत्वपूर्ण आधार भारत की रक्षा, अथवा उसका ऐसा कोई भाग है, जिसमें रक्षा के लिए तैयारी और ऐसी सभी कार्य सम्मिलित है, जो युद्ध के समय उसके संचालन के तथा युद्ध की समाप्ति पर प्रभावकारी सैन्य-वियोजन के अनुकूल हों। इस शक्ति का प्रयोग उस समय किया जाता है, जब वास्तविक युद्ध हो रहा हो, या युद्ध का खतरा हो अथवा युद्ध समाप्त हो गया हो इसके अतिरिक्त यह शक्ति संपूर्ण भारत की रक्षा तक सीमित नहीं है बल्कि उसे प्रत्येक भाग पर लागू होती है।[220]

निवारक नजरबंदी के लिए एक दूसरा महत्वपूर्ण आधार 'विदेश कार्य' के मामलों में है। विदेश कार्य के बारे में निवारक नजरबंदी शक्तियाँ उपबंधित करती हैं कि विदेश कार्य में ऐसे मामले शामिल है जो संघ का किसी विदेशी राष्ट्र से सम्बन्धित करते हैं। मुल्लर[221] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अभिव्यक्ति 'विदेशकार्य' पर्याप्त रूप से इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत विदेशियों को देश से निष्कासित करने के लिए अथवा भारत में उनकी निरन्तर उपस्थिति विनियमित करने के लिए प्रबंध करने के प्रयोजन हेतु विदेशियों की निवारक नजरबंदी आती है। यह आधार कार्यपालिका को किसी ऐसे व्यक्ति को नजरबंद करने का प्राधिकार भी देता है, जिसने कोई अपमान-लेख (अपलेख) किसी विदेशी प्रतिष्ठित व्यक्ति की प्रतिष्ठा गिराने या उसके बारे में घृणा पैदा करने या उसकी निंदा करने के लिए प्रकाशित

किया हो। ऐसा कोई व्यक्ति भी नजरबंद किया जा सकता है, जो दूसरे देश से भारत के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों में वैमनस्य पैदा करने की कोशिश करें।[222]

'भारत की सुरक्षा' भी निवारक नजरबंदी विधियों के लिए एक बड़ा आधार है। इस शक्ति का प्रयोग ऐसे समय किया जाए जब संपूर्ण भारत की सुरक्षा खतरे में हो, न कि किसी विशेष राज्य की 'सुरक्षा' से तात्पर्य खतरा, संरक्षा अथवा आशंका[223] से अथवा इनके जोखिम में न डाले जाने से संरक्षित किए जाने की स्थिति से है।

(2) अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 22 की न्यायिक व्याख्या:-

अनुच्छेद 21 की न्यायिक व्याख्या की प्रक्रिया गोपालन[224] मामले से शुरू हुई। इस मामले में उच्चतम न्यायालय को उसके बनने के बाद लघु अवधि के दौरान मूल स्वतंत्रताओं और उनके अन्तर संबंधों से सम्बन्धित अनेक उपबंधों[225] की व्याख्या करने के भारी कार्य का सामना करना पड़ा।

इस मामले में निवारक नजरबंदी अधिनियम. जिसके तहत गोपालन (याचिकाकर्ता) को नजरबंद किया गया, की विधिमान्यता को उच्चतम न्यायालय के सामने चुनौती दी गई। एक बड़ा कारण, जिस पर अधिनियम की विधिमान्यता संदेह के घेरे में आयी, यह था कि इसने न केवल अनुच्छेद 19(1)(घ) के तहत किसी नागरिक के भारत के समस्त भूभाग में स्वतंत्रता पूर्वक विचरण के मूल अधिकार को प्रभावित किया बल्कि जनहित में इस अधिकार पर लगाए गए उचित प्रतिबंध के अंतर्गत भी वह नहीं आया। याचिकाकर्ता के द्वारा यह अभिकथन भी किया गया कि गिरफ्तारी अनुज्ञेय विधानन के अनुसार नहीं थी और निवारक नजरबंदी को अनुच्छेद 22 के खंड (4) और (7) के तहत होने दिया गया। याचिकाकर्ता की ओर से आगे यह दलील दी गई कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता संचालन की स्वतंत्रता की अपेक्षा न तो अधिक थी, न कम ही थी। अत: जब किसी व्यक्ति को निवारक नजरबंदी विधि के तहत कैद किया जाता है, तब अनुच्छेद 19 (1)(घ) के अधीन गारंटित संचालन का यह अधिकार छीन लिया जाता है। अत: निवारक नजरबंदी अधिनियम के अधीन व्यक्ति की कैद ने अनुच्छेद 19(1)(घ) के तहत इस अधिकार का उल्लंघन किया।

न्यायालय की इस बड़े प्रश्न पर राय एक सी नहीं थी और वहुमत से यह निर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 21 और 22 जो विभिन्न विषयों के सम्बन्ध में है, दो पूर्णत: अलग उपबन्ध हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता से पूर्णत: वंचित किए जाने का प्रश्न अनन्य रूप में अनुच्छेद 21 के क्षेत्र के अंतर्गत आता है। बहुमत

के निर्णय ने याचिकाकर्ताओं के इस दावे को ठुकरा दिया कि अनुच्छेद 21 कार्यविधिक अधिकारों की गारंटी देता है, जबकि अनुच्छेद 19 (1) मूल अधिकारों की गारंटी देता है। न्यायमूर्ति मुकर्जी ने प्रेक्षण दिया :

किसी के जीवन और अंगों की सुरक्षा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के उपभोग की सुरक्षा, जो शारीरिक संयम और हर प्रकार की प्रताड़ना से मुक्ति के अर्थ में हो, का अधिकार व्यक्ति के जन्म सिद्ध अन्तर्निहित अधिकार है।[226]

इस मामले में अलग- अलग न्यायाधीशों के द्वारा अनुच्छेद 19 तथा 21 के बीच अर्न्तसम्बन्ध पर विस्तार से चर्चा की गई और जब न्यायमूर्ति फज्जल अली ने अपने अल्पमत अभिमत में कहा कि अनुच्छेद 19 (1)(घ) अनुच्छेद 21 को विनियंत्रित करता है, क्योंकि संचलन की स्वतंत्रता व्यक्तिगत स्वतंत्रता की एक अनिवार्य आवश्यकता है और इसलिए निवारक नजरबंदी की विधि का औचित्य अनुच्छेद 19(5) के तहत उचित माना जाए। मुख्य न्यायमूर्ति कानिया[227] के नेतृत्व में अधिकांश न्यायाधीशों ने यह आधार लिया कि अनुच्छेद 19 निवारक नजरबंदी की विधि पर लागू नहीं होता और यह कि समस्त भारतीय प्रदेश में अनुच्छेद 19(1)(घ) के अधीन संचालन की स्वतंत्रता अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्तिगत स्वतंत्रता से भिन्न है।[228] अनुच्छेद 19(1) (घ) का उद्देश्य किसी नागरिक को भारत के समस्त राज्य प्रदेश में बिना किसी भेदभाव पूर्ण बाधा के स्वतंत्रतापूर्वक संचलन (विचरण) के अधिकार की गारंटी देता है। उच्चतम न्यायालय ने भी 'प्रतिबंध' और 'प्रचलन' के बीच अंतर को यह कहते हुए निर्धारित किया कि प्रबंचन से तात्पर्य आंशिक नियंत्रण से है।[229]

न्यायालय ने आगे राय दी कि जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मूल अधिकार के बारे में भारत के किसी व्यक्ति के पास विधायी कार्यवाही के विरूद्ध कोई उपचार नहीं है, बशर्ते कि विधानमंडल विधि को पारित करने के लिए सक्षम हो और कोई अन्य संवैधानिक उपबन्ध उसके रास्ते में बाधक न बने, तो वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने का प्राधिकार देते हुए किसी विधि को अधिनियमित कर सकता है। न्यायपालिका को विधानमंडल के द्वारा पारित ऐसी विधि के औचित्य या अनौचित्य की समीक्षा करने की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है।[230]

अनुच्छेद 21 जो एकमात्र उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है, वह कार्यपालिका पर प्रतिबंध लगाने का है, जिससे कि वह किसी विधि के प्राधिकार के अधीन तथा उसमें निर्धारित कार्यविधि के अनुरूप

के सिवाय व्यक्ति के जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरूद्ध आगे न बढ़े। [231]

आगे उच्चतम न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि शब्द 'विधि की अपेक्षित प्रक्रिया के अनुसार' के बदले में अनुच्छेद 21 में शब्द 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के अनुसार' का प्रयोग करने में भारतीय संविधान ने जानबूझकर संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के चौदहवें संशोधन के 'अपेक्षित प्रक्रिया खंड' को अपनाने से अलग रहना (परहेज करना) पसंद किया। जैसा कि न्यायमूर्ति मुकर्जी ने अनुमति दी :-

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के निर्माताओं ने हमारी प्रणाली में रखी अनिश्चितता, अस्पष्टता और परिवर्तनशीलता के तत्व आने नहीं दिए, जो तत्व अमेरिका में 'अपेक्षित प्रक्रिया' सिद्धांत के चारों ओर पैदा हो गए हैं। वे इस उपबंध को निश्चित, यथातथ्य बनाना चाहते थे और उन्होंने जानबूझकर शब्द 'विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि' को चुना क्योंकि उनके मतानुसार इस अभिव्यक्ति के अर्थ के बारे में सामान्यत: कोई संशय उत्पन्न न हो। [232]

अंत में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 22 से एक अलग संहिता बनती है और इसलिए यदि एक बार विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के अनुसार किसी व्यक्ति को उसकी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाए, तो अनुच्छेद 19 के अधीन कोई अतिरिक्त प्रश्न नहीं उठेगा।

बहुमत के द्वारा अपनाए गए मत की बर्नार्ड स्ववार्टज के द्वारा घोर आलोचना की गई :

बहुमत से लिया गया निर्णय आशांतिकारक और बैचेन करने वाला और वह न्यायपालिका को जंजीरों से जकड़नेवाला है। इस निर्णय ने भारतीय विधि से 'प्राकृतिक न्याय' की ब्रितानी संकल्पना और 'विधि की अपेक्षित प्रक्रिया' की तुल्य अमरीकी संकल्पना का परित्याग किया और इस तरह न्यायालय विधायी समक्षता [233] के आधार पर सिवाय नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने वाली विधि में हस्तक्षेप करने में पंगु बन गया अर्थात शक्ति रहित हो गया।

अनुच्छेद 21 में यथा प्रवृष्टि स्वतंत्रता की संकलपना के बारे में उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई संकुचित व्याख्या से तथा इस उपबन्ध का सख्ती से तथा शाब्दिक रूप में उसकी निर्मिति के अनुसार पालन किए जाने से प्रजा को राज्य के विवेक की दया पर छोड़ दिया गया है।

गोपालन[234] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने शब्द 'विधि' के क्षेत्र से न केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को तिलांजलि दी बल्कि यह भी निर्धारित किया कि न्यायालय ऐसी स्थिति में हस्तक्षेप न करने के लिए बाध्य नहीं है जब विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के अनुसार किसी को कैद किया गया हो।

दुर्भाग्यवश गोपालन मामले में यथा निर्धारित वही संकल्पना जो संकुचित, प्रतिबंधात्मक और कदाचित अनुचित या कुछ हद तक मनमानी व्याख्या वाली है, 9 वर्षो तक उच्चतम न्यायालय की पीठ को प्रभावित करती रही। इन वर्षों की समयावधि के दौरान व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कैद की संकल्पना पर बहुतेरे महत्वपूर्ण मामले उच्चतम न्यायालय के सामने आए, किन्तु वे सभी उसी विचारधारा के अनुसार निर्णीत हुए जिस विचारधारा के अनुसार गोपालन मामला निर्णीत हुआ था।[235]

आत्माराम[236] के मामले में उच्चतम न्यायालय ने राज्य की अपील को अनुमति दी और निर्णय दिया कि कैद विधिमान्य है, वशर्ते कि अनुच्छेद 22 (5) की दो आवश्यकताओं की पूर्ति होती है अर्थात (क) कैद किए गए व्यक्ति के अधिकार को उन कारणों सहित प्रस्तुत किया जाए जिनके आधार पर कैद किए जाने का आदेश दिया गया है और उसे यथाशीघ्र दिया जाए,[237] (ख) ऐसे व्यक्ति को आदेश[238] के खिलाफ अभ्योदयन देने का शीघ्रतम अवसर प्रदान किया जाए।

यह स्पष्ट है कि यथा उपर्युक्त कैद के आदेश देने के लिए जो आधार (कारण) हैं वे वहीं आधार है, जिन पर कैदकर्ता प्राधिकारी इस प्रकार संतुष्ट हो जाएँ कि ऐसा आदेश देना आवश्यक था। अत: ये आधार उस समय अस्तित्व में होने चाहिए जब आदेश दिया जाए। यह प्रश्न कि क्या ऐसा आदेश, आदेश देने के लिए आवश्यक संतुष्टि को उत्पन्न कर सकता है, न्यायालय की जांच की व्याप्ति से बाहर है।

संकुचित निर्मित की कहानी की पुनरावृत्ति रामसिंह[239] मामले में की गई, इस मामले में अपीलकर्ता को इस आधार पर कैद किया गया कि उसने ऐसे वक्तव्य दिए, जो कैद करनेवाले प्राधिकारी की राय में जन व्यवस्था को बनाए रखने के लिए हानिप्रद माने गए। वक्तव्यों के उद्धारण नहीं दिए गए किन्तु कैदी (नजरबंद) को दिए गए वक्तव्यों के समय तथा स्थान, कब दिए गए और कहाँ दिए गए, की सूचना दी गई। कैदी की ओर से यह दलील दी गई कि वक्तव्यों में उल्लंघित अवतरणों के संकेत के अभाव में वह कोई प्रभावी अभ्यावेदन नहीं कर सकता। न्यायालय इस संबंध में सर्वसम्मति नही बना सका और

बहुमत से निर्णय दिया गया कि कैदकर्ता प्राधिकारी के द्वारा कैदी को प्रस्तुत और सूचित किए गए ब्यौरे और विषय वस्तु पर्याप्त थी जिससे कि वह अभ्यावेदन प्रस्तुत कर सके।[240]

किन्तु न्यायाधीशों की अल्पमत राय यह भी थी कि कम से कम वक्तव्य के सार की सूचना कैदी को दी जाए जिससे कि वह बता सके कि कोई तर्कसम्मत व्यक्ति उनसे यह अर्थ न निकाल सके, जो कैद कर्ता प्राधिकारी[241] के द्वारा निकाला गया हो।

इसी नजरिए पर दो अन्य महत्वपूर्ण मामलों का जो निर्णय दिया गया, वे कृष्णन[242] मामला और माखन सिंह[243] मामले थे।

अब यह कहा जा सकता है कि गोपालन[244] और उपर्युक्त मामलों में अनुच्छेद 21 की कुछ-कुछ प्रतिबंधात्मक और कदाचित थोड़ी सी अनुचित तथा शाब्दिक व्याख्या ने उत्तरवर्ती मामलों में अधिक उदार, उचित और व्यक्तिवादी राय को प्रस्तुत किया।

काचुनी[245] मामले, जो भारतीय संविधान के अनुच्छेद 31 से मुख्यत: संबंधित था, जैसा उस समय था, में अनुच्छेद 21 तथा 22 के क्षेत्र पर भी चर्चा हुई।

(क) अनुच्छेद 21 तथा अधिवासीयता यात्राएँ:-

खड्गसिंह[246] का मामला गोपालन[247] के मामले से बिल्कुल एक प्रकार का होने का प्रतिनिधित्व करता है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में यथा प्रविष्ट जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के क्षेत्र के विस्तारण की प्रक्रिया में एक ऊँची छलांग दर्शाता है। इस मामले में उत्तरप्रदेश पुलिस विनियम की विधिमान्यता को चुनौती दी गई जिसमें किसी संदिग्ध व्यक्ति की घर पर जाने की यात्रा उपबन्धित है। इस पर उच्चतम न्यायालय के द्वारा चर्चा की गई।

न्यायमूर्ति आयंगर, जो बहुमत का प्रतिनिधित्व करते थे, ने इस अर्थ में 'संचालन की स्वतंत्रता' की बारीकी से व्याख्या की कि कोई भी व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान को बिना किसी प्रतिबंध के शारीरिक रूप में जा सकता है और यह कि :

मूल अधिकार जैसे संचालन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार पर विचार करने में केवल वहीं अतिलंघन के रूप में होगा जो प्रत्यक्ष तथा वास्तविक दोनों हो और यह नहीं हो सकता कि संविधान निर्माताओं का इरादा केवल अतिसंवेदनशीलता की रक्षा करने का था या उन्होंने

उसकी रक्षा की।[248]

किन्तु न्यायमूर्ति सुब्बाराव और न्यायमूर्ति शाह ने अपनी अल्पमत राय में अनुच्छेद 21 की जो व्याख्या व्यापक रूप में और उदारतापूर्वक की उसका तात्पर्य स्वतंत्र देश में संचलन है अर्थात ऐसे देश में जहाँ कोई नागरिक वह करे जो भी उसे पसंद हो, उससे बोले जिससे वह बोलना चाहे और बिना किसी आशंका के अपनी पसंद के लोगों से भेट करें किंतु यह सब वास्तव में सामाजिक नियंत्रण विधि के अधीन होगा। अल्पमत न्यायमूर्तियों ने प्रेक्षण दिया कि निगरानी के प्रभाव के अधीन याचिकाकर्ता संदिग्ध व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता से निश्चित रूप में वंचित किया गया। [249]

जबकि बहुमत के न्यायमूर्तियों के निर्णय ने उत्तरप्रदेश पुलिस विनियमावली पर विचार किया, जिस विनियमावली ने 'अधिवासीय' यात्राओं को संविधान के अनुच्छेद 21 के उल्लंघन के रूप में प्राधिकृत किया क्योंकि ऐसी कोई विधि नहीं थी जिसके द्वारा उसको उचित ठहराया जा सके, [250] किंतु न्यायमूर्ति राव और न्यायमूर्ति शाह ने निश्चयपूर्वक कहा कि इस आधार पर संपूर्ण विनियमावली असंवैधानिक है कि वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 (1) तथा अनुच्छेद 21 का अतिलंघन करती है। [251]

(ख) मेनका गांधी [252] के मामले के पश्चात अनुच्छेद 21 का क्षेत्र:-

मेनका गांधी मामले का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निवारक नजरबंदी संकल्पना से सम्बन्ध नहीं था किंतु अनुच्छेद 21 के क्षेत्र पर इस मामले में विस्तार से चर्चा की गई। उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में यथा प्रविष्टि शब्द 'विधि' से तात्पर्य 'उचित और यथातथ्य' विधि से है और जिस कार्यविधि के द्वारा किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से बंचित किया जा सकता है, उसे उचित और यथातथ्य कार्यविधि होना चाहिए और उसके अंतर्गत प्रताड़नापूर्ण तथा काल्पित कार्यविधि नहीं आती जिसकी उन्होने अपेक्षाकृत निंदा की। इस मामले के पश्चात न्यायालय ऐसे मामलों में हस्तक्षेप कर रहे हैं, जो ऐसी विधि के बारे में है जिसके निवारक नजरबंदी उपबंधित हों तथा जब भी यह प्रतीत हो कि नजरबंदी के लिए जो कार्यविधि है, वह अनुचित तथा मनमानी है।

(3) नजरबंदी का आदेश :-

कैद कर्ता प्राधिकारियों की सामान्य प्रवृत्ति यह रही है कि वह परोक्ष प्रयोजन प्रकट किए बिना कैद के आदेश के सामान्य रूप का प्रयोग करती है। एक बार निवारक नजरबंदी आदेशों के बारे में

विधि को कार्यविधिक पक्ष का अनुपालन किए जाने पर न्यायालय सामान्यत: कैद में हस्तक्षेप नहीं करते। न्यायालय केवल इस आधार पर कि प्रत्येक मामले में कैद का आदेश कार्यपालिका[253] की व्यक्ति परक संतुष्टि होने तक प्रत्यायोजित किया गया है, विधि को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकते।

(क) दुर्भावपूर्ण आदेश:-

निरंजन[254] के मामले में उच्चतम न्यायालय के सामने यह दलील दी गई कि कैद कर्ता प्राधिकारी के द्वारा जारी कैद का आदेश दुर्भावपूर्ण है क्योंकि उसने अपना आदेश बदल दिया है और पहले आदेश का अतिक्रमण इस बजह से कि वह दोषपूर्ण था करके एक नया आदेश दिया है। उच्चतम न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया और निर्णय दिया कि कार्यविधिक प्राविधिकर्ताओं[255] की पूर्ति के लिए कार्यपालक प्राधिकारी के द्वारा आदेश परिवर्तित किया जा सकता है।

भीमसिंह[256] के मामले में अपीलकर्ता की ओर से यह दलील दी गई कि चूंकि कैद कर्ता प्राधिकारी के द्वारा जारी कैद का आदेश पूर्णत: पिछली गतिविधियों पर आधारित है और उन्हें आदेश में निर्दिष्ट किया गया है और यह कि तथाकथित गतिविधियाँ फर्जी हैं, वास्तविक नहीं। उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि आदेश दुर्भावपूर्ण नहीं है क्योंकि जब एक बार कैद कर्ता प्राधिकारी प्रदर्शित करता है कि आधार (कारण) संगत है, तब न्यायालय कैद कर्ता प्राधिकारी की व्यक्तिपरक संतुष्टि की यथातथ्यता की जाँच नहीं कर सकता।[257]

आशुतोष[258] के मामले में यह दलील दी गई कि कैद का आदेश दुर्भावपूर्ण है क्योंकि राज्य के प्रयोजन की पूर्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत एक आदेश देकर सामान्य विधि के अधीन साधारण तथा सामान्य कार्यवाहियों के द्वारा की जा सकती थी। उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया कि आदेश न तो अस्पष्ट है और न दुर्भावपूर्ण ही है और वह कार्यपालक प्राधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि है, न्यायालय को उससे कुछ लेना-देना नहीं है।[259]

डिसूजा[260] के मामले में अपीलकर्ता की ओर से यह आरोपित किया गया कि कैद आदेश में प्रविष्ट आधारों का उल्लेख स्पष्ट तथा विशेष रूप में नहीं किया गया और अपीलकर्ता की आरोपित गतिविधियों के ब्यौरे नहीं दिए गए। उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया कि कैदी को ब्यौरे प्रस्तुत किए जाने का अधिकार अनुच्छेद 22 (6) के अधीन परिसीमित है। अत: इस वजह से कि जनहित में तथ्यों को

उजागर नहीं किया जा सकता, भले ही आधार अस्पष्ट हो कैद के आदेश को ऐसी अस्पष्टता के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता।[261]

दुर्भावपूर्ण सिद्ध करने का दायित्व हमेशा कैदी पर होता है और यदि वह किसी प्रकार यह सिद्ध कर सका कि आदेश दुर्भावपूर्ण है, तो वह जेल से रिहा किए जाने का हकदार है।

पूरनलाल [262] के मामले में कैद आदेश में कथन था : कि आपने 18 फरवरी, 1956 को नई दिल्ली में एक पत्रकार सम्मेलन को संबोधित किया। उस सम्मेलन में विदेशों के बड़ी सख्या में समाचार पत्रों के संवाददाता मौजूद थे और यह कि आपने कश्मीर के लोगों की स्थितियों के बारे में एक ऐसा भाषण दिया (जिसकी विषय वस्तु की प्रतिलिपि दूसरे साथ अनुबद्ध है) जिसमें अनेक मिथ्या कथन थे। इन वक्तव्यों का संयुक्त प्रभाव भारत की सुरक्षा तथा विदेशी शक्तियों से भारत के सम्बन्धों के लिए हानिकारक था। [263]

अपीलकर्ता की ओर से यह दलील दी गई कि चूंकि याचिकाकर्ता की गतिविधियों को प्राधिकारियों के द्वारा पसंद नहीं किया गया, अत: अपीलकर्ता को बंदी बनाया गया और कैद एक दण्डिक कदम के बराबर है। उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया कि हालांकि तथाकथित दिन पर जो कुछ घटित हुआ, उससे सम्बन्धित आधार कि उनका (कैदकर्ता प्राधिकारी) इरादा यह नहीं था कि अपीलकर्ता को दाण्डिक कदमों के लिए बंदी बनाया जाए, इसके अतिरिक्त कैद के आधार का ऐसे उद्‌देश्यों से युक्तिमूलक सम्बन्ध था जिनकी प्राप्ति से अपीलकर्ता को रोका जाना था। [264] कैद के किसी आदेश के दुर्भावपूर्ण होने का प्रश्न के बारे में यह असंगत है कि अपीलकर्ता की गतिविधियों (कार्यकलापों) को सम्बन्धित प्राधिकारियों के द्वारा पसंद या नापसंद किया गया। केवल इस पर विचार किया जाना है कि क्या कैद का आदेश कैद आदेश [265] में प्रविष्ट प्रयोजन को छोड़कर किसी अन्य अव्यक्त प्रयोजन के लिए दिया गया।

उपर्युक्त परिचर्चा से यह एकदम स्पष्ट है कि 'बंदियों' के लिए किसी कैद आदेश को दुर्भावपूर्ण सिद्ध करना अत्यंत कठिन हो गया है। इसके लिए जो कारण दिए जा सकते हैं वे इस प्रकार हैं :

1. कार्यपालक प्राधिकारियों तथा कैदकर्ता प्राधिकारियों की व्यक्तिपरक संतुष्टि तथा विवेकाधिकार।
2. न्यायालयों का अहस्तक्षेप, जब कार्यविधिक प्राविधिकताओं की पूर्ति की जाती हो।
3. कैद के आदेश का सामान्य प्रपत्र।
4. ऐसी संपूर्ण परिस्थितियों को प्रविष्टि न करने या वर्णित न करने के संबंध में कैद कर्ता प्राधिकारियों

का स्वविवेक, जिसकी वजह से कैद आदेश पारित किया गया।

5. अनुच्छेद 22 की संकुचित व्याख्या।

(ख) दुर्भाव सिद्ध किया जाना :-

इसमें संदेह नहीं कि उपर्युक्त कारणों से कैदियों के लिए प्राधिकारियों के दुर्भावपूर्ण कार्य को सिद्ध करना टेढ़ी खीर है। किंतु बहुत से मामलों में दुर्भाव सिद्ध किया गया है।

रामकृष्ण [266] के मामले में कैदी को दिए गए आदेश में कहा गया :

'जनसंघ', 'हिन्द् महासभा' और 'राम राज्य परिषद' ने विधि की अवज्ञा, जिसका सम्बन्ध जनव्यवस्था बनाए रखने के प्रति हिंसा और खतरे में था, के लिए कश्मीर के प्रजा परिषद आंदोलन से सहानुभूति में एक गैरकानूनी अभियान चलाया है। [267]

याचिकाकर्ता की ओर से यह आरोपित किया गया कि प्राधिकारियों ने अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं किया और वे यह निष्कर्ष नहीं निकाल सके कि किसी ऐसे अनाड़ी (अनभिज्ञ) के लिए कैद के आधारों के बारे में ऐसे अस्पष्ट आदेश से उसके अभिप्राय को समझना न केवल कठिन है, बल्कि असंभव भी है, जिसे दस्तावेजों की व्याख्या करने का अनुभव नहीं। अत: कैद कर्ता प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह या तो आदेश की व्याख्या के लिए विधिक सहायता की व्यवस्था करे या वह समुचित संदेहों के परे अर्थ स्पष्ट करें। यदि कैद कर्ता प्राधिकारियों के द्वारा आदेश पारित करते समय इन औपचारिकताओं का अनुसरण या अनुपालन न किया जाए, तो कैद के आदेश को अस्पष्ट रूप में माना जाएगा क्योंकि वह अपीलकर्ता के लिए उसे अपने मामले की पैरवी करने में कठिनाइयाँ पैदा करेगा और इस अस्पष्टता पर कैदी को रिहा होने का हक मिल जाएगा।

पुष्कर [268] के मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह निर्णय दिया गया कि इस संवैधानिक आवश्यकता का अनुपालन के आधारों को अस्पष्ट नहीं होना चाहिए, सख्ती से किया जाए। कैद आदेश में विभिन्न आधारों में से किसी एक आधार के अस्पष्ट होने से वह विधि के द्वारा स्थापित कार्यविधि के अनुसार नहीं माना जाएगा और इसलिए वह अवैध है।[269]

मगन गोप [270] के मामले में याचिकाकर्ता को इस आधार पर बंदी बनाया गया कि जब वह किसी खास दिन तस्करी के काम में संलग्न था, उसने अपने सहकर्मी के साथ लगभग अपराह्न् 7 बजे

होमगार्ड के एक दल पर हमला किया। न्यायालय ने मामले को संगत 'विधि और व्यवस्था' से न कि 'जनव्यवस्था' से संबंधित ठहराकर निम्नलिखित कारणों से रद्द कर दिया :

यह कि पूर्णयता ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि दुर्घटना [271] के परिणामस्वरूप इलाके के अंदर कोई सनसनी पैदा हुई। यह उल्लेख नहीं किया गया कि बंदी और उसके सहकर्मी किन्हीं खतरनाक शस्त्रों से सज्जित थे। इसके अतिरिक्त यह घटना एक ओर बंदी उसके सहकर्मी और दूसरी ओर होमगार्ड तक परिसीमित थी।[272]

एक सामान्य पूर्व तर्क के रूप में न्यायालय ने यह भी कहा कि प्रथमदृष्टया देश में एक राज्य से दूसरे राज्य के बीच ऐसा कोई संबंध नहीं था जो अनिवार्य रूप में एक गोपनीय कार्य और लोक व्यवस्था का अनुरक्षण था जिसमें प्रचालन शब्द की विशेषता 'लोक' (जन) शब्द दर्शाता है। किंतु हिंसा सहित तस्करी के मामले हो सकते हैं, जो जनशांति को प्रभावित करते हो, ऐसे मामले 'लोकव्यवस्था' [273] से संबंधित हो सकते हैं।

दुलालराय [274] के मामले में याचिकाकर्ता ने कैद के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी कि उस समय वह तथाकथित चोरी के दो मामलों के संबंध में एक विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में था। जेल में नजरबंदी के आधारों का संबंध सर्वथा चोरी के दो मामलों से था और याचिकाकर्ता को आसानी से सामान्य दंड विधि के तहत अभियोजित किया जा सकता था और निवारक नजरबंदी की कोई आवश्यकता नहीं थी। आगे यह दावा किया गया कि कैद का आदेश क्षेत्राधिकार के रंजित अभ्यास के रूप में सामान्य दंड विधि की प्रक्रिया को बिगड़ने के लिए पारित किया गया और इसलिए वह अवैध था।

उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह सत्य है कि कैद के आधारों का संबंध पूर्णतः चोरी की दो निर्दिष्ट घटनाओं से था, जिनके लिए याचिकाकर्ता को दंड विधि के तहत आसानी से अभियोजित किया जा सकता था। किसी स्पष्टीकरण या स्पष्ट कारण, कि मूल अपराधों के लिए उसको क्यों अभियोजित किया गया, के अभाव में इसके फलस्वरूप उसकी रिहाई हुई और यह कि निवारक नजरबंदी आदेश का कारण आवश्यक समझा गया और इस तथ्य के वाबजूद कि अपीलकर्ता जेल अभिरक्षा में था और उसे ऐसी गतिविधि में लिप्त होने की स्वतंत्रता नहीं थी। अतः आदेश यांत्रिक रूप में और क्षेत्राधिकार [275] के रंजित अभ्यास के रूप में पारित किया गया है।

यह उल्लेख किया जाता है कि बंदी को अनुच्छेद 22 खंड 4 से 7 के अधीन कुछ सीमित संरक्षण प्रदान किए गए हैं किंतु उच्चतम न्यायालय को जब भी यह पता लगा कि प्राधिकारियों के द्वारा अपनायी गई कार्यविधि निर्धारित कार्यविधि तथा अनुच्छेद 22 में यथा समाविष्ट संरक्षणों के अनुसार नहीं थी, कैदकर्ता प्राधिकारियों के मनमाने या अनुचित विवेकाधिकारों के विरूद्ध बंदी को बचाने के लाभदायक प्रयास किए।

(4) न्यायिक प्रवृत्तियाँ तथा बंदी :-

(क) आपातकाल तथा निवारक नजरबंदी :

सन् 1975 में, भारत के राष्ट्रपति ने एक घोर आपातकाल घोषित किया और अनुच्छेद 14, 21 और 22 में यथा प्रविष्ट अनेक मूल अधिकारों को भी निलंबित किया। बहुत से उच्च न्यायालयों में बहुत सारे याचिकाकर्ताओं ने बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए याचिकाएँ दायर की।

एस शुक्ला [276] के मामले में राज्य ने इस आधार पर अनुरक्षणीयता के बारे में प्रारंभिक आपत्ति उठाई कि राष्ट्रपति के आदेश के मद्देनजर कोई भी व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट के लिए याचिका दायर नहीं कर सकता क्योंकि उनके मूल अधिकार अस्थगित किए गए हैं। किंतु उच्च न्यायालय ने एक या दूसरे कारण से प्रारंभिक आपत्ति अस्वीकृत कर दी।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष बंदियों, जिन्हें निवारक रूप में बंदी बनाया गया था, के द्वारा दावा किया गया कि अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एकमात्र कोष नहीं है। यह दलील दी गई कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता सकारात्मक अधिकारों का समूह नहीं है बल्कि केवल एक नकरात्मक संकल्पना है, जो स्वतंत्र क्रिया की सूचक है और वह कोई अधिकार प्रदान नहीं करती और इसलिए अनुच्छेद 359 (1) के क्षेत्र के बाहर है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने बहुमत के फैसले में इन दावों को अस्वीकार कर दिया और निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 जीवन तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकारों का एकमात्र कोष है। किन्तु न्यायमूर्ति एच.आर. खन्ना ने अपने अल्पमत अभिमत में निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का एकमात्र कोष नहीं है। संविधान में अनुच्छेद 21 के अभाव में भी राज्य के पास विधि के प्राधिकार के बिना किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत

स्वतंत्रता से वंचित करने की कोई शक्ति नहीं है। प्रत्येक समय समाज[277] में विधि के नियम का मूल आधार तत्व और मूल धारणा वही है।

(ख) बंदियों और विचाराधीन अभियुक्तों को सिद्धदोष कैदियों के साथ रखने की पद्धति :-

सुनील बत्रा[278] के मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि जेल में बंदियों तथा विचाराधीन अभियुक्तों को सिद्धदोष कैदियों के साथ रखने की पद्धति न केवल अनुच्छेद 19 में औचित्य (यथातथ्यता) की कसौटी का उल्लंघन करती हैं बल्कि अनुच्छेद 21 की 'न्योचित तथा युक्तियुक्त कसौटी' पर खरी नहीं उतरती।

बंदियों और विचाराधीन अभियुक्तों को आपराधिक विधिशास्त्र के नियमों के विरूद्ध कारागृह में रखा जाता है क्योंकि उनके विरूद्ध दोष सिद्ध नहीं हुआ। चूंकि उन्हें एक निवारक उपाय के रूप में बंदी बनाया जाता है और इसलिए सिद्धदोष अपराधियों की तुलना में उन्हें विशेष हैसियत दिये जाने का लाभ है।

(ग) सामान्य विधि तथा निवारक नजरबंदी :-

श्री लाल साब [279] के मामले में किसी रेलवे संपत्ति के तथाकथित गैर कानूनी कब्जे के लिए आन्तरिक सुरक्षा अनुरक्षण अधिनियम, 1975 के तहत याचिकाकर्ता को कैद का आदेश जारी किया गया। याचिकाकर्ता की ओर से यह दलील दी गई कि चूंकि उसे साधारण दंड विधि के अधीन आसानी से अभियोजित किया जा सकता है, अत: निवारक नजरबंदी की कोई आवश्यकता नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने अपीलकर्ता के दावे को स्वीकार किया तथा निर्धारित किया कि नजरबंदी अवैध थी। उच्चतम न्यायालय के द्वारा आगे यह प्रेक्षण दिया गया कि यदि इस तरह का कोई प्रत्यक्ष कारण न हो कि कार्यपालक प्राधिकारी ने सामान्य दंड कार्यविधि के विरूद्ध निवारक नजरबंदी के रूप में कार्यवाही का विशेष मार्ग क्यों चुना है, अस्तु बंदी निश्चित रूप से न्यायालय की सहानुभूति का हकदार है।[280]

(घ) वकील के द्वारा प्रतिनिधित्व किये जाने का अधिकार:-

बालचंद चौरसिया [281] के मामले में सरकार ने इस आधार पर बंदी के वकील के द्वारा दायर उसके प्रतिनिधित्व पर विचार करने से इंकार कर दिया कि उसे बंदी के द्वारा खुद दायर नहीं किया गया।

उच्चतम न्यायालय ने मामले पर व्यापक परिप्रेक्ष्य में विचार करने और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को लागू करने के पश्चात् निर्णय दिया कि अवर न्यायालय ने यह अभिप्राय निकालने में गलती की है कि अभ्यावेदन स्वयं बंदी के द्वारा तैयार नहीं किया गया। न्यायालय ने आगे निर्णय दिया कि जिन मामलों का संबंध व्यक्ति की स्वतंत्रता से है और उनका संबंध अत्याधिक संशोषित अधिकार से है, अभ्यावेदन को उदारतापूर्वक लिया जाए, न कि तकनीकी रूप में जिससे कि स्वतंत्रता की उस संकल्पना पर विपरीत प्रभाव न पड़े जिसकी संविधान के अनुच्छेद 21 में गारंटी दी गई है।[282] चूंकि अभ्यावेदन और वकील के द्वारा प्रतिनिधित्व किए जाने के बंदी के अधिकार पर सरकार के द्वारा विचार नहीं किया गया, अत: कैद का आदेश विकृत हो गया और बंदी रिहा किए जाने का हकदार है।[283]

नंदलाल [284] के मामले में कैदकर्ता प्राधिकारियों के द्वारा पारित कैद के आदेश को इस आधार पर चुनौती दी गई कि कार्यविधि बंदी के लिए अनुकूल नहीं थी। राज्य को विधिक सहायता की अनुमति देने तथा बंदी को ऐसी विधिक सहायता से इंकार करने में परामर्शदाता बोर्ड के द्वारा अपनायी गई कार्यविधि मनमानी, अनुचित तथा 'न्यायोचित विचारण' के सिद्धांतों के विरूद्ध थी, अत: उसने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन किया। [285]

(ङ) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:-

प्रभाकर पांडुरंग[286] के मामले में याचिकाकर्ता को निवारक नजरबंदी अधिनियम के तहत बंदी बनाया गया। उसने कारागृह में वैज्ञानिक महत्व की पुस्तक लिखी किन्तु कारागृह प्राधिकारियों ने प्रकाशन के लिए उसे पुस्तक भेजने की अनुमति नहीं दी। उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि बंदी को वे सभी स्वतंत्रताएँ उपभोग्य है जिनका उपभोग एक स्वतंत्र व्यक्ति कर सकता है, सिवाय उन स्वतंत्रताओं के जिनका उपयोग कैद की स्थितियों के कारण नहीं कर सकता।

फ्रांसिस कोरालार[287] मामले में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि बंदी को अपने वकील के द्वारा उचित समयावधियों पर साक्षात्कार लिए जाने का अधिकार है।

बंदियों के अधिकारों के बारे में यथार्थ स्थिति उच्चतम न्यायालय के द्वारा सम्पत प्रकाश [288] मामले में निर्धारित की गई, जिसमें उसने निर्णय दिया : कि निवारक रूप में कैद किए गए व्यक्ति पर प्रतिबंध कैद की प्रभावकता सहित संगत रूप में अल्पमत होने चाहिए।[289]

¤ ¤ ¤

टिप्पणियाँ और निर्देश :

1. भारतीय संविधान
2. वही
3. वही
4. किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं के विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।
5. महाराष्ट्र राज्य बनाम प्रभाकर पांडुरंग, ए आई आर 1966 एस. सी. 424, देखें व्यतिक्रम, अध्याय IV एन 113.
6. सुनील बत्रा प्रकरण, ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1678 किशोर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई. आर. 1981 एस.सी. 625, देखें व्यतिक्रम अध्याय IV एन. एन. 206-49.
7. मेनका गांधी बनाम भारत संघ ए.आई. आर. 1978 एस.सी. 597
8. निवारक नजरबंदी के लिए उपबन्धित कोई विधि दो महीनों से अधिक की अवधि के लिए किसी व्यक्ति की नजरबंदी प्राधिकृत नहीं करेगी यदि उपयुक्त उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश की सिफारिशों के अनुसार गठित सलाहकारी बोर्ड ने दो महीनों की उक्त अवधि की समाप्ति से पूर्व सूचित किया हो कि उसकी राय में ऐसी नजरबंदी के लिए पर्याप्त कारण हैं: बशर्ते कि सलाहकारी बोर्ड में एक अध्यक्ष और कम से कम दो अन्य सदस्य हों और अध्यक्ष उपयुक्त उच्च न्यायालय का सेवारत न्यायधीश हो और अन्य सदस्य आगे यह भी उपबंधित है कि इस खंड में ऐसा कुछ नहीं है खंड(7) के उप-खंड(क) के अधीन संसद के द्वारा बनाई गई किसी विधि के द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि से परे किसी व्यक्ति की नजरबंदी का प्राधिकार दिया जाए।
9. रामकृष्ण बनाम दिल्ली राज्य, ए.आई आर 1953 एस.सी. 318 पुष्कर मुकर्जी बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य(1969) एस.सी.आर 635
10. खंड(5) में ऐसा कुछ नहीं है, जो किसी ऐसे आदेश को देने वाले प्राधिकारी से तथ्य प्रकट करने की मांग करे जो ऐसा प्राधिकारी प्रकट करने में लोकहित के विरुद्ध समझे, जैसा कि उस खंड में निर्दिष्ट है।
11. संसद विधि के द्वारा निर्धारित कर सकती है (क) निवारक नजरबंदी के लिए उपबंन्धित किसी

विधि के अधीन जिस अधिकतम अवधि के लिए कोई व्यक्ति मामलों किसी वर्ग या वर्गों के अंतर्गत रखा जाए, और (ख) खंड (4) के तहत किसी जाँच में सलाहकारी बोर्ड के द्वारा अपनायी जाने वाली कार्यविधि।

12. धारा 4, कारागृह अधिनियम, 1854
13. देखें व्यतिक्रम, परिशिष्ट ख
14. वही
15. कारागृह अधिनियम, 1854
16. वही, एस 15, देखें व्यतिक्रम, परिशिष्ट ख
17. वही, एस. 24(2)
18. वही, एस. 27
19. वही, एस 27(1)
20. वही, एस 27(2)
21. वही, एस 27(3)
22. वही, एस 27(4)
23. वही, एस 24(1) और 24(3), देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख
24. वही, एस. 30(2) सुनील बत्रा मामले में असंवैधानिक घोषित, ए.आई. आर. 1978 एस.सी. 1775
25. पंजाब पुलिस नियमावली, 1934 देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट घ
26. वही, देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट घ
27. देशद्रोह
28. वर्गों के बीच शत्रुता को प्रोत्साहित करना
29. अति, एन 25, देखें व्यतिक्रम, परिशिष्ट घ
30. नियम 26.21 देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट घ
31. वही
32. वही, नियम 26.22(2) देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट घ
33. अति, एन 15 एस. 31 देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

34. वही

35. वही एस 34 (1) और, ण(2) देखें व्यतिक्रम परिश्षिट ख

36. वही एस 35 (1)

37. वही एस 35 (2) देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

38. वही एस 35 (3)

39. वही एस 45

40. वही एस 46 (3)

41. वही एस 46 (8)

42. वही एस 46 (9)

43. वही एस 47 (2)

44. वही एस 48 (1) देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

45. देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

46. वही

47. अति, एन 15 एस, 50 देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

48. वही एस. 52

49. अति, एन 25 आर 26.27(1)देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट घ

50. वही, नियम 26.27(3)

51. पंजाब पुलिस नियमावली, 1934

52. नियम 559 क, पंजाब कारागृह नियम-पुस्तक

53. वही नियम 550

54. फ्रांसिस कारालाय बनाम संघ शासित राज्य दिल्ली, ए आई आर 1981 सर्वोच्च न्यायालय 746 सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा यह निर्धारित किया गया कि नजरबंदियों को जहाँ तक भेंट करने तथा साक्षात्कार दिए जाने का सम्बन्ध है, उच्चतर स्थिति में समझा जाए।

55. कारागृह अधिनियम, 1894 देखें व्यतिक्रम परिशिष्ट ख

56. वही, एस 31क (1)

57. वही एस 31क (3)

58. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951, व्यतिक्रम देखें परिशिष्ट ग

59. धर्म, संप्रदाय जन्म स्थल, निवास स्थान, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता बनाए रखने के हानि पहुँचाने वाले कार्य करने के लिए।

60. घूस के लिए

61. चुनाव में अनुचित प्रभाव या प्रतिरूपण के लिए

62. जन शरारत में सहायक कथनों के लिए उपधारा (1) के अंतर्गत ऐसे कथन आते हैं जो वर्गों के बीच शत्रुता, नफरत या बैर का सृजन करते हैं या उन्हें प्रोत्साहित करते हैं उपधारा (3) उसी अपराध को परिभाषित करती है जैसा कि उप-धारा (2) में है, बशर्ते कि अपराध पूजा-स्थल पर किया जाए

63. चुनाव के संबंध में वर्गों के बीच शत्रुता को प्रोत्साहित करना।

64. मतदान केन्द्र से मत-पत्र हटाना।

65. जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 136 अनेक अपराधों को परिभाषित करती है। किन्तु ये असम्बद्ध हैं, परन्तु उपधारा 2(क) एक ऐसे चुनाव सम्बंधी अपराध को निर्धारित करती है, जो किसी व्यक्ति को अनर्ह बनाती है वह उपबंधित करती है।

    यदि वह किसी मतदान केन्द्र पर निर्वाचन अधिकारी या सहायक निर्वाचन अधिकारी या पीठासीन अधिकारी अथवा कोई अन्य अधिकारी या चुनाव के संबंध में शासकीय कर्त्तव्य पर नियुक्त लिपिक हो तो उसे ऐसी अवधि के लिए कारावास की सजा से दण्डित किया जा सकता है जो दो वर्ष की या जुर्माने की या दोनों सहित हो सकती हैं।

66. धारा 8(2), जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951

67. वही

68. वही

69. अति एन 60

70. अति एन 61

71. अति एन 63

72. अति एन 64

73. अति एन 65

74. पावेल बनाम अलवामा 287 संयुक्त राज्य 545 बेट बनाम ब्रिडी, 316 संयुक्त राज्य 455

75. गाइडन बनाम वेनराइट, 372 संयुक्त राज्य 335

76. ईव पेल बनाम आर. के. प्रोंकन्लर, पृष्ठ 417 संयुक्त राज्य 817 (1974)

77. वही, पृष्ठ 827

78. चार्ल्स बुल्फ बनाम मेक्डेनल, 41 एल संस्करण 2 घ 935 (1974)

79. वही पृष्ठ 951

80. लूसियाना पूर्व रैल फ्रांसिस बनाम रेस्वेबर, 329 संयुक्त राज्य 459 (1947)

81. बुल्फ बनाम कलोरेड, 338 संयुक्त राज्य 25 (1949)

82. वही, पृष्ठ 27

83. हर्टो बनाम फिन्नी, 98 एस. सी टी 2575 (1978)

84. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए आई आर 1978 उच्चतम न्यायालय 597

85. वही, पृष्ठ 660

86. ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य, ए आई आर 1950 उच्चतम न्यायालय 27

87. सुनील वत्रा (2 में रिर्पोटित) बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1980, उच्चतम न्यायालय 1579

88. दी ट्रिब्यून, प्रताड़ित कैदी, अप्रैल 3, 1984

89. वही

90. वही

91. वही

92. ऊपर, एन 11

93. डी. बी. एम. पटनायक बनाम आंध्रप्रदेश राज्य, ए आईआर 1974 उच्चतम न्यायालय 2092

94. वही, पृष्ठ 2094

95. वही, पृष्ठ 2094

96. ऊपर, एन 14

97. कैदियों के व्यवहार की मानक न्यूनतम नियमावली (1955)

98. वही, नियम 61

99. ऊपर, एन 14, पृष्ठ 1580

100. वही, पृष्ठ 1596

101. प्रेमशंकर शुक्ला बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1980, उच्चतम न्यायालय 1535

102. पैरा 26.22

103. ऊपर,एन 28, पी पी 1535-36

104. वही, पी 1535

105. वही, पी 1535

106. मानवाधिकारों की सर्वभौम घोषणा, 1948

107. सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन

108. ऊपर, एन 28, पी 1541

109. वही, पी 1541

110. वही, पी 1541

111. वही, पी 1542

112. पैरा 26.21 ए और 26.22 , परिशिष्ट घ (डी)

113. ऊपर एन 28 पी 1544

114. सुनील बत्रा (1) बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1978 उच्चतम न्यायालय 1678 सोभराज याचिका की सुनवाई संयुक्त रूप में सुनील बत्रा की याचिका के साथ की गई किंतु वाद अलग-अलग थे।

115. परिशिष्ट ख

116. ऊपर, एन 41, पी 1678

117. ऊपर, एन एन 34 तथा 35

118. ऊपर, एन 41, पी 1678

119. वही, पी 1675

120. वही, पी पी 1676-77

121. वही, पी 1676

122. किशोर सिंह रविन्दर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, ए आई आर 1981, उच्चतम न्यायालय 625

123. वही, पी 625

124. वही, पी 626

125. जगमोहन सिंह बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, ए आई आर 1973 उच्चतम न्यायालय 947

126. वही, पी पी 947-48

127. वही, पी 948

128. राजेन्द्र प्रसाद बनाम उत्तरप्रदेश राज्य ए आई आर 1979 उच्चतम न्यायालय 916

129. वही, पी पी 960-61

130. वही, पी 960

131. वही, पी 957

132. बचनसिंह बनाम पंजाब राज्य, ए आई आर 1980, उच्चतम न्यायालय 898 अमरीकी स्थिति के लिए विथरस्पून मामला 391 देखें। संयुक्त राज्य 510

133. वही, पी 901

134. वही, पी 935

135. वही, पी 920

136. ऊपर, एन एन 59 और 55

137. दीना बनाम भारत संघ,ए आई आर 1983 उच्चतम न्यायालय 1155

138. वही, पी 1160

139. वही, पी 1157

140. वही, पी पी 1161-62

141. ऊपर एन 13

142. वही, पी 28

143. वही, पीपी 28-29

144. वही

145. ऊपर एन 11

146. ऊपर एन 13

147. वही, पी पी 676-77

148. वही, पी 660

149. बाबूसिंह बनाम उत्तरप्रदेश राज्य (1978 2 एस सी आर 777)

150. वही, पी 781 न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के द्वारा निर्दिष्ट

151. ऊपर एन 76

152. वही, पीपी 798-79

153. एच. एम. हॉसकॉट बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए आई आर 1978 उच्चतम न्यायालय 1548, अमेरिका स्थिति के लिए गाइडियन मामला देखें , 372 संयुक्त राज्य 335 ऊपर अध्याय 2, एन 53

154. वही, पी 1549

155. विधिक कार्य अधीक्षक, पश्चिमी बंगाल बनाम भौमिक ए आई आर 1981, उच्चतम न्यायालय 917

156. जे. एन. पांडे, भारतीय संविधान 148-49(1982)

157. आरा खातून बनाम गृहसचिव, बिहार, ए आई आर 1979 उच्चतम न्यायालय 1360, अमेरिका स्थिति के लिए देखें, पीटर एच क्लोपफर मामला 18 एल ई डी 2 डी [1] ऊपर अध्याय(2) एन 75

158. ऊपर एन 83, पी 148

159. ऊपर एन 11

160. ऊपर एन 83 पी 148

161. ऊपर एन 14

162. वही, पी 1595

163. ऊपर एन 28

164. ऊपर एन 49

165. ऊपर एन 84

166. जगन्नाथ नायडू बनाम मद्रास राज्य, अक्टूबर, 1983 (इंडिया टुडे, एंडिंग दी लांग बाल्ट, अक्टूबर, 1983)

167. वही

168. कारागृह में बलात्कार, सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1980 उच्चतम न्यायालय मामले में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर द्वारा निर्दिष्ट।

169. वही, पी 1604

170. ऊपर एन 51

171. ऊपर एन 14, पी 1579

172. रूदल शाह बनाम बिहार राज्य, ए आई आर 1983 उच्चतम न्यायालय 1086

173. डॉ0 एन. आर. माधव मेनन उच्चतम न्यायालय का भेदन निर्णय दी हिस्दुस्तान टाइम्स, नंबम्बर 10, 1983

174. कस्तूरीलाल बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, ए आई आर 1965 S.C. 1039

175. ऊपर एन 100

176. ऊपर एन 100

177. वही

178. गेटेल, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थाट

179. वही, पी 67-68

180. ऊपर एन 11, पी 619

181. खड्गसिंह बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, ए आई आर 1963उच्चतम न्यायालय 1295

182. अनुच्छेद 1

183. अनुच्छेद 6

184. डी. डी. बासु, कमेंटरी ऑन कान्सि ट्यूशनल ला (खंड डी), पी 129

185. महाराष्ट्र राज्य बनाम पी. पांडुरंग सांजगिरि, ए आई आर 1966, उच्चतम न्यायालय 424

186. वही, पी 425

187. ऊपर एन 13

188. ऊपर एन 11

189. वही, पी 611

190. वही, पी पी 610-11

191. वही, पी 600

192. श्रीमति प्रभा दत्त बनाम भारत संघ, ए आई आर 1982, उच्चतम न्यायालय 6

193. वही, पी 7

194. टॉकक्वेविल- डिमोक्रेसी इन अमेरिका (खंड 1) 221

195. एवान बनाम न्यूटन, 15 एन खंड 2 डी 510

196. वही, पी 514

197. मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, अनुच्छेद 21

198. देखें नीचे, परिशिष्ट ग

199. परिशिष्ट ग देखें

200. सुनील बत्रा मामले (1) में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के द्वारा उद्‌धृत, देखें ऊपर, एन 41, पी 1713

201. वही, पी 1713

202. फ्रांसिस कॉरालाइ मुल्लिन बनाम संघशासित प्रदेश, दिल्ली ए आई आर, 1981 उच्चतम न्यायालय 746

203. नियम 559 क, पंजाब में कारागृहों के अधीक्षण तथा प्रबंधन के लिए नियम पुस्तक

204. वही, नियम 550

205. ऊपर एन 130, पी 774

206. वही, पी 747

207. हारिंग्टन बेट्स, धार्मिक स्वतंत्रता, पी पी 343-44

208. जगदीश स्वरूप द्वारा उद्‌धृत, मानवाधिकार तथा मूल स्वतंत्रताएं, पी 327

209. क्रुज बनाम बेटो, 405 संयुक्त राज्य 319 (1972)

210. वही, पी 319

211. कैदियों से व्यवहार के लिए मानक न्यूनतम नियमावली (1955), नियम 41 (1)

212. वही, नियम 42

213. संविधान सभा बहसें (खंड 3), पी 428

214. न्यायमूर्ति, अमेरिका उच्चतम न्यायालय

215. ग्रेनविले आस्टिन, भारतीय संविधान-राष्ट्र की आधारशिला, 102-103 (1966)

216. ऊपर एन 141 (खंड 7) पी पी 1000- 1001

217. वही, पी 853

218. भारतीय संविधान, सातवी अनुसूची, प्रविष्टि 9, सूची 3

219. वही, प्रविष्टि 9, सूची 1

220. वही, प्रविष्टि 1, सूची 1

221. हॉस मुलर बनाम राष्ट्रपति, जेल कलकत्ता, ए आई आर 1955 उच्चतम न्यायालय 367

222. वही, पी 372

223. ऊपर एन 146, प्रविष्टि 9, सूची 1

224. ऊपर एन 13

225. भारतीय संविधान, अनुच्छेद 19, 21 और 22

226. ऊपर एन 152, पी 93

227. वही, पी 28

228. वही, पी 28

229. वही, पी 30

230. डी. डी. वासु वही, भारतीय संविधान पर मामले, 71 (1950-52)

231. वही

232. वही, पी 102

233. हाल ही के उच्चतम न्यायालय के कुछ निर्णयों का तुलनात्मक दृष्टिकोण इंडियन ला रिव्यू, खंड 1, सं. -1, पी 1-12

234. ऊपर एन 13

235. नीचे, एन एन 164-65

236. बंबई राज्य बनाम आत्माराम, ए आई आर 1951 उच्चतम न्यायालय 157

237. वही, पी 158

238. वही, पी 158

239. रामसिंह बनाम दिल्ली राज्य, ए आई आर 1951 उच्चतम न्यायालय 270

240. वही, पी 273

241. वही, पी 278

242. कृष्णन बनाम मद्रास राज्य, ए आई आर 1951 उच्चतम न्यायालय 301

243. माखनसिंह बनाम पंजाब राज्य, ए आई आर 1952, उच्चतम न्यायालय 91

244. ऊपर एन 13

245. कोचनी बनाम मद्रास राज्य, ए आई आर, 1959, उच्चतम न्यायालय 725

246. खड़गसिंह बनाम उत्तरप्रदेश राज्य, ए आई आर, 1963, उच्चतम न्यायालय 1295

247. ऊपर एन 13

248. ऊपर एन 174, पी 1300

249. वही, पी 1306

250. वही

251. वही, पी 1303

252. ऊपर एन 11

253. रामेश्वर बनाम डी. एम ए, ए आई आर 1964 उच्चतम न्यायालय 334

254. निरंजन बनाम पंजाब राज्य, (1952) एस. सी. आर. 18

255. वही, पी 106

256. भीमसेन बनाम पंजाब राज्य (1952) एस. सी. आर. 18

257. वही, पी 18-19

258. आशुतोष बनाम दिल्ली राज्य, ए आई आर 1953,उच्चतम न्यायालय 451

259. वही, पी 452

260. डिसूजा बनाम बंबई राज्य (1956) ए. सी. आर. 382

261. वही, पी 382

262. पूरनलाल लखनलाल बनाम भारत संघ, ए आई आर 1958, उच्चतम न्यायालय 163

263. वही, पी 164

264. वही, पी 172

265. वही

266. डाँ0 रामकृष्ण भारद्वाज बनाम दिल्ली राज्य, ए आई आर 1953, उच्चतम न्यायालय 318

267. वही, पी 319

268. पुष्कर मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए आई आर 1970, उच्चतम न्यायालय 852

269. वही, पी 859

270. मगन गोप बनाम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए आई आर 1975, उच्चतम न्यायालय 953

271. वही, पी 956

272. वही

273. वही

274. दुलाल राय बनाम डी एम तथा अन्य, ए आई आर 1975, उच्चतम न्यायालय 1508

275. वही, पी 1511

276. ए. डी. एम. जबलपुर बनाम एस. शुक्ला, ए आई आर 1176, उच्चतम न्यायालय 1207

277. वही, पी पी 1252-53

278. ऊपर एन 41, मामला मुख्यत: विचाराधीनों की स्थितियों से संबंधित था, किन्तु उच्चतम न्यायालय ने नजरबंद के प्रश्न की चर्चा की।

279. श्रीलालशॉ बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, ए आई आर 1978, उच्चतम न्यायालय 297

280. वही, पी 394

281. बालचंद चौरसिया बनाम भारत संघ, ए आई आर 1978, उच्चतम न्यायालय 297

282. वही, पी पी 287-98

283. वही

284. नंदलाल बनाम पंजाब राज्य, ए आई आर 1981 उच्चतम न्यायालय 2041 , इस मामले में अपीलकर्ता के द्वारा अपने ऐसे बेटे की रिहाई के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी करने के लिए याचिका प्रस्तुत की गई, जिसे चोर बाजारी के प्रतिबंध तथा अनिवार्य वस्तु अनुरक्षण अधिनियम, 1980 की धारा 3 के तहत नजरबंद किया गया।

285. वही, पी पी 2043-44

286. ऊपर एन 113

287. ऊपर एन 130

288. संपत प्रकाश बनाम जम्मू कश्मीर (1969) 3 एस सी आर 574

289. ऊपर एन 130, पी 524 (न्यायमूर्ति भगवती द्वारा उद्धृत)

⌑ ⌑ ⌑

अध्याय 4

खुले बंदीगृह या खुली जेलों की अवधारणा एवं उपलब्धियाँ

खुले बंदीगृह या खुली जेलों की अवधारणा एवं उपलब्धियाँ

कैद की वर्तमान अवधारणा व्यक्तिगत उपचार और सामाजिक पुनर्वास की उन वैज्ञानिक विधियों पर आधारित है जो व्यक्तित्व विशेषताओं और सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। [1] अपराधी को बीमार व्यक्ति समझना चाहिए तथा उसका उपचार योग्य व्यक्तियों के द्वारा किया जाना चाहिए। खुली जेलों की स्थापना इन्हीं उद्देश्यों पर आधारित है। खुली जेलों की अवधारणा का जन्म 19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में हुआ। इन जेलों में व्यापक उत्तरवीक्षा द्वारा बंदियों को बंदीगृहों से रिहा होने के बाद में पुर्नवासित होने के लिए तैयार किया जाता है।

खुली जेलों की निश्चित परिभाषा नहीं दी जा सकी है। इसको परिभाषित करने में विद्वानों में मतभेद है, कुछ इन्हें बंदियों के 'खुले शिविर' कहते हैं जबकि कुछ विद्वान इन्हें 'पैरोल कैम्प' कहा जाना उचित समझते हैं। सन् 1955 में 'अपराध निवारण तथा अपराधियों के उपचार' पर आधारित अधिवेशन में खुली जेलों को इस प्रकार परिभाषित किया गया-

''खुली जेल की यह विशेषता होती है कि उसमें बंदियों को जेल से भाग जाने से रोकने के लिए कोई दीवाल, सीकचें ताले और हथियार बंद दस्ते इत्यादि नहीं होते, बंदियों को स्वच्छन्द जीवन बिताने का अवसर प्रदान किया जाता है ताकि वे अपने समूह में स्वयं का उत्तरदायित्व समझ सकें तथा आत्मानुशासन की ओर अग्रसर हों।''[2]

सन् 1973 में सुधारात्मक सेवाओं के केन्द्रीय ब्यूरों ने खुली जेलों को इस प्रकार परिभाषित किया है-

''अधिक सुरक्षा वाली, बिना दीवार वाली जेल को आधी खुली जेल कहा जाता है, जिसमें उन बंदियों को रखा जाता है जो प्रारंभ में न्यूनतम सुरक्षा के लिए पूरी तरह से योग्य नहीं माने जाते, किन्तु जिनमें नियंत्रण खुली जेल की तुलना में अधिक से अधिक उदार रखा जाता है।[3] खुली जेल एक स्वतंत्र इकाई के रूप में रहती है या किसी ऐसी संस्था से संबंधित कर दी जाती है जिनमें बंदियों को दी जाने वाली सुविधाओं पर आधारित प्रगतिशील व्यवस्था लागू हो।''[4]

इस प्रकार खुले कारागार या शिविर ऐसे प्राचीर विहीन कारागृह हैं जहां पर बंदियों पर न्यूनतम निगरानी रखी जाती है तथा बंदी रिहा होने के बाद स्वयं को समाज में पुर्नस्थापित करने में सरलता

महसूस करते हैं।

खुली जेलों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

19 वीं शताब्दी में अमेरिका में 'प्रिजन फामर्स' के रूप में बंदियों के खुले शिविर अस्तित्व में थे। ऐसे बंदी जिनकी बंदीगृहों से रिहा होने का वक्त करीब होता था सामान्यता कारागृह के जंगली क्षेत्र में मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए भेज दिया जाता था, किन्तु ये खुली जेल वर्तमान समय की खुली जेलों से भिन्न थीं, क्योंकि ये स्वच्छन्द जेल न होकर हकीकत में 'दास शिविर' थीं, जिनमें बंदियों को कड़े पहरे और निगरानी में रखकर उनसे कार्य करवाया जाता था। लेकिन इन शिविरों से यह अनुभव प्राप्त हुआ कि यदि बंदियों पर विश्वास रखते हुये उन्हें बन्धक विहीन उत्पादक कार्य में लगाया जाये, तो वे भागने का प्रयत्न नहीं करेगें। हालांकि खुले शिविरों में उचित निगरानी के अभाव में कैदियों के भागने की संभावना अधिक थी लेकिन इन शिविरों से भागने वाले बंदियों की संख्या न्यून होने के कारण कालान्तर में खुले शिविरों या जेलों को अमेरिकन कारागृह व्यवस्था का अभिन्न अंग बना दिया गया। खुली जेलों की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि या विशेषता यह थी कि इन जेलों में बंदियों में स्वावलम्बन तथा आत्मविश्वास की भावना जागृत होती थी जो उनके पुर्नवास के लिए आवश्यक थी।

खुली जेलों को कारागारों में कैदियों की भीड़ कम करने का एक अच्छा विकल्प माना जाता है, वर्तमान समय में खुली जेलों को अधिक से अधिक बढ़ावा दिये जाने की आवश्यकता है क्योंकि इस समय भारत के सभी जेलों में बंदियों की संख्या क्षमता से बहुत अधिक है। खुली जेलों से जहां राज्य सरकारों का बंदियों पर खर्च कम हो गया वहीं इन बंदियों को श्रम कार्य पर लगाने के कारण सरकार का श्रमिकों को देय पारिश्रमिक का खर्च भी बचने लगा। प्रारंभ में प्रयोग के तौर पर कुछ चुने हुए ऐसे बंदियों को ही खुली जेलों में रखा जाता था जिनके भागने की संभावना न्यून होती थी, लेकिन समय के साथ-साथ इस व्यवस्था को व्यापकस्वरूप दिया गया।

निः संदेह खुली जेलों की उत्पत्ति से कारागृहों के इतिहास में एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। 19 वीं शताब्दी के आखिर में स्विट्जरलैण्ड में वीरसविल संस्थान नाम से एक अर्धखुले कारागृह को स्थापित किया गया। ब्रिटेन में खुली जेलों की वास्तविक शुरूआत 1930 से हुई।

अमेरिका में खुले कारागृह-

अमेरिका में सन् 1973 में गरीब केलिफोर्निया तथा मेजेच्यूसेट्स राज्यों में बंदियों के लिए कई खुली जेलें कार्यरत थीं। लेकिन केलिफोर्निया राज्य में खुली जेलों की वास्तविक शुरूआत केलिफोर्निया राज्य के द्वारा पारित 1935 के एक विधेयक से हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप यहां की बंदीगृह व्यवस्था में महत्तवपूर्ण परिवर्तन हुए थे। इस विधेयक में यह प्रावधान रखा गया था कि कारावासियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाय तथा साधारण बंदियों एवं खतरनाक बंदियों को पृथक-पृथक रखा जाय।[5] इन्ही उद्देश्यों की पूर्ती हेतु दक्षिण केलिफोर्निया के चिनो नामक स्थान पर एक 'प्रिजन फार्म' स्थापित करने का प्रस्ताव था, जिसमें बंदियों के रहने एवं काम करने की समस्त व्यवस्थायें की जानी थीं। लेकिन प्रिजन बोर्ड ने इस योजना को अधिक महत्व नहीं देते हुए रूढिगत पूर्ण सुरक्षायुक्त बंदीगृह व्यवस्था को जारी रखना ही उचित माना। लेकिन सन् 1938 में सॉन क्वेन्टिन बंदीगृह में हुए बंदियों के वलवे के कारण नया 'प्रिजन बोर्ड' गठित किया गया जिसने इस बंदीगृह को न्यूनतम निगरानी वाले 'खुले कारागार' में बदल दिया।

समय के साथ-साथ खुले शिवरों का महत्व बढ़ता गया तथा इन बंदीगृहों में सुयोग्य प्रशिक्षित अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्तियाँ की गईं।[6] सन् 1941 के जुलाई माह में केलिफोर्निया के बंदीगृह को खुले कारागृह में परिवर्तित कर दिया गया। इस बंदीगृह में प्रारंभ में केवल 34 बंदी रखे गये थे, वर्तमान समय में इसमें बंदियों की संख्या 2500 से अधिक है। इनमें से ज्यादातर बंदियों को इस बंदीगृह से जुडे 'वानकी केम्पस' में रखा जाता है।

विगत 50 वर्षों में अमेरिका के कई राज्यों में खुली जेलें स्थापित की गई हैं जिनमें टेक्सास में 'सियोगोवाइल' तथा न्यूयार्क में 'बॉलकिल' की खुली जेल विशेष तौर पर उल्लेखनीय है।

ब्रिटेन में खुले कारागृह-

इंग्लैण्ड में प्रथम खुली जेल वेकफील्ड के कारागृह से 12 किलोमीटर की दूरी पर स्थापित की गयी। वर्तमान समय में ब्रिटेन में कई खुली जेले स्थापित की गई हैं, ये वैयक्तिक उपचार पद्धति पर आधारित आधुनिकतम तथा सुव्यवस्थित हैं। लेकिन विगत वर्षों में इंग्लैण्ड में खुली जेलों की जगह 'हास्टल पद्धति' पर अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

फ्रांस में खुले कारागृह-

फ्रांस में खुली जेलों की संख्या न्यूनतम है क्योंकि यहां के सामान्य कारागृहों में ही बंदियों को उचित देखरेख में रखते हुए कारागृह से बाहर औद्योगिक स्थानों में श्रम कार्य पर लगाया जाता है, जिससे कारागृहों पर होने वाला व्यय कम हो तथा बंदी भी आत्म-निर्भर बने। फ्रांस के कासाबियांका नामक स्थान में एक खुली जेल है तथा ओरमिंगेन नामक स्थान में अर्ध खुली जेल स्थापित है। [6A]

आस्ट्रेलिया में खुली जेल-

आस्ट्रेलिया में पहली खुली जेल विक्टोरिया राज्य में सन् 1939 में स्थापित की गयी थी, इस खुली जेल का प्रयोग उस वक्त आस्ट्रेलिया में इतना अधिक सफल रहा था कि वर्तमान समय में आस्ट्रेलिया की दण्ड व्यवस्था में खुली जेलें महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

बेल्जियम में खुले कारागार-

बेल्जियम में खुली जेलों का उपयोग किशोर तथा युवा बंदियों के पुनर्वास के लिए किया जाता है, इन जेलों में प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था रहती है, प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् बंदियों को रोजगार दिलाने का प्रयत्न भी किया जाता है।

हॉलैण्ड में खुले कारागार-

हॉलैण्ड में बंदियों के लिए सन् 1957 में रोटमोन्ड में खुला कारागृह स्थापित किया गया था इसके पश्चात् 1959 में हूरा में तथा 1962 में वान्सविल्ड में खुला कारागृह स्थापित किया गया। इन खुली जेलों का प्रयोग बंदियों की रिहाई से पहले उपचार-संस्थानों के रूप में किया जाता था। इन खुली जेलों में उन बंदियों को ही रखा जाता था जिनकी रिहाई के लिए कुछ वक्त रह जाता था। [7]

मध्यपूर्व देशों में खुले कारागार-

विभिन्न देशों में खुली जेलों के सफल प्रयोग से प्रेरणा लेते हुए इजराइल, ईरान, ईराक इत्यादि मध्यपूर्व देशों ने भी अपने-अपने यहां खुले कारागृह स्थापित किये, इन कारागृहों में बंदियों पर भौतिक तथा शारीरिक बन्धन न्यूनतम हैं। इन कारागृहों के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित सुरक्षाकर्मियों को रखा जाता है। इन खुली जेलों में सिर्फ वे ही बंदी रखे जाते हैं जिनकी सजा का अधिकांश भाग समाप्त हो चुका होता है। इनमें बंदियों में वार्तालाप एवं आहार-विहार की स्वतंत्रता होती है तथा

उनमें विश्वास की भावना को जागृत करने का प्रयास किया जाता है ताकि वे अपनी सजा को पूर्ण करने के पश्चात् अपने आपको समय में पुर्नस्थापित कर सकें।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि सन् 1975 तक अमेरिका में 25 , इंग्लैण्ड में 13, आस्ट्रेलिया में 4, न्यूजीलैंड में 2, चीन में 2, हांगकांग में3. जापान में 2, श्रीलंका में 4, मलेशिया में 2, पाकिस्तान में 2 फिलिपीन्स में 2 तथा थाइलैंड में 2 खुले कारागार स्थापित हो चुके थे। [8]

भारत में खुली जेलें-

मानव सभ्यता के आरंभिक चरण में धर्म व्यक्तियों की समस्त सामाजिक तथा व्यक्तिगत गतिविधियों को दिशा निर्देश देता रहा है एवं उन्हें नियंत्रित भी करता रहा है। हिन्दु युग भी न्याय प्रक्रिया शीघ्र व संक्षिप्त थी। इस युग में न्याय के सामान्य प्रचलित स्वरूप से पीड़ित व्यक्ति को दोषी व्यक्ति या व्यक्तियों से मुआवजा दिलवाया जाता था, राज्य को अतिरिक्त कर देना तथा राज्य द्वारा निष्कासन या मौत की सजा न दिये जाने तथा अपराधी पर कुछ शर्तों को लगाना। मुगल काल में भी आपराधिक प्रक्रिया लगभग यही थी। इस समय के दण्ड विधान के द्वारा अपराधी को किसी भी तरह की रियायत प्रदान नहीं की जाती थी। किन्तु अंग्रेजों के शासनकाल के पश्चात् एक नवीन प्रशासनिक व्यवस्था की शुरूआत हुई इस युग में वहुसंस्थागत न्याय की अवधारणा का जन्म हुआ तथा न्याय की औपचारिकता को बंदीकरण एवं फैसले के पहले सुनवाई आदि के द्वारा प्रक्रिया को दीर्घ कालिक बनाया गया। [9]

सन् 1836-38 की पहली अखिल भारतीय जेल समिति ने बंदियों से सड़क निर्माण, नालियों की सफाई इत्यादि कार्य करवाने की व्यवस्था को समाप्त किये जाने की सिफारिश की थी। इसके बाद सन् 1864 में द्वितीय भारतीय जेल समिति ने कारागृहों की कार्यप्रणाली का पुर्नावलोकन किया। सन् 1877 में जेल कांफ्रेस ने बंदियों को जनउपयोगी कार्यों में लगाने की अनुशंसा की। इस कांफ्रेस के सदस्यों का मत था कि बंदियों को जनउपयोगी कार्यों जैसे- नहर खोदना, बांध निर्माण इत्यादि कार्यों में लगाने से जहां बंदियों में हीनता की भावना कम होगी वहीं सरकार के लिए भी वित्तीय दृष्टि से बंदियों को कार्यों में लगाया जाना लाभप्रद रहेगा।

भारत में प्रथम खुली जेल 1905 में बंबई प्रेसिडेन्सी में आरंभ की गई थी। बंदी बंबई के थाणे केन्द्रीय कारागार के विशिष्ट श्रेणी के बंदियों में से चुने गये थे, लेकिन यह खुली जेल कुछ कारणों के कारण

1910 में बंद कर ली गई थी। सन् 1919-20 की अखिल भारतीय जेल समिति ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि बंदियों के प्रति मानवीय व्यवहार को अपनाया जाये।

चूंकि बंदियों को जेल से मुक्त होकर सामाजिक जीवन में पुन: प्रवेश लेना पड़ता है, अत: यह निश्चित किया गया कि समस्त बंदियों के लिए किसी ऐसे श्रम कार्य में लगाया जाये, जो उनके लिए उपयुक्त हों साथ ही वे उस श्रम कार्य के माध्यम से जेल से मुक्त होने के पश्चात् अपना जीविकोपार्जन कर सकें तथा सामान्य जीवन में लौटने में कठिनाई न महसूस करें।

इसके बाद के वर्षों में विभिन्न राज्य सरकारों ने बंदीगृहों में सुधार करने के लिए समितियों का गठन किया, परंतु बंदियों को बंदीगृह के बाहर श्रम कार्य करवाने को अधिक समर्थन प्राप्त नहीं हो सका तथा वंदी केवल बंदीगृहों में संचालित कुटीर उद्योगों तक ही सीमित रहे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय कारागृहों के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। भारत सरकार के विशेष आग्रह पर संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञ के रूप में 'वाल्टर रेकलेस' भारत आये तथा उन्होने भारतीय कारागृहों के आधुनिकीकरण के संबंध में अपनी एक रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की।

खुली जेलों के लिए सबसे महत्वपूर्ण योगदान दिसंबर 1954 में आयोजित 'सामाजिक कार्यो भारतीय सभा' को है। इस सभा ने अपने सप्तम वार्षिक सम्मेलन में खुली जेलों पर विचार-विमर्श किया, जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान खुली जेलें हैं। खुली जेलों में बंदियों पर विश्वास किया जाता है एवं उन्हें स्वतंत्र जीवन-यापन करने का अवसर प्राप्त होता है।

सन् 1956 में बनारस में आयोजित 'अंतर्राष्ट्रीय सुधारात्मक प्रशासन' की सभा में इस तथ्य को पूर्णत: स्वीकार किया गया था कि यदि बंदी का पुर्नवास करना है तो जेलों के जीवन की ऊंची दीवारों को गिराना होगा और बंदियों को सामान्य नागरिक की तरह ही समझना होगा। खुली जेलों के पीछे यही मूल भावना कार्य करती है कि बंदियों को खुले वातावरण में श्रम कार्यों में लगाया जाये जिससे वे बंदीगृह से मुक्त होकर सम्मानजनक जीवन जीने के लिए अपने आप को तैयार कर सकें।

भारत के विभिन्न राज्यों में खुली जेलें :-

उत्तर प्रदेश :-

स्वतंत्र भारत में पहली खुली जेल उत्तर प्रदेश में सन 1949 में लखनऊ के आदर्श कारागृह के

साथ जुड़े हुए स्थान पर स्थापित की। इसके पश्चात् बनारस की चकिया तहसील में अस्थायी खुला शिविर उ. प्र. के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री संपूर्णा नंद की पहल पर आयोजित किया गया था। इस खुले शिविर में बंदियों को भेजने से पूर्व बनारस की जेल में विशेष प्रशिक्षण दिया गया। इस शिविर में अच्छे आचरण वाले 21-50 वर्ष तक की आयु के उन बंदियों को शामिल किया गया था जो लम्बे कारावास की सजा पाये हुये थे। इस शिविर में लगभग 3000 बंदी शामिल किये गये थे, इस शिविर में प्रत्येक 30 बंदियों पर एक नि:शस्त्र गार्ड भी रखा गया तथा सम्पूर्ण बंदी न्यूनतम निगरानी में रखे गये थे, इस शिविर में बंदियों को स्वतंत्र रूप से घूमने की छूट थी तथा उन्हें अवकाश (कम अवधि) पर घर जाने की सुविधा भी प्राप्त थी।

इसके तुरंत बाद ही अक्टूबर 1953 में करमनाशा नदी पर बांध के निर्माण कार्य में बंदियों से श्रम कार्य करवाने के लिए खुला शिविर आयोजित किया गया, इस शिविर में 3900 से अधिक बंदी शामिल किये गये थे, जिसमें 10 वर्ष से अधिक की कैद की सजा पाये 461 बंदी शामिल थे, जबकि शेष बंदी 3 वर्ष से लेकर 1 वर्ष या उससे कम की सजा प्राप्त बंदी थे। बांध के निर्माण कार्य के पूर्ण होने पर इस शिविर को 1955 में समाप्त किया गया। तत्पश्चात् बंदियों के लिए एक और अस्थायी शिविर शाहाबाद (पीली भीत) में आयोजित किया गया जिसमें बंदियों को नहर खोदने के श्रम कार्य में लगया गया था, इस शिविर में 500 बंदी शामिल किये गये थे, इस शिविर के बंदियों द्वारा कार्य पूरा करने के पश्चात् बंदियों को नैनीताल के 'नानक सागर' शिविर में भेज दिया गया इस शिविर में करीब दो हजार बंदियों को नानक सागर बांध के निर्माण कार्य में लगाया गया था। इसी प्रकार सन् 1955 में सारनाथ में एक अस्थायी शिविर आयोजित किया गया, इस शिविर के बंदियों को वरूणा नदी पर पुल तथा सड़क-निर्माण कार्य में लगाया गया था।

अस्थाई शिविरों की सफलता से उत्साहित होकर सरकार ने मिर्जापुर में चुर्क नामक स्थान में स्थायी शिविर का आयोजन किया, यह स्थायी शिविर 15 मार्च सन् 1956 से प्रारंभ हुआ था, इस शिविर में प्रारंभ में बंदियों की संख्या 150 थी जो कुछ समय बाद 1700 तक पहुंच गयी थी। इस शिविर के बंदियों को घुराना सीमेंट फैक्ट्री के लिए खान से पत्थर काटने एवं तोड़ने के लिए लगाया गया था। इस खुले शिविर के प्रत्येक बंदी को श्रम कार्य करने के लिए 5 रू प्रतिदिन के हिसाब से पारिश्रमिक दिया जाता था, बंदियों के द्वारा अतिरिक्त श्रम कार्य करने पर उन्हें बोनस भी प्रदान किया जाता था। कुछ बंदियों को फैक्ट्री में तकनीकी कार्य पर भी लगाया गया था। इस शिविर में सन् 1976 में 675 बंदी शामिल थे।

इसके साथ ही एक और स्थायी शिविर जिसे संपूर्णानन्द शिविर कहा जाता है सन् 1960 में नैनीताल के सितारागंज नामक स्थान में आयोजित किया गया। इस शिविर में आरंभ में 100 बंदियों को रखा गया लेकिन बाद में बंदियों की संख्या बढ़ाकर 1500 कर दी गई। इस शिविर के बंदियों को ईटों के भट्टे में ईटें बनाने में, बढ़ई गिरी, लुहारगिरी, मुर्गीपालन, दूधशाला एवं कृषि के कार्य में लगाया गया। यह शिविर कुल 5965 एकड़ भूमि पर फैला हुआ था लेकिन बाद में 2000 एकड़ भूमि पुन: भूमि विस्थापितों के पुर्नवास के लिए उत्तर प्रदेश सरकार को सौंप दी गई सन् 1998 में सितारगंज शिविर के पास 3837 एकड़ भूमि है और यह संसार का सबसे बड़ा खुला कारागार है।

राज्य के विभिन्न कारागृहों से चुने हुए इस शिविर के बंदी बरेली केन्द्रीय कारागार में स्थानान्तरित किए जाते हैं जहां से उन्हें शिविर में भेजा जाता है, शिविर में बंदियों के नैतिक आचरण एवं अनुशासित जीवन पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

शिविर के कर्मचारियों में एक अधीक्षक, 5 जेलर, 12 उपजेलर, 16 सहायक जेलर, 3 सहायक चिकित्सा अधिकारी, 6 भेषज्ञ, 126 वार्डर, लेखाकार आदि है। इस शिविर में एक वर्ष के दौरान औसतन 650 बंदी रहते हैं।[11]

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में जाजामऊ नामक स्थान पर गंगा नदी पर पुल के निर्माण कार्य के लिए एक अस्थायी बंदी शिविर को 3 जून 1978 में प्रारंभ किया गया था। इस शिविर में 200 से कुछ अधिक बंदियों को श्रम कार्य में लगाया गया, जिन्हें 5 रूपये प्रतिदिन के हिसाब से पारिश्रमिक प्रदान किया जाता था।

मध्य प्रदेश में खुले शिविर:-

म. प्र. में खुली जेलों का इतिहास भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा अधिक प्राचीन नहीं है। म. प्र. में खुली जेलों को प्रारंभ करने का श्रेय प्रदेश की तत्कालीन डाकू समस्या को दिया जा सकता है।

सर्वोदयी नेता स्व. जयप्रकाश नारायण के अथक प्रयासों से डाकुओं ने आत्म-सर्मपण करने की बात को तो स्वीकार किया किन्तु उन्होने सामान्य कारागारों में बंदियों के साथ रहने से इंकार कर दिया। इन्ही कारणों के चलते तत्कालीन सरकार के विचार में खुले शिविर को प्रारंभ करने का विचार आया। अत: नवम्बर 1973 में गुना जिले के 'मुंगावली' में एक खुले शिविर को स्थापित किया गया। इस

शिविर को ''नवजीवन शिविर'' के नाम से जाना जाता है। इस शिविर में कुल 550 समर्पित दस्युओं को रखा गया था जिनमें मोहर सिंह एवं माधोसिंह जैसे कुख्यात दस्यु भी शामिल थे। इन 550 दस्युओं में से 400 को सजा पूरी करने के पश्चात् 1980 में मुक्त कर दिया गया। शेष केवल आजीवन कारावास से दण्डित कैदियों को इस शिविर में रखा गया। इस शिविर में जेल अधिकारियों के निवास स्थलों के अलावा बंदियों के लिए आठ बैरकें है, इन बैरकों में तालों एवं दीवारों का उपयोग नहीं किया जाता, यह शिविर लगभग 1 हेक्टेयर भूमि में फैला हुआ है।

मुगावली खुले शिविर की सफलता से प्रेरित होकर म.प्र. सरकार ने पन्ना जिले के लक्ष्मीपुर स्थान में [12] सन् 1975 में दूसरे ''नवजीवन शिविर'' का आयोजन किया गया। यह शिविर लगभग 125 एकड़ की भूमि पर स्थित है इनमें से करीब 13 एकड़ भूमि पर भवन एवं आवास गृहों को निर्मित किया गया है शेष भूमि कृषि कार्य के उपयोग में लायी जाती है। बस्तर के मुख्यालय जगदलपुर में तीसरे खुले शिविर को स्थापित किया गया है जो केवल आदिवासी कैदियों के लिए है।

इन शिविरों में प्रशिक्षित जेल अधिकारी व कर्मचारियों को रखा जाता है साथ ही बंदियों को उनकी कारवाधि के दौरान कई रोजगारोन्मुखी कार्यों को सिखाया जाता है ताकि वे अपनी सजा पूरी करने के पश्चात समाज में पुनः स्थापित हो सकें।

इन शिविरों में म. प्र. सरकार की तरफ से बंदियों के भोजन, चिकित्सा, सफाई, मनोरंजन इत्यादि मूलभूत आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। [13]

बिहार में खुले शिविर-

भारत के बिहार राज्य में प्रथम खुला शिविर सन् 1954 में मुजफ्फर जिले के महनार नामक स्थान में आयोजित किया गया था। इसके पश्चात इसी स्थान पर सन् 1956 में पुनः खुले शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर के बंदियों को सड़क निर्माण के कार्यो में लगाया गया। इन दोनो शिविरों में लगभग 90 बंदियों को रखा गया था।

इसके पश्चात् बिहार राज्य के ही पूर्णिया जिले के फारबगंज़ में 1960 में तथा हार्डा नामक स्थान पर सन् 1961 में खुले शिविर आयोजित किये गय। इन शिविरों में औसतन 300 बंदी रखे गये थे जिन्हें नहर के निर्माण कार्य में लगाया गया। बिहार के इन खुले शिविरों में 22 से 45 वर्ष की आयु के

बंदियों को रखा गया था।

हिमाचल प्रदेश में खुले शिविर:-

हिमाचल प्रदेश में प्रथम खुली जेल सन् 1960 में बिलासपुर नामक स्थान पर प्रारंभ की गई। पहले इसमें कुल 50 बंदियों को रखा गया था, कुछ समय पश्चात् इसमें 35 तथा सन् 1961 में 20 और बंदियों को रखा गया।

इस शिविर में 21 से लेकर 50 वर्ष तक की आयु के उन्ही बंदियों को रखा गया था जो श्रम करने में सक्षम थे। इस शिविर के बंदियों से बागवानी, सड़कों को चौड़ा करने तथा नहरों के निर्माण कार्यों लगाया गया था जिसके लिए उन्हें सामान्य दरों की तरह ही पारिश्रमिक प्रदान किया जाता था। इस शिविर में गंभीर तथा आदतन अपराधियों को नहीं रखा गया था, इस शिविर में वे ही बंदी शामिल किये गये थे जिनकी कारावास से मुक्ति के लिए न्यूनतम 4 वर्ष रह गये हों।

आंध्रप्रदेश में खुले शिविर:-

आंध्रप्रदेश में सितंबर 1954 में प्रथम खुले शिविर का आयोजन मौला अली कृषक बस्ती में किया गया। यह स्थान हैदराबाद से 14 मील की दूरी पर स्थित है। यह खुला शिविर करीब 93 एकड़ भूमिपर स्थित है। इस खुले शिविर में ज्यादातर उन्ही बंदियों को शामिल किया गया जो कृषि कार्यों में रूचि रखते थे। इस शिविर में 24 से लेकर 40 वर्ष की आयु तक के बंदियों को रखा गया था। इस शिविर में 40 बंदियों को रखने की व्यवस्था है। इस शिविर में मुर्गीपालन, दुग्धशाला उद्योग, रेशम के कीड़े पालने के उद्योग में भी लगाया गया। इस शिविर में बंदियों को बंदी ही शिक्षित करते हैं।

केरल में खुले शिविर:-

केरल में प्रथम खुले शिविर का आयोजन त्रिवेन्द्रम जिले के नैत्तुकालथेरी नामक जगह पर 20 अगस्त 1962 को किया गया। इस शिविर में 35 से लेकर 60 वर्ष तक की आयु वाले बंदियों को शामिल किया गया था। इस शिविर में 200 बंदियों को रखने का स्थान था, इस शिविर में गंभीर अपराध करने वाले बंदियों (डाका, जालसाजी, चोरी इत्यादि) को रखा गया। इस शिविर के बंदी रबर बागान में तथा सब्जी उगाने का कार्य किया करते थे।

महाराष्ट्र में खुले शिविर:-

महाराष्ट्र में प्रथम खुला शिविर स्वतंत्रपुर नामक स्थान पर लगाया गया। यह स्थान सतारा जिले में स्थित है। यह शिविर 50 एकड़ बंजर भूमि में कृषि कार्य के लिए बनाया गया। इसमें कारावासियों को अर्ध पक्का मकान बनाकर परिवार सहित रहने की व्यवस्था थी। इस शिविर में 12 परिवार रहते थे। इस शिविर में कारावासियों पर किसी प्रकार का पहरा नहीं लगाया गया था, वे इस शिविर में स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते हैं। इस शिविर के बंदियों को यह सुविधा भी प्राप्त है कि यदि वे चाहें तो कृषि फार्म की ही कुछ भूमि खरीदकर यहाँ स्थायी रूप से बस सकते हैं।

महाराष्ट्र में ही एक और खुला शिविर यर्वदा नामक स्थान में सन् 1955 में यर्वदा केन्द्रीय जेल के समीप स्थित 40 एकड़ भूमि में प्रारंभ किया गया था। इस शिविर में 37 बंदियों के रहने की व्यवस्था थी। यह भी कृषि शिविर था जिसमें बंदियों से सहकारिता पद्धति के आधार पर कृषि कार्य करवाया जाता था। ये बंदी बैरकों में रहते थे, यहाँ पर किसी प्रकार की घेराबंदी नहीं थी, बंदी स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करते हैं।

महाराष्ट्र के ही विशापुर में सन् 1961 में एक खुला शिविर प्रारंभ किया गया था, इस शिविर में 900 बंदियों के रहने की व्यवस्था थी। इन शिविरों के अलावा महाराष्ट्र के ही कन्हार तथा सिंडको में भी बंदियों के लिए खुले शिविर आयोजित किये गये थे। इन शिविरों के बंदियों को समाज के निकट लाना ही इन शिविरों का मुख्य उद्देश्य है ताकि वे हीनता की भावना को भुला सकें तथा अपनी कारावधि पूर्ण करने के पश्चात् समाज में अपने को पुर्नस्थापित कर सके।

राजस्थान में खुले शिविर:-

राजस्थान में सर्वप्रथम खुला शिविर दुर्गापुर नामक स्थान में सन् 1955 में प्रारंभ किया गया था। दुर्गापुर राजस्थान राज्य की राजधानी जयपुर से 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह शिविर 116 एकड़ भूमि पर लगाया गया था। इस शिविर में उन्ही बंदियों को रखा गया था जिनकी कारावधि (सजा) का कुछ समय ही शेष रह गया था। इस शिविर में प्रतिदिन 25-30 बंदियों को कृषि कार्य में अन्य व्यक्तियों के साथ लगाया जाता था। इस शिविर में बंदियों पर किसी भी प्रकार का पहरा नहीं लगाया गया। इस शिविर में बंदियों को परिवार सहित रहने के लिए घर उपलब्ध है।

इस शिविर में शामिल बंदियों से जो भी श्रम कार्य करवाया जाता था, उसके बदले उन्हें पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है।

राजस्थान में एक और खुले शिविर का आयोजन सांगतेर में सन् 1963 में प्रारंभ किया गया था। इस शिविर को संपूर्णानन्द जेल शिविर के नाम से जाना जाता है। इस शिविर में उन बंदियों को शामिल किया जाता था जिसकी सजा 7 वर्ष से कम न हो तथा जिनकी आयु 25 से 60 वर्ष के बीच की हो। इस शिविर में बंदी स्वतंत्र वातावरण में अपने परिवार सहित रहते हैं, इन बंदियों को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता भी उपलब्ध करवाई जाती है। इस शिविर के बंदी जो श्रम कार्य करते हैं उसका उन्हें पारिश्रमिक 22 रूपया प्रतिदिन के हिसाब से प्रदान किया जाता है। इस शिविर में सन् 1994 में बंदियों की संख्या 132 तक थी। सांगनेर का संपूर्णानन्द शिविर बंदियों के पुर्नवास में उल्लेखनीय कार्य कर रहा है, इस शिविर में बंधन मुक्त जीवन व्यतीत करने के कारण बंदियों में अपराध बोध कम होता है साथ ही उनकी मनोस्थिति में भी सुधार होता है।

इन दो शिविरों के अलावा राजस्थान के मंडौर, बोरखेड़ा तथा तावीजी में भी खुले शिविर आयोजित किये गये थे। इन सभी शिविरों में बंदी अपनी इच्छानुसार विचरण के लिए स्वतंत्र रहते हैं। इन शिविरों में रहने से बंदियों को समाज में पुर्नस्थापित होने में कठिनाई नहीं होती है।

गुजरात में खुले शिविर:-

भारत के गुजरात में भी दो खुले शिविर आयोजित किये गये थे। पहला शिविर गुजरात के अमरेली नामक स्थान में सन् 1968 में प्रारंभ किया गया था। दूसरा शिविर सन् 1972 में अहमदाबाद में आयोजित किया गया था। ये शिविर शहर से 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। इन शिविरों में बंदियों से कृषि कार्य एवं अन्य श्रम कार्य करवाये जाते हैं।

असम में खुले शिविर:-

भारत के असम राज्य में खुले शिविर का आयोजन बारबेटा (जोरहार) नामक स्थान में किया गया था। इस शिविर का आरंभ सन् 1964 में हुआ था। असम राज्य का यह खुला शिविर कृषि एवं औद्योगिक खुला कारागार था। अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में सन् 1998 तक कुल 27 खुले कारागार थे, इनमें अर्ध खुले कारागार शामिल नहीं थे। ये शिविर भारत के 12 विभिन्न राज्यों में आयोजित

किये गये थे। इन शिविरों में 100 से लेकर 1000 तक बंदियों को रखने की व्यवस्था थी।

तमिलनाडू में खुले शिविर:-

भारत के तमिलनाडू राज्य में भी दो खुले शिविर आयोजित किये गये थे। जिनमें से पहला शिविर सिंगानल्लार में सन् 1956 में प्रारंभ किया गया तथा दूसरा शिविर सन् 1966 में सलेम नामक स्थान पर आयोजित किया गया था।

पंजाब में खुले शिविर:-

पंजाब राज्य में प्रथम खुले शिविर का आयोजन सन् 1970 में नाभा नामक स्थान पर किया गया था। इस शिविर के बंदियों से मुख्यत: कृषि संबंधि श्रम कार्य करवाया जाता था।

कर्नाटक में खुले शिविर:-

कर्नाटक राज्य में प्रथम खुले शिविर का आयोजन सन् 1968 में सोन दत्ती (मैसूर) में किया गया था, इस शिविर में बंदियों को रहने के लिए भवन निर्मित है।

खुली जेलों में प्रवेश पात्रता प्रत्येक राज्य में अलग-2 हैं, प्रमुख शर्तें निम्नलिखित हैं -

(1) बंदी खुले कारागृह के नियमों के पालन करने के लिए तैयार हों

(2) शारीरिक व मानसिक रूप से बंदी श्रम कार्य करने के लिए स्वस्थ हों

(3) इन शिविरों में वे ही बंदी शामिल किये जाते हैं जिनकी कारावधि का शेष कुछ ही समय ही बचा हो।

(4) बंदी को लंबी अवधि के कारवास की सजा प्राप्त होनी चाहिए तथा उनकी राज्य द्वारा निर्धारित आयु 21 वर्ष से कम तथा 50 वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए।

(5) आदतन अपराधी नहीं होने चाहिए।

(6) प्रथम श्रेणी के या महिला बंदी नहीं होने चाहिए।

(7) उनकी बंदीगृह में अच्छे व्यवहार की रिपोर्ट होनी चाहिए।

(8) इन शिविरों में वे ही बंदी शामिल किये जाते हैं जिन पर न्यायालय में कोई मामला लंबित न हो।

(9) बंदी सजापूर्व कृषक परिवार या किसी व्यवसाय से जुड़े होने चाहिए।

(10) वे बंदी खुले शिविरों में शामिल नहीं किये जा सकते जिन्होने भारतीय दण्ड संहिता की निम्नलिखित धाराओं के अंतर्गत अपराध किया हो -

- धारा- 120-ए तथा 120 बी
- धारा-131-140
- धारा-216 ए
- धारा-224
- धारा-231, 232
- धारा-303
- धारा-311
- धारा-328
- धारा-361
- धारा-376
- धारा-382
- धारा-386-389
- धारा-392-401
- धारा-413
- धारा-459
- धारा-460 तथा
- धारा-489

सामान्यत: खुली जेलो में बंदियों को भेजने के लिए केन्द्रीय कारागृहों से उपरोक्त विवरण को ध्यान में रखकर लगभग 50 बंदियों की सूची तैयार करके राज्य के पुलिस महानिदेशक को भेजी जाती है, उसके पश्चात् महानिदेशक के कार्यालय से आदेश प्रसारित किया जाता है कि किन बंदियों का चयन खुले शिविरों के लिए किया गया है।

खुले शिविरों का मनोवैज्ञानिक आधार:-

खुली जेलों के प्रशासन को चलाने के लिए निम्नलिखित महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार होते हैं-

(1) विश्वास (2) सहिष्णुता

(3) सत्य (4) समग्रता

खुले बंदीगृहों में बंदियों के साथ अच्छा व्यवहार होना चाहिए। यदि बंदियों से अच्छा बर्ताव किया जाये तो वे भी अच्छा व्यवहार करेंगे, अत: इस बात की आवश्यकता है कि खुले शिविरों में बंदियों को उसी तरह संगठित एवं व्यवस्थित करना चाहिए जिन सिद्धांतों एंव आदर्शों पर सामान्य नागरिकों को संगठित एवं व्यवस्थित किया जाता है। इन शिविरों के निवासियो की योग्यता एंव सामर्थ्य पर भी विश्वास करना चाहिए, इनके लिए जिस किसी भी कार्य एवं कर्तव्यों का निर्धारण किया जाए वह सहमति से होना चाहिए। खुले शिविरों का वातावरण घरेलू एवं स्नेहिल होना चाहिए ताकि व्यवस्था का एक समानान्तर प्रशासनिक तरीका पनप सके।

खुली जेलों का महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक आधार सहिष्णुता है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि सर्वाधिकार संपन्न जेल अधिकारियों की मनोदशा सदैव शासक की होती है वे बंदियों से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार नहीं कर पाते। इन अधिकारियों को इस बात का ज्ञान नहीं रहता कि अत्यन्त छोटी-से-छोटी बात भी बंदियों में सुधार के लिए आवश्यक होती है। अत: कह सकते है कि खुले शिविरों में बंदियों के सुधार के लिए सहिष्णुता अति आवश्यक है।

खुले शिविरों में कूटनीति, छदम् या झलपूर्ण व्यवहार कतई नहीं किया जाना चाहिए। वहां पर जो कुछ भी कार्य किया जाय या कोई बात कही जाए वह सत्य पर आधारित होनी चाहिए। यदि इन शिविरों में गोपनीयता रखी जाएगी तो अनावश्यक संशय पैदा होगें। बंदियों के फैसले, मजदूरी, बंदियों के नियम इत्यादि समस्त जानकारियाँ बंदियों को मालूम होनी चाहिए। सत्य को आधार बनाकर ही खुले शिविरों को सफल बनाया जा सकता है।

खुले शिविरों की सफलता के लिए यह अति आवश्यक है कि बंदियों की विभिन्न समस्याओं के समाधान में अर्न्तदृष्टि को रखना। इसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि बंदियों की समस्याओं का

समाधान समष्टि की भावना को महत्व प्रदान करके किया जाये। खुले शिविरों की एक महत्वपूर्ण समस्या उनके नियोजन से है। अत: उन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए ताकि इन शिविरों में नियोजन की समस्या उत्पन्न न हो।

खुले शिविरों में बंदियों एवं कर्मचारियों के बीच समरसता स्थापित की जानी चाहिए। खुले शिविरों में योग्य कर्मचारियों का चुनाव सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। खुले शिविरों में ऐसे कर्मचारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए जो बंदियों से सद्भाव रख सकें, साथ ही साथ वे मानव-विज्ञान से भी अच्छी तरह परिचित हों। खुले शिविरों के कर्मचारी को इस प्रकार प्रशिक्षण प्राप्त होने चाहिए कि वे बंदियों के व्यवहार को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकें। इन शिविरों के कर्मचारियों का न सिर्फ मानवीय होना जरूरी है, बल्कि उसे एक उत्तम शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, मित्र, दिशा निर्देशक, अर्थशास्त्री एवं समाजशास्त्री होना भी आवश्यक है। कर्मचारी को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह बंदियों को शिक्षित-प्रशिक्षित करके आदर्श जीवन के प्रति नई प्रेरणा तथा स्फूर्ति भर दें। [14]

भारत के विभिन्न राज्यों में खुले शिविर जिन सिद्धांतों पर आधारित होते है वे निम्नलिखित है -

(1) खुले शिवरों में बंदियों को राष्ट्रीय उपयोगिता एवं जनयोजनाओं के कार्यों में लगाया जाता है। उन्हें श्रम कार्य के बदले में पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है।

(2) खुले शिविरों के बंदियों से कोई भी ऐसा कार्य नहीं करवाया जाता जिसे व्यक्तिगत पार्टियां सम्पादित करती हैं।

(3) खुले शिविर का प्रशासन बंदियों के कल्याण एवं शिविर के आन्तरिक प्रशासन के लिए उत्तरदायी होता है। खुले शिविर के बंदियों को श्रम कार्य देने का कार्य या किस स्थान पर बंदियों से कार्य करवाना है इसका निर्धारण विभाग के द्वारा किया जाता है।

(4) बंदियों को श्रम के बदले जो पारिश्रम (मजदूरी) प्राप्त होता है, उसको बंदी अपने पास में ही रखते हैं तथा अपने बच्चों का वहन यथासंभव बंदी स्वयं करते हैं।

(5) जो भी बंदी इन शिविरों में शामिल होने के पश्चात् श्रम कार्य ठीक से नहीं करते हैं या शिविरों के नियमों का उल्लंघन करते है उन्हें शिविर प्रशासन पुन: बंद जेलों की ओर लौटा देते हैं।

(6) भारत में खुली जेलों में किन-किन बंदियों को रखा जाना है इस बात का चयन अत्यन्त ही

सावधानी पूर्वक किया जाता है। किन बंदियों को खुले शिविरों में रखना है, इस बात का अंतिम निर्णय राज्य के पुलिस महानिदेशक कार्यालय द्वारा केन्द्रीय कारागार से बंदियों की भेजी गई जानकारी का अच्छी तरह से अध्ययन करने के पश्चात् ही किया जाता है।

(7) खुली जेलों में जो अधिकारी-कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं वे खुले शिविरों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त सुयोग्य एवं अनुभवी होते हैं।[15]

अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में खुले शिविरः-

खुले शिविरों की उपयोगिता एवं महत्व को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर माना गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की ''सामाजिक सुरक्षा शाखा'' ने खुले शिविरों पर एक रिपोर्ट तैयार करके अपने सदस्य राष्ट्रों में वितरित की ताकि खुली जेलों को लोकप्रिय बनाया जा सके। इसी के परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों में खुली जेलों का आयोजन किया गया ताकि बंदियों को खुले वातावरण में रखकर उन्हे समाजउपयोगी बनाया जा सके एवं बंदियों को पुर्नवास में सहायता मिल सके।

सन् 1950 में हेग में 12 वीं ''अन्तर्राष्ट्रीय दण्ड एवं पश्चाताप्'' कांग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया गया, इस अधिवेशन में खुली संस्था तथा परम्परागत कारागृहों की स्थानापन्नता की संभावनाओं पर विचार-विमर्श किया गया था। इसी विचार-विमर्श के पश्चात् एक प्रस्ताव पारित किया गया था।

दिसम्बर 1952 में जेनेवा में 'यूरोपीय क्षेत्रीय सलाहकारी समूह' का सम्मेलन आयोजित किया गया था। इसके अलावा निम्नलिखित सम्मेलनों में खुली जेलों की विभिन्न समस्याओं पर काफी विचार-विमर्श किया गया -

(1) लेटिन-अमेरिकन सेमीनार- जो कि ब्राजील की राजधानी रियो-डि-जेनरो में अप्रेल 1953 में आयोजित किया गया था।

(2) मध्य-पूर्व सेमीनार- जोकि मिश्र की राजधानी कॉहिरा में दिसम्बर 1953 में आयोजित किया गया था।

(3) एशिया और सुदुर-पूर्व सम्मेलन- जोकि बर्मा (म्यामाँ) की राजधानी रंगून(यंगून) में नबम्बर 1956 में आयोजित किया गया।[16]

(4) संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा सन् 1953 में जिनेवा में ''अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार'' पर आयोजित किये गये अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन में खुली जेलों पर गम्भीरता पूर्वक विचार-विमर्श किया गया।

इस सम्मेलन में विचार के पश्चात् यह निर्णय लिया गया था कि खुली जेलों की व्यवस्था मुख्यत: दो बातों पर आधारित होना आवश्यक है-

(1) इन जेलों में सुरक्षात्मक उपाय जैसे - दीवारें, सशस्त्र सुरक्षा बल इत्यादि को न्यूनतम रखा जाय।

(2) बंदियों में स्वेच्छा से अनुशासन में रहने की आदत डाली जाये।

सन् 1960 में लंदन में जब पुन: ''अपराध निवारण एवं अपराधियों के उपचार'' पर अधिवेशन आयोजित हुआ तब तक खुले शिविर (जेल) दण्डात्मक व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा बन चुके थे। इन शिविरों में बंदियों को अपने परिजनो-मित्रों से मिलने की अनुमति प्रदान की गई और इन शिविरों की महिला बंदियों को प्रसूति सुविधाओं सहित अतिरिक्त सुविधाये भी दी गईं।[17]

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खुली जेलों के महत्व को देखते हुए भारत में भी खुली जेलों की आवश्यकता पर गहन विचार-विमर्श शुरू हुआ। सन् 1957-59 की अखिल भारतीय जेल मैनुअल कमेटी ने अपनी रिर्पोट में लिखा था कि बंदियों की मुक्ति के लिए यह अति आवश्यक है कि बंदियों को खुली जेलों में रखा जाए। ऐसा करना बंदीगृहों से बंदी की मुक्ति की तैयारी का पहला आधार होना चाहिए। क्योंकि परम्परागत बंदीगृहों में लम्बे समय तक रहने के कारण बंदी वहां के वातावरण से इतना अधिक अभयस्त हो जाते हैं कि जब बंदी इन कारागृहों से वाहर आता है तो वह अपने आप को समाज में पुर्नस्थापित करने में काफी कठिनाई का अनुभव करता है और वह पुन: अपराध-जगत में प्रवेश कर लेता है। इसी तथ्य पर मुख्य रूप से ध्यान देते हुए कमेटी ने खुली जेलों की सिफारिश की थी। इस समिति के अनुसार बंदियों को इस बात का कतई एहसास नहीं होने देना चाहिए कि वे समाज से अलग हो चुके हैं बल्कि उन्हे इस बात का एहसास कराना होगा कि वे अब भी समाज का एक हिस्सा हैं दण्ड व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति को सुधारना है न कि उसे असामाजिक प्राणी बनाना। यदि बंदियों को खुली जेलों में रखा जाय तो उनमें सामाजिक जीवन की भावना पैदा होगी।[18]

खुली जेलों के निम्नलिखित लक्षण हैं -

(1) खुले शिवरों में न्यूनतम सुरक्षा के साथ बंदियों को छोटे-छोटे समूहों में रखकर उन्हें समाज में पुर्नस्थापित करने के लिए तैयार करना।

(2) बंदियों को उनके सामाजिक दायित्वों की अनुभूति करवाना।

(3) बंदियों को विभिन्न रोजगारोन्मुखी कार्यक्रमों का प्रशिक्षण दिये जाने की सुविधा उपलब्ध करवाना।

(4) बंदियों को उनके परिवार के सदस्यों व मित्रों से मुलाकात का अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना ताकि वे अपनी पारिवारिक समस्याओं से अवगत हो सकें तथा उनको सुलझाने में सहायता कर सकें।

(5) शिविरों में अच्छे आचरण, व्यवहार के लिए बंदियों को उदारता से छूट देना जो एक महीने में 15 दिन तक हो सकती है।

(6) बंदियों के भोजन, स्वास्थ एवं मनोरंजन पर मुख्य रूप से ध्यान देना।

(7) खुली जेलों का संचालन योग्य-प्रशिक्षित अधिकारियों कर्मचारियों के द्वारा करवाया जाना।

(8) बंदियों को परिश्रम का जो भुगतान किया जाता है उसका हिस्सा बंदियों के परिवारजनों को भेजने की व्यवस्था।

(9) सरकार द्वारा बैंकों से बंदियों को ऋण की सुविधा उपलब्ध करवाना।

(10) खुली जेलों में बंदियों में परस्पर मित्रवत् संबंध स्थापित करने तथा इन जेलों के कर्मचारियों के साथ मधुर संबंध बनाने पर बल दिया जाना।

(11) खुले शिविरों के बंदियों को स्वच्छन्द विचरण की अनुमति प्रदान करना ताकि उनमें आत्मानुशासन, आत्मविश्वास तथा उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो सके।

(12) विभिन्न विशेषज्ञों की उपस्थिति में इन शिविरों के निवासियों के लिए पारिश्रमिक युक्त विभिन्न कार्यों का उपलब्ध करवाया जाना।

(13) इन खुली जेलों में जेलों से संबंधित रूढ़ीगत शब्दावली के स्थान पर ऐसी शब्दावली का प्रयोग

करना, जिससे कारागृहों के अपमानजनक व दूषित वातावरण का बंदियों को अहसास न हो जिससे बंदियों में हीनता की भावना न उत्पन्न हो।

(14) इन शिविरों के निवासियों को बंदी या कैदी न कहकर 'अन्तवासी' कहा जाता है, इसी प्रकार वार्डन को पर्यवेक्षक तथा कारागार को 'शिविर' कहा जाता है।

खुले कारागृहों की उपलब्धियाँ:-

खुले शिविरों की प्रमुख उपलब्धियां निम्न प्रकार से हैं -

(1) खुली जेलों के बंदियों में बंद जेलों के बंदियों की अपेक्षा समाज के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण पाया जाता है।

(2) खुली जेलों के बंदी परम्परागत जेलों के बंदियों की अपेक्षा अधिक सकारात्मक आत्माभिमान एवं सहबंदियों के साथ मित्रवत दृष्टिकोण अपनाते हैं।

(3) खुली जेलों के बंदी, परम्परागत जेलों के बंदियों की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के प्रति तथा साथी बंदी एवं जेलों के कर्मचारियों के प्रति समायोजन का अच्छा स्तर दर्शाते हैं। खुली जेलों के बंदियों में इस समायोजन का कारण अच्छी सुविधाओं एवं मुक्त वातावरण का होना है।

(4) खुले शिविरों के बंदियों में परम्परागत जेलों के बंदियों की अपेक्षा अपराधानुभूति, चिंता और असुरक्षा की भावना कम पायी जाती है।

(5) खुली जेलों के बंदियों में परम्परागत जेलों के बंदियों की अपेक्षा जेल के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति अधिक सहयोगी दृष्टिकोण होता है।

(6) खुली जेलों के बंदी अपने आपको इन शिविरों में इस प्रकार से ढाल लेते हैं कि उनमें मनस्ताप, मनोरोग एवं बहिमुर्खता अत्याधिक कम पाई जाती है।

(7) खुली जेलों के बंदी इन जेलों से मुक्त होने के पश्चात् अपने आप को समाज में पुर्नस्थापित करने में कठिनाई महसूस नहीं करते हैं।

(8) खुले कारागृह परम्परागत कारागृहों की भीड़ को कम करने में सहायक सिद्ध हुये हैं।

(9) खुले शिविरों के बंदियों द्वारा जो पारिश्रम अर्जित किया जाता है उसका कुछ भाग सरकार द्वारा उनके परिजनों को भेजा जाता है इससे बंदियों के परिजनों को जहां सहायता उपलब्ध हो जाती है वहीं बंदी

भी इस बात का आत्म संतोष प्राप्त करते हैं कि वे अपने परिवार के लिए कुछ कर रहे हैं।

(10) खुले शिविर राज्यों पर बोझ नहीं होते क्योंकि इनकी लागत परम्परागत जेलों की अपेक्षा अत्याधिक कम होती है।

(11) खुले कारागार मानव-मूल्यों के सर्वोच्च आदर्शों पर आधारित संस्था है।

(12) सामाजिक दृष्टिकोण से खुले कारागार समाज को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

(13) खुले शिविर बंदियों के लिए नवजीवन दायक संस्थायें होती हैं।

(14) खुली जेलों की सर्वप्रमुख उपलब्धि हैं बंदियों का सामाजिक पुर्नबास करना।

भारत में खुले कारागृहों को प्रारंभ के दशकों में काफी लोकप्रियता हासिल हुई इसका प्रमुख कारण इन जेलों को बंदियों के उद्धार तथा पुर्नवास का उत्तम साधन माना गया। इन शिविरों में से अपराधियों ने भागने का बहुत ही कम प्रयास किया। इन शिविरों के द्वारा बंदियों में आत्मसम्मान एवं अपने को समाज में पुर्नस्थापित करने में काफी सहायता मिली। भारत के खुले कारागृह अन्तर्राष्ट्रीय मानक सिद्धांतों के अनुरूप है। इन शिवरों के बंदियों पर न्यूनतम निगरानी व प्रतिबंध रखे जाते हैं। लेकिन असंतोषजनक तथ्य यह है कि भारत के कुछ राज्यों ने इस व्यवस्था को नहीं अपनाया, गत दो दशकों में इन जेलों की लोकप्रियता में बहुत कमी आई है। इसका प्रमुख कारण पैरोल व्यवस्था को इसका अच्छा विकल्प माना गया। सन् 1975 के बाद नये शिविरों की स्थापना पर ध्यान नहीं दिया गया, अनेक विद्वानों ने खुली जेलों को फिजूलखर्ची मानते हुये उन्हे तत्काल बंद करने की सलाह दी, क्योंकि विद्वानो का यह मत रहा है कि केवल कुछ बंदियों के पुर्नवास पर इतना धन का व्यय करना व्यर्थ है। इन खुली जेलों के आलोचक तो यह तर्क भी देते हैं कि इन जेलों में बंदियों ने उपद्रवों और अन्य प्रकार की गड़बड़ियों को रोकने एवं इन जेलों की उत्तम व्यवस्था का प्रदर्शन करने के लिए इन खुली जेलों के अधिकारी प्राय: अपनी अधिकार शक्ति बलिष्ठ एवं प्रभावशाली बंदी को सौंप देते हैं तथा स्वाबलम्बन एवं स्व अनुशासन के नाम पर इन शिविरों में बंदियों का मुखिया शिविर में अपना रोब एवं दबदबा बनाये रखता है।

खुली जेलों के बारे में निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि खुली जेलें आधुनिक दण्ड व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। इनमें बंदियों को पुर्नवासित करने में काफी सहायता मिलती है, इन शिविरों के माध्यम से ही बंदी समाज में पुन: उपयोगी एवं स्वावलम्बी व्यक्ति बनकर लौटते हैं।

जेल सुधार कमेटी ने अपनी रिर्पोट में खुली जेलों के बारे में यह सिफारिश की थी कि ये जेल तीन प्रकार के होने चाहिए-

(1) खुले (2) अर्ध खुले एवं (3) खुले शिविर

इस कमेटी का यह भी सुझाव था कि इन खुली जेलों में लघु या दीर्घ अवधि के आधार पर बंदियों का चयन नहीं किया जाना चाहिए, वरन उन बंदियों में सुधार के प्रति कितनी रूचि है एवं समाज में उनके पुर्नवास की क्या संभावनायें हैं, इस आधार पर किया जाना चाहिए।

¤ ¤ ¤

संदर्भ :-

(1) डॉ. डी.एस. बघेल : अपराध शास्त्र, अध्याय 25, सातवा संस्करण, 1996, दिल्ली, पृ. 286

(2) यू. एन. कांग्रेस ऑन प्रिवेशंन ऑफ क्राइम एण्ड ट्रीटमेन्ट अ फैन्डरस्, 1955

(3) ओपेन प्रिजन इन इण्डिया सैन्ट्रल ब्यूरो ऑफ कारेक्शनल सर्विश, नई दिल्ली, 1973 पृ. 42

(4) वही. पृ. 42

(5) ड्रेसलर डेविस : रीडिंग्स इनक्रिमिनोलॉजी एण्ड मेनोलाजी, 1964, पृ. 551

(6) केन्यन जे. सेनडर : प्रिजन आर पीपुल्स, 1952, पृ. 28

(6-A) डॉ. ना. वि. पराजपे : अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन (2000) पृ. 229-230

(7) आर्नेस्ट ए. एम. लेम्वर्स : मिस्टर प्रिजन गोस टू टाऊन स्टडीज इन पेनालॉजी, 1964, पृ. 126

(8) डॉ. एस. घोष : ओपन प्रिजनस् एण्ड दि इन्मेट्स मित्तर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1993 पृ. 9-10

(9) डॉ. डी. एस. बघेल : अपराध शास्त्र पृ. 292

(10) डॉ. एम. एस. चौहान : अपराध शास्त्र एवं आपराधिक प्रशासन, 1991, पृ. 239-40

(11) डॉ. एस. घोष : पृ. 12

(12) लक्ष्मीपुर जिला पन्ना (मध्यप्रदेश)से 8 किमी. दूरी पर स्थिति है।

(13) डॉ. आर. जी. सिंह : टैरर टू रीहोम्, प्रथम संस्करण, पृ. 128

(14) डॉ. डी. एस. बघेल : अपराध शास्त्र , पृ. 289

(15) वही. : पृ. 289

(16) वही. : पृ. 289

(17) डॉ. ना. वि. परांजपे : अपराधशास्त्र एवं दण्ड प्रशासन, 2000, पृ. 232

(18) आल इण्डिया जेल मैन्यूल कमेटी रिपोर्ट, 1957-59, पृ. 163

¤ ¤ ¤

अध्याय 5

कारावासित कैदियों की दशा

कारागृह में मूल आवश्यकताओं की गुणवत्ता :-

कैद (बन्दीकरण) से जीवन प्रतिबंधित होता है। कारावास कैदीं को स्वतंत्र जीवन के सुख और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करता है। किन्तु कैद बंदियों को ऐसी मूल आवश्यकताओं मात्र से वंचित नहीं कर सकती जो मानव जीवन को बनाए रखती है अर्थात् कारावास कैदी को खाना, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं से वंचित नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त चूंकि कारागृह एक ऐसी संस्था है जो अपनी दीवारों, कोठरियों (बंदीगृहों) और बैरकों के भीतर न केवल व्यक्तियों को रोककर रखता है, बल्कि (दण्डित करने या सुधारने के लिए) उनसे काम भी लेता है तथा उन्हें खेल-कूद के अवसर प्रदान करता है, अत: इस व्यवस्था के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि यह तंत्र (व्यवस्था) व्यक्तियों को पर्याप्त रूप में अच्छी मात्रा में भोजन, कपड़ा और आश्रय की पूर्ति करें। कैद (जेल की सजा) के दमनात्मक-व-सुधारात्मक तंत्र के लिए न केवल कारागृहों में दंगों (हंगामों) और प्रदर्शनों को रोकना आवश्यक ही नहीं है बल्कि वहाँ रहने वाले बंदियों को कारावास की वास्तविक अनुभूति कराने के लिए भी उसे उपयुक्त बनाकर रखना है, जिससे कि उन्हें नियंत्रित रखकर सुधारा जा सके।[1]

इन स्पष्ट कारणों से कारागृह प्रशासकों का स्वयं का सरोकार अधिकतर ऐसी चीजों तथा सेवाओं की व्यवस्था से है जो बंदियों को खाना, कपड़ा और आवास की पूर्ति करती है। यह एक बहुत बड़ा कार्य है, जो केवल सुरक्षा के पश्चात् अत्याधिक महत्व का है और इसके लिए उन्हें निरंतर प्रयत्नशील रहना होता है और चूंकि कारागृह व्यवस्था के इस पहलू का सीधा संबंध बंदियों की प्रवृत्तियों तथा मनोबल पर पड़ने वाले प्रभाव से है, अत: यह विशेषत: दंड-प्रशासन का एक महत्वपर्ण पहलू है। बंदियों के लिए भी ये सेवाएं ऐसी कुछ मूल चीजों के रूप में हैं, जिनका संबंध उनके प्रत्यक्ष जीवन से है। वर्तमान के सुरक्षण की इच्छा ऐसे दीर्घ अवधि की सजा काट रहें बंदियों के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण है, जो सामान्यत: जेल की चहार दीवारी से परे अत्याधिक सुखी भावी जीवन की आशा जनक रूप में कामना भी नहीं कर सकते। कैदियों की यह वास्तविक सोच ऐसी शिकायतों के लिए उन्हें मुखर बनाती है जिनका संबंध इन सेवाओं के प्रशासन से होता है।[2]

खाना (भोजन) जो कैदी खाते है :

कैदियों के जीवन की तीन मूल आवश्यकताओं में से खाना नि:संदेह रूप में अधिक महत्वपूर्ण

है। मार्ल ई. अलेक्जेंडर ने निम्नलिखित शब्दों में कैदियों के भोजन के महत्व का वर्णन किया है : "भोजन सर्वत्र लोगों के लिए महत्वपूर्ण है और विशेष रूप से कैदियों के लिए। कारागृह का जीवन अधिकतर अनुशासन तथा नीरसता का होता है और कैदियों को उनके दैनिक जीवन में कुछेक व्यक्तिगत पसंदगियों की छूट होती है। अत: भोजन का उनके लिए अनुपातिक रूप में उतना महत्व नहीं दिया जाता है। यह आश्चर्य जनक है कि उनके लिए विलासतापूर्ण योजनों का प्रश्न नहीं है, संतुलित भोजन, दिन भर में तीन बार दिया जाना और साधारण तथा पौष्टिक रूप में पर्याप्त भोजन स्वच्छ परिवेशों में परोसा जाना कारागृह खाद्य समस्याओं के प्रत्युत्तर स्वरूप है।"[3]

वास्तविक स्थिति यह है कि कारागृह के कैदी निरंतर भोजन के बारे में चर्चा करते रहते हैं और भोजन की घटिया किस्म तथा गुणवत्ता के प्रति अपनी नाराजगी व अप्रसन्नता व्यक्त करते तथा बड़बड़ाते रहते हैं। वे गैर सरकारी कार्य से कारागृह में पहुंचने वाले व्यक्तियों को रसोईघर में जाने और उनके कथनों की विधिमान्यता की पुष्टि करने के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। शोधकर्त्ता (अनुसंधानकर्ता) को इस स्थिति का सामना अनेक बार करना पड़ा अर्थात कैदी उन्हें प्रेरित करके रसोईघर में ले गए और उन्हें सच्चाई का अनुभव कराया। शोधकर्ता ने कारागृह में भोजन सम्बन्धी पद्धतियों के बारे में जो भी पूछताछ की, उसे सामान्यत: उत्तर में यह हाजिर जबाब मिला : "आप स्वयं हमारी भोजन कवायद में शामिल क्यों नहीं होते और व्यक्तिगत रूप में यह नहीं देख लेते कि हम क्या और कैसे खाते हैं ?" कैदियों ने खाना की मदों का प्रदर्शन इस व्यंग्यात्मक टिप्पणी सहित किया, "महोदय यहाँ देखें, यह खाना है, क्या आपके पास पूछने के लिए फिर भी कोई प्रशन रह जाता है ?" खाने को चखने का कैदियों के द्वारा अनुरोध किए जाने पर शोधार्थी ने कारागृह की रोटियो , दालों और सब्जियों का थोड़ा स्वाद लिया। तब यह स्पष्ट हुआ कि दण्ड-रूप भोजन के बारे में कैदियों ने जो कुछ कहा था, उनके उस कथन में यथार्थता नहीं के बराबर थी। किंतु यहाँ यह निश्चित रूप से कहा जाए कि बाहरी व्यक्तियों को भोजन की मदें प्रदर्शित किए जानेकी प्रवृत्ति केवल कैदियों तक सीमित नहीं है उनके स्वामी भी पूर्णत: इस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हैं। बहुत-से कारागृह प्रशासक (उनके कारागृह में पहुँचने वाले) अति विशिष्ट व्यक्तियों को भंडारा नामक रसोईघर में ले जाने और यह दिखाने का लोभ संवरण नहीं कर पाते कि कितनी स्वच्छता तथा अति सावधानी से भोजन पकाया और वितरित किया जाता है। कैदियों से ठीक विपरीत कारागृह प्रशासक केवल खाना की गुणवत्ता की प्रशंसा

करते हैं और इस प्रकार का आभास देते हैं कि उनके कारागृह में हर वस्तु अत्याधिक आश्चर्यजनक और संतोषप्रद है। वार्न्स तथा टीटर्स ने कारागृह का दौरा करने वाले आगन्तुकों की भूमिका को प्रशासन द्वारा प्रस्तुत किया गया दिखावा मात्र बताया है।[4] कारागृह के दैनिक आहार के ये प्रत्यक्ष प्रभावक प्रदर्शन अधिकतर ऐसे आगन्तुकों को संतुष्ट नहीं कर पाते जो इस समस्या के प्रति सक्रिय दिलचस्पी लेते हैं और जो व्यापक रूप से खुले तथा सजग नेत्रों तथा कानों सहित कारागृह के रसोईघर का बारीकी से निरीक्षण करते हैं।

खाने का पकाया जाना :-

बाहरी प्रेक्षकों को कारागृह का रसोईघर लघु भोजन पाकशाला उद्योग जैसा दिखाई देगा। वे न केवल अपनी विशिष्ट वास्तुकला, के माध्यम से बल्कि जले हुए खाने की जी मिचलाने वाली गंध के कारण प्रत्यक्षत: अलग किस्म के होते हैं। हर कारागृह में इन रसोईघरों की संख्या उनमें खाना खाने वाले कैदियों की संख्या पर निर्भर करते हुए अलग-अलग हो सकती है। केन्द्रीय कारागृहों में, जहाँ कैदियों की संख्या सामान्यत: एक हजार से अधिक होती है,वहाँ रसोईघरों की संख्या चार से छह तक की होती है। सामान्य रूप में एक रसोईघर एक विशेष परिमंडल के कैदियों को खाना खिलाता है, ऐसे बंदियों की संख्या (हालांकि नियत नहीं है) 150 से 200 तक या उससे भी कुछ अधिक हो सकती है।

इन रसोईघरों में खाना पकाने का काम बंदियों के एक बड़े समूह (प्रत्येक रसोईघर में करीब-करीब 20) के द्वारा किया जाता है। पेशेबर रसोइयों को नियुक्त नहीं किया जाता। पेशेवर रसोइयों की एवज में बंदी-रसोइए खाना पकाते हैं और वे वहाँ अपनी दैनिक मजदूरी के बदले काम करते है। ये रसोइए बदलते रहते हैं और यह जरूरी नहीं होता कि वे आगे भी हर समय यह कार्य करते रहें। उन्हें कारागृह में किसी अन्य कार्य-स्थल पर स्थानान्तरित किया जा सकता है और उन्हें कर्तव्य की अवहेलना के लिए समस्त प्रकार के तरीकों से दंडित भी किया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि ये बंदी रसोइए आवश्यक रूप में अच्छी तरह खाना पकाना जानते हों। सामान्यत: जिस प्रकार पुरूष रसोईकार्य के लिए स्वेच्छा से अपना विकल्प नहीं देते उसी प्रकार बंदी भी स्वेच्छा से इस कार्य को नहीं करना चाहते क्योंकि कारागृहों में भी इस कार्य को अभिकथित रूप में 'जनाना कार्य' समझा जाता है। किंतु फिर भी कारागृह जैसी एक लिंगी संस्था में किन्हीं व्यक्तियों को यह कार्य करना होता है, भले ही उक्त कार्य मर्दाना या जनाना

किस्म का हो। कुछ कैदियों को अपनी इच्छा या अनिच्छा से अपनी साथी बंदियों के लिए रसोइयों के रूप में काम करके खाना पकाना होता है।

कारागृह में खाना पकाना और खाना के संग्रहण के लिए प्रयुक्त पीतल के बड़े बर्तन एक ऐसे भोज के व्यापक आयोजन की हमें पुनः याद दिलाते हैं, जहाँ बड़ी संख्या में लोग भोजन करने के लिए आते हैं। वहाँ बड़े आकार के चूल्हे ऐसी भट्ठियों जैसे दिखाई देते हैं जिनमें कई टन कोयले और जलाऊ लकड़ी की खपत की जाती है। ऐसी भट्ठियों पर खाना पकाना एक कठिन कृत्य हो जाता है और इस कार्य में बंदी रसोइए पसीने से तर-बतर हो जाते हैं किन्तु इस कार्य का वितरण समान रूप से बंदी रसोइयों के कौशल और दिलचस्पी के अनुसार किया जाता है। कुछ बंदी-रसोइए साग-सब्जी बनाते हैं, अन्य दाल पकाते हैं और कुछ अन्य भात और चपातियाँ तैयार करते हैं।

भोजन का समय पर वितरण रसोइयों का एकमात्र दायित्व है। इन रसोइयों को बारबार विलंब से, असावधानी से खाना पकाने और खाना-वितरण में पक्षपात करने के कारण परिमंडल जेलरों की फटकार सुननी पड़ती है। यह जिम्मेदारी उन्हें अत्याधिक आलोचना का शिकार बनाती है किंतु यह उन्हें 'आहार-प्रदत्ता' की स्पृहणीय हैसियत का निश्चित रूप से उपभोग करने का अवसर प्रदान करती है। अधिक आहारी तथा लालची जिह्वाग्रस्त बंदी उनकी अनुकूलता तथा कृपादृष्टि के लिए ललचाते हैं और अनुनयपूर्वक नगण्य या महत्वपूर्ण अनुग्रह के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं।

शोधार्थी ने कुछ कारागृह रसोइयों का साक्षात्कार लिया किंतु उसने कार्य के प्रकार को कठिन, नीरस और जनाना निरूपित किया। उनमें से एक ने कहा "हमारी त्रासदी है कि हम बहुत-सों को अप्रसन्न करते हैं ओर केवल थोड़े से लोगों को प्रसन्न कर पाते हैं।" उनमें से कुछ ने कहा : "कोई भी दिन हमारे विरूद्ध शिकायतों के बिना नहीं गुजरता और पूर्णतः ऐसा कोई दिन नहीं, जब किसी न किसी रसोइए को डांटा या फटकारा न जाए।"

भोजन का वितरण:

कारागृह में भोजन का वितरण बिल्कुल दर्शनीय होता है। कैदी वृहत कक्षों के अभाव में सहवासी खुले प्रांगण में जमा होते हैं और जमीन पर दो समानान्तर कतारों में बैठते हैं। अपने भोजन का राशन प्राप्त करने के लिए वे अपने सामने तसला तथा कटोरी तैयार रखते हैं। तसले में वे पानी भरते हैं,

कटोरी में दाल भरवाते हैं और हाथों में छह रोटियाँ थामते हैं , जिन पर सब्जी रखी हुई होती है, जिस समय खाना वितरित किया जाता है, उस समय बंदियों का व्यवहार देखने योग्य होता है। कुछ (अपने मुख पर उदासी की रहस्यमय अभिव्यक्ति सहित) शांत मूक बने रहते हैं और कुछ भोजन के निरर्थक होने पर बड़बड़ाते हैं और कुछ भोजन का स्वाद लेते हैं कदाचित यह साबित करने के लिए कि भूख सर्वोत्तम साधन है। जब भोज्य पदार्थ अच्छी तरह से नहीं पकाए जाते और उनका वितरण असमान रूप में किया जाता है, तब झगड़े होने लगते हैं और दीर्घ दलीले दी जाती हैं। सामान्यत: बड़बड़ाने वालों को गार्ड जो आवश्यक रूप में घटना स्थल पर मौजूद रहते हैं , शांत करते हैं। ऐसा बहुत कम होता है जब तनाव विकृत रूप धारण करें और कारागृह में उच्च पदस्थ प्रशासकों का ध्यान आकर्षित करें।

खाना की निर्मम बर्बादी :

शोधार्थी को यह महसूस हुआ कि यदि कोई यथार्थ में खाना की बर्बादी देखने का इच्छुक हो, तो उसे उसका अनुभव प्राप्त करने हेतु कारागृह निश्चित रूप से जाना चाहिए। भोजन की बर्बादी एकदम बेदर्द दिखाई देगी। भोजन के सामान्य समय के पश्चात् कोई भी पूरे प्रांगण में फेंकी गई बची-खुची भोजन-मदों को पर्याप्त मात्रा में बिखरी हुई पाएगा। यह ठीक तरह से ज्ञात नहीं है कि बची-खुची चपातियों की बड़ी मात्रा का क्या किया जाता है। किंतु सहवासी प्रत्यर्थियों के द्वारा दिए गए विवरण से शोधार्थी को यह विश्वास हो जाता है कि अपशिष्ट भोजन या तो कारागृह के जानवरों के द्वारा खा लिया जाता है या जेलरो, रक्षकों (गार्ड) और झाड़ूकशों के कृपापात्रों और घरेलू पालतू पशुओं के द्वारा उनका उपभोग किया जाता है। इस बर्बादी के बहुत-सारे कारण हैं और यदि कोई (इस तथ्य के कारागृह प्रशासकों के स्पष्टीकरण की शैली में थोड़ा-बहुत)यह कहे कि कारागृह सहवासियों के लिए राशन की प्रमात्रा अपेक्षाकृत बहुत अधिक है, तो इसकी व्याख्या पर्याप्त रूप में नहीं की जा सकती। कदाचित भोजन को तैयार करने की उसकी घटिया गुणवत्ता इसका अत्याधिक महत्वपूर्ण कारण है।

भोजन के बारे में सहवासियों का मत

खाना की मदों की मात्रा और गुणवत्ता और उनको तैयार करने के बारे में व्यापक रूप में असंतोष, अप्रसन्नता और आलोचना व्याप्त है। भोजन के बारे में कैदियों की शिकायते निम्नलिखित थी :

स्वादहीनता और हानिकर स्वरूप (70.75%)

गलत ढंग से पकाया गया तथा क्षुधावर्धक गुणवत्ता में घटिया (54.50%), सड़ी-गली और अरूचिकर सब्जियाँ (70.75%), गुणवत्ता में खराब और पौष्टिक मूल्य में घटिया (40.50%), मानव उपभोग हेतु बिल्कुल ठीक नहीं (20.75%), अस्वच्छता पूर्वक पकाया गया तथा अनुचित रूप में वितरित किया गया (19.25%), मात्रा में अपर्याप्त (3.50%), और विविधता का अभाव (75.00%)।

इनमें से कुछ शिकायतों का उल्लेख संयुक्त प्रान्त जेल जाँच समिति की रिपोर्ट (1929) में पाया जाता है:

1. ''बारंबार की जानेवाली अतिप्रायिक शिकायतों में से एक शिकायत यह की गई है कि आटे में दूसरी चीजों की मिलावट की गई और यह कि उसमें पर्याप्त मात्रा में मिट्टी तथा उसी प्रकार के अन्य पदार्थ होते हैं जिससे चपाती काली और मोटी तथा खुरदरी बनती है।''(पृष्ठ 201)

2. ''चपातियों को उस समय नहीं परोसा जाता जब वे गर्म होती हैं। वे पत्थर जैसी ठंडी नहीं होती किन्तु गर्म भी नहीं रहतीं।''(पृष्ठ 201)

3. ''एक अन्य शिकायत भी इस आशय की है कि तौल में कम राशन जारी किए जाते हैं ....नियमों को सुसंगत रूप से तोड़ा जाता है और यदि कोई कैदी अपने राशन की तौल किए जाने की मांग करता है, तो न केवल उसकी प्रार्थना को ठुकराया जाता है बल्कि उससे दुर्व्यवहार भी किया जाता है।''(पृष्ठ 203)

4. ''यह सामान्य शिकायत रही है कि कैदियों को दी जानेवाली सब्जियाँ न तो अच्छी कोटि की होती हैं और न ही उन्हें ठीक तरह से पकाया जाता है। यह आरोप लगाया गया कि सामान्यत: ऐसे डंढल और पत्ते जारी किए गए जो कि केवल चारे के लिए उपयुक्त थे।''(पृष्ठ 207)

5. ''यह स्वतंत्र रूप में सुझाव दिया गया है कि सब्जियों के सर्वोत्तम अंश का उपभोग जेल अधिकारियों के द्वारा किया जाता है और उनके डंठल तथा पत्ते कैदियों को दिए जाते हैं।''(पृष्ठ 208)

6. ''हालांकि सब्जियों की खराब गुणवत्ता के बारे में जो शिकायतें है, वे अत्याधिक अतिश्योक्तिपूर्ण हैं, फिर भी वे वास्तविक हैं।''(पृष्ठ 208)

7. ''जेलों में खाना पकाये जाने के विरूद्ध अधिक आलोचना की गई है।''(पृष्ठ 209)

8. ''हमारी राय में खराब तरह से खाना पकाए जाने के बारे में जो शिकायतें हैं, वे पूर्णत: उचित

हैं।''(पृष्ठ 211)

''संयुक्त प्रान्त जेल सुधार समिति (1946) की रिपोर्ट में कैदियों के आहार में विविधता के अभाव का विशेष उल्लेख किया गया है उसमें कहा गया है कि कारागृह आहार में विविधता का होना अत्यंत आवश्यक है। समिति ने सिफारिश की है कि जेल आहार में विशेष रूप से कैदियों को दी जानेवाली दालों और सब्जियों में यथा संभव अधिकाधिक विविधता लायी जाए अर्थात् हर तरह की दालों और सब्जियों का प्रयोग किया जाए।'' (पृष्ठ 20)

यह सिफारिश भारतीय जेल समिति 1919-20 के द्वारा दिए गए प्रेक्षणों के प्रकाश में की गई। इस समिति ने कहा-''यह भले ही एक अनावश्यक सुधार प्रतीत हो किन्तु जब इस तथ्य पर ध्यान दिया जाता है कि कैदियों को वर्षों तक हर दिन एक ही प्रकार का भोजन करना होता है, तब यह अनुभूति होती है कि आहार सम्बन्धी अनिवार्य संरचना से विचलित हुए बिना कैदियों के स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से कुछ मात्रा में भोजन में विविधता लाने का अपना महत्व है।'' संयुक्त प्रान्त जेल जाँच समिति (1929) ने आहार में परिवर्तन के प्रश्न पर इसी तरह के प्रेक्षण दिए हैं। समिति ने इस चिकित्सकीय अभिमत की पुष्टि की है कि ''आहार कितना भी अच्छा हो यदि उसमें कभी कोई विविधता या परिवर्तन न लाया गया, तो उसकी गुणवत्ता समाप्त हो जाएगी।''(पृष्ठ 206)

किन्तु जिन सहवासियों ने कारागृह आहार के प्रति अपना संतोष व्यक्त किया उन्होंने कहा:

(1) खाना पर्याप्त रूप में अच्छा है। (15.25%)

(2) वह कारागृह में जैसा खाना दिया जाना चाहिए, उसके अनुरूप है।(6.80%)

(3) कारागृह से बाहर तो सामान्य जन जैसा भोजन करते हैं, उससे वह बेहतर है। (3.75%)

(4) अब जो भोजन कैदी करते हैं, वह कुछ वर्षों पूर्व कैदियों के द्वारा किए जाने वाले भोजन से अधिक बेहतर है। (18.25%)

पांच प्रतिशत सहवासी प्रत्यर्थियों ने अपने द्वारा लिए जानेवाले आहार के प्रति कोई अच्छी या खराब टिप्पणी नहीं की। कदाचित उन्होंने शोधकर्ता की नेकनीयती पर संदेह किया और उन्होने सोचा कि उनकी टिप्पणियाँ कारागृह के ऐसे सर्वोच्च अधिकारियों को दे दी जाएगीं जो सहवासियों के द्वारा किसी

आलोचना को नापंसद करते हैं।

आगे किए गए अन्वेषणों से यह पता लगा कि जिन सहवसियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत बेहतर थी, वे खाना पकाए जाने से संबंधित क्रिया के कटु आलोचक थे। उन्होंने शोधकर्ता से कहा कि जो खाना वे कारागृह के बाहर खाते रहे थे, वह कारागृह में बलपूर्वक खिलाए जानेवाले खाने से अधिक बेहतर था। कारागृह के 'निम्न कोटि के चापलूसों' के लिए खाना काम चलाऊ रूप में अच्छा था। खाने के बारे में कैदियों की आलोचना के बड़े मुद्दे में कारागृह आहार में विविधता हीनता, स्वाद रहितता, बाह्य रूक्षता, अस्वच्छ पकाना तथा आहार की अरूचिकर तथा पौष्टिकताविहीन गुणवत्ता शामिल थी।

सहवासियों ने खाने के बारे में अपनी आलोचना की पुष्टि में प्रत्येक खाद्य मद के बारे में महत्वपूर्ण रूप में प्रकाश डाला, उनके प्रत्युत्तर विध्वंशक रूप में आलोचना से परिपूर्ण थे। सामान्य शिकायतें थी कि ताजी सब्जियाँ तथा आलू, टमाटर, पत्ता गोभी, फूलगोभी, बैगन, कटहल, प्याज और भारत में सामान्य उपभोग की अन्य मौसमी सब्जियों की कैदियों को पूर्ति केवल बिरल रूप में की जाती है। किन्तु इन बंदियों की समझ में यह बात नहीं आती कि जब कारागृह के प्रक्षेत्र इनमें से बहुत-सी सब्जियाँ भरपूर मात्रा में उत्पादित करते हैं, तो ऐसी सब्जियों की पूर्ति कारागृह के रसोईगृहों को क्यों नही की जाती। बहुत-से सहवासियों (30.75%) को गोलमाल या घपला किए जाने का संदेह है और कुछ ने तो प्रत्यक्ष रूप में आरोप लगाया है कि कारागृह प्रेक्षेत्रों से सब्जियों का उपभोग या तो अधिकारियों के द्वारा किया गया अथवा उन्हें खुले बाजार में बेचा गया। सहवासियों के बीच अत्याधिक प्रचलित यह विश्वास था कि सहवासियों के उपयोग के लिए सब्जियाँ उस समय उपलब्ध करायी गईं जब वे सूख कर कठोर हो गईं तथा सड़ गईं। कारागृह भोजन-सूची में दोनों आहारों में सब्जियों की पूर्ति के लिए व्यवस्था रहती है, किंतु प्रशासक केवल नाममात्र को इस आवश्यकता की पूर्ति करते हैं तथा मात्र निर्ममतापूर्वक काटी गई तथा बुरी तरह से पकायी गई पत्तेदार सब्जियों की पूर्ति करते हैं। यह पर्याप्त रूप में बिडम्बना ही है कि सहवासियों के द्वारा जो कारागृह की आहार-सूची की सर्वोत्तम खाद्य मद (अर्थात् सब्जियाँ) पायी गई वह अरूचिकर या स्वादरहित थी। एक बंदी ने कारागृह में साग-पात की गुणवत्ता पर टिप्पणी करते हुए अभ्युक्ति दी सर्वाधिक स्वादिष्ट सर्वाधिक त्याज्य या घिनौना है। सहवासी के उपर्युक्त कथन के सार का अनुभव व्यक्तिगत प्रेक्षण के द्वारा

किया जा सकता है। अधिकांश कैदी बेहतर रूप में पकायी गई साग-सब्जियों की आवश्यकता से अधिक खा लेते हैं। बहुत-से उन सब्जियों को अधिक मात्रा में पाने के प्रयास में उत्तेजित होते देखे गए हैं। स्वादिष्ट सब्जियों वाला आहार एक ऐसी वस्तु है, जिसे कारागृह अपने बंदियों को कभी-कभार प्रदान करता है।

कारागृह की भोजन-तालिका में अनिवार्य खाद्य-मद दाल है। वह कारागृह की रोटियों को सुस्वाद बनाती है। उसके बारे में जो एकमात्र शिकायत है कि वह पानीदार, पतली और स्वादरहित है। जिस पर भी उसकी मात्रा के बारे में सामान्य संतोषप्रदता पायी गई। किंतु कुछेक सहवासियों (8.75%) ने शिकायत की कि उन्हें कभी-कभार जो दाल परोसी गई, उसके रसदार हिस्से में मृत कृमियों तथा लघु कीड़े-मकोड़ों (घुन) को अतराते हुए पाया। इसे उन्होंने जानबूझकर प्राप्त नहीं किया। उन्होंने इसकी बजह कारागृह राशन की सफाई की प्रक्रिया में असावधानी तथा उपेक्षा के भाव में निहित पायी। (97.50%) सहवासियों के द्वारा एक दिन में दोनों भोजनों में प्रत्येक कैदी को दी गई छह चपातियों को मात्रा में बिल्कुल पर्याप्त माना गया। केवल 2.50 प्रतिशत सहवासियों ने इन छह चपातियों को अपर्याप्त माना। अन्य सहवासियों के द्वारा इन बंदियों को पेट (अधिक खानेवालों) के रूप में वर्णित किया गया और अधिक भोजन करने की उनकी आदत के लिए कारागृह के बाहर के उनके पूर्ववर्ती अल्पघोषित जीवन को उत्तरदायी ठहराया गया। अशक्त और रूग्ण, बृद्ध, दंतविहीन तथा अरक्तक के लिए छह चपातियों का यह आहार पर्याप्त से भी अधिक था। वे खाते कम हैं और बर्बाद अधिक करते हैं। इनमें से कुछ सहवासी ऐसे दोस्तों को अपना भोजन दे देते हैं, जो उसे स्वीकार करना पसंद करते हैं। चपातियों की गुणवत्ता के बारे में सहवासियों की शिकायत थी कि अधिकांश चपातियाँ ठीक से पकायी नहीं गईं तथा उनको आधा-अधूरा सेका गया। और इसी रूप में उनमें स्वाद का अभाव पाया गया।

तेल में तला गया चावल केवल ऐसे लोगों के लिए विशेष आहार के रूप में है जो मुख्यत: चावल खाने वाले क्षेत्र के होते हैं अथवा जिनके दांत बेकार हो गए हों या जिन्हें स्वास्थ्य के आधार पर कारागृह चिकित्सा अधिकारी ने चावल का आहार निर्धारित किया हो। चावल को पकाने के बारे में शिकायते अधिक नहीं थीं, सिवाय इसके कि वह मोटे और घटिया किस्म का था और स्वाद में पनीला था। किंतु चावल न खानेवाले सहवासी इस तर्क को समझने में असमर्थ थे कि जब लगभग समस्त संयुक्त प्रांत वाले उसे स्वाद सहित खाते हैं तब चावल केआहार को क्यो विशेषाधिकार प्रदान किया गया।

'स्वतंत्रता दिवस', 'गणतंत्र दिवस', 'होली', 'दीपावली' और 'ईद' आदि पर जो विशेष आहार दिया जाता है, वह कारागृह की व्यंजन-सूची में एक स्वागत योग्य परिवर्तन है। ऐसे अवसरों पर कैदी अपनी पूर्ण संतुष्टि तक खाते हैं। यहाँ तक कि कुछ आवश्यकता से अधिक खा जाते हैं। संयुक्त प्रांत में शाकाहारी भोजन में हलवा और पूरी महत्वपूर्ण स्वादिष्ट मदें हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि जो कैदी हमेशा यथार्थ रूप में स्वादिष्ट भोजन के लिए लालायित रहते थे, इन स्वादिष्ट भोजन-मदों पर मधुमक्खियों जैसे टूट पड़ते थे। इन 'विशेष खाद्य दिवसों" पर कारागृह रसोईगृहों तथा बैरकों में पर्याप्त हलचल हुआ करती थी।

सहवासियों (बंदियों) के द्वारा स्वयं खाना पकाने की पद्धति-

भारत में कारागृहों के बारे में उपलब्ध साहित्य इस विषय पर कोई अनुभव-जन्य आधार-सामग्री नहीं मिलती कि कारागृह में जो आधिकारिक रूप में सहवासियों के द्वारा स्वयं पकाए जाने की पद्धति निर्धारित थी, वह अन्यत्र भी प्रचलित रहीं हो। प्रत्येक रिहायशी बैरक में (सामान्य दो से तीन सहवासियों के) कुछ समूहों की स्वयं अपना स्वादिष्ट भोजन अपने-आप पकाने की परंपरा अनुपम प्रतीत होती है। वह एक प्रकार का सहयोगात्मक कार्य था जिसमें सहवासी खुशी-खुशी कार्य में हाथ बंटाते थे। यदि एक पकाने का दायित्व संभालता था, तो दूसरा खाद्य पदार्थों की व्यवस्था करता था और तीसरा अग्नि के लिए ईधन जमा करता था। वे इस निषिद्ध गतिविधि में भाग लेते थे। उस समय उन्हें इस तथ्य की पूर्ण जानकारी होती थी कि कारागृह के नियम सहवासियों के द्वारा स्वयं अपना भोजन पकाने की अनुमति नहीं देते। ये सहवासी इस कानून को जानते थे किंतु अनुशासनिक परिणामों की चिंता किए बिना वे साहसपूर्वक अपनी तरफ से कुछ स्वादिष्ट खाद्य-मदें पका लिया करते थे। कभी-कभार ऐसें सहवासी रक्षकों, सिद्ध-दोष अधिकारियों और कारागृह के सब्जी के खेतों पर काम करने वाले सहवासियों के माध्यम से ताजी सब्जियाँ प्राप्त कर लेते थे। तथाकथित 'उच्च पदस्थ' 'विशेष सुविधा प्राप्त' या 'लाड़-प्यार प्राप्त' सहवासी कारागृह के रसोई-गृहों, भंडार कक्षों अथवा कारागृह-प्रक्षेत्रों से खाद्य-मदें चुराते थे। वे यह कार्य कारागृह रक्षको (गारद) से मिलकर करते थे। बाहर से कारागृह में सभी प्रकार की निषिद्ध वस्तुओं की तस्करी की जाती थी और कम वेतन-भोगी रक्षकों के सिवाय उन वस्तुओं की पूर्ति उच्च लाभ आधार पर कोई अन्य नहीं करता था। कारागृह में एक कहावत थी जिस पर अधिकांश कैदी विश्वास करते थे 'कि कोई भी कारागृह

में औरत को छोड़कर सब कुछ पा सकता है, बशर्ते कि उसके पास खर्च करने या लगाने के लिए (कारागृह की दीवार के भीतर या बाहर) पर्याप्त पैसा या संसाधन हो।'

आर्थिक रूप से खुशहाल और राजनीतिक रूप में अच्छी तरह सम्पर्क रखने वाले सहवासी अभिकथित रूप में कानूनी तथा गैरकानूनी दोनों माध्यमों के जरिए बाहर से खाद्य वस्तुओं की नियमित पूर्ति प्राप्त करते थे। इस प्रकार ये बंदी कारागृह की व्यंजन-सूची की नीरसता और अरूचि को भंग किया करते थे और नियमित रूप में या कभी-कभार कम से कम आंशिक रूप में जैसा भोजन वे करना चाहते थे, वैसी खाद्य-मदों का उपभोग करने की व्यवस्था किया करते थे।

चाय, वानस्पातिक तरकारियाँ, पूड़ियाँ, पराठे, हलवा, लप्सी कुछ ऐसी खाद्य मदें थीं, जिन्हें ये सहवासी शाम को तालाबंदी के पश्चात बैरक के भीतर कभी-कभार अपने शाम के खाने के रूप में पकाते थे। कैदियों का अग्नि-स्थल, चूल्हा या अंगीठी सामान्य प्रकार की नहीं थीं। ये दो ईटों को एक के बाजू में दूसरी रखकर अथवा टूटे हुए घड़े की तली में एक छोटा छिद्र करके बनाए जाते हैं। वे अपने आकार में विचित्र दिखाई देते थे किन्तु वे सहवासियों का प्रयोजन भली-भांति सिद्ध करते थे। करीब-2 हर रात्रि में 9 बजे से पूर्व प्रत्येक बैरक में लगभग दो या तीन स्थानों पर आग जलती हुई देखी जाती थी।

बैरकों के अंदर सिद्धदोष रात्रि चौकीदार (प्रहरी) इन लघु-रसोईघरों के प्रचलनों पर ध्यान नहीं देते थे क्योंकि वे भी इन स्वादिष्ट व्यंजनों को खाया करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि अन्य सहवासियों ने इन स्वयंवासी सहवासियों के इस प्रकार के कार्यकलापों से समझौता कर लिया था तथा वे प्राधिकारियों से उनकी शिकायते नहीं करते थे, हालांकि उनमें से कुछ कहते थे कि लघु अग्नि-स्थलों से प्रजलित धुआँ बैरक वातावरण दमघोटू तथा श्वासवरोधी बनाता था। यदि छापा न मारा जाए या आकस्मिक जाँच न की जाए तो इन अपने किस्म के रसोइयों की गतिविधियाँ किसी प्रकार कारागृह में उच्च्व अधिकारियों की जानकारी में नहीं आएँगी। किंतु यह कहना सर्वथा अवास्तविक होगा कि 'प्राधिकारियों' को इस तथ्य की जानकारी नहीं थी। वे निश्चित रूप से इसे जानते थे, किन्तु कैदी-समुदाय को प्रशासनित किए जाने के हित में वे इस लघु उल्लंघन के प्रति आत्म संतुष्टि का रूख अपनाते थे और अपेक्षाकृत उसको नजरअंदाज करते हुए सोया करते थे। केवल उस समय दोषी के विरूद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जाती थी, जब पारस्परिक सहमति से काम करने वाले रसोइयों के समूहों के बीच झगड़े के फलस्वरूप बैरक में हो हल्ला होता था। चूंकि कैदी

समाज के अनौपचारिक सामाजिक संगठन ने ऐसी गतिविधियों, जो सहवासियों को लाभदायक हो, के विरूद्ध शिकायत करना निषिद्ध किया हुआ है, अतः कुछ सहवासियों के द्वारा अपना खाना स्वयं पकाने की यह पद्धति बेरोक टोक चलती थी। इन स्वयं पाकी रसोइयों के द्वारा तैयार की गई विभिन्न खाद्य मदें अपने स्वाद के बारे में विशेष प्रकार की थी। उदाहरणार्थ कारागृह में चाय सामान्यतः दूध और चीनी के बिना होती थी। बगैर चीनी और दूध की चाय हममें से बहुतों के लिए स्वादरहित और अरूचिकर हो सकती है किन्तु कारागृह में बहुत से चाय के आदी बगैर चीनी की चाय या केवल नमकयुक्त चाय पीते थे। चाय पत्ती, संघनित दूध और चीनी कारागृह में मूल्यवान मदें थी और जो उन्हें अपने गर्म पेय के लिए प्राप्त नहीं कर सकते थे, वे चाय को केवल अमरूद या तुलसी-पत्रों में चाय उबालकर पीते थे। फिर भी पुनः सबेरे और शाम दोनों वक्त चाय पीने को मुक्त समाज में व्यक्ति की खुशहाल आर्थिक स्थिति को व्यक्त न करे जबकि चाय अब एक राष्ट्रीय पेय बन गया है किंतु कारागृह में केवल तथाकथित धनवान बंदियों की इस ऐश की वस्तु तक पहुँच थी। एक समूह के रूप में सिखों (सरदारों) को नियमित चाय -सेवनकर्ता के रूप में माना जाता था। उनमें से कुछ ने संबंधित अधिकारियों के समक्ष अपनी इस कमजोरी को स्वीकार किया और चाय को नियमित रूप से तैयार करने के लिए उनकी अनुमति प्राप्त की। कारागृह में हलवा घी-रहित या अधिक चीनी-विहीन होता था। वह स्वादिष्ट मिष्ठान का घटिया प्रतिस्थानी था जिसे अल्पभोगी भी कभी-कभार बाहर खाते थे। कारागृह में अचार इतने बिरल थे कि उसे खाने के लिए कैदी लालायित रहते थे। काली मिर्च या सूखी मिर्च प्राप्त करना कठिन था तथा सबसे बदतर यह था कि सभी सहवासी अपने उपभोग के लिए नमक रखने के लिए भी समर्थ नहीं थे।

कैदी जो कपड़े पहनते थे-

कैदियों के सांस्थानिक जीवन में भोजन के पश्चात कपड़ों का महत्वपूर्ण स्थान है कारागृह शब्दावली में कैदियों की पोशाक उनकी बर्दी होती है जिसमें विभिन्न वस्त्र होते हैं। और चूंकि वस्त्रों का चयन करने की स्वतंत्रता एक ऐसा विशेषाधिकार है, जो कैदियों को प्राप्त नहीं, जिस रंग, जिस प्रकार के और जितने कपड़ों को पहनने की उन्हें अनुमति होती है, इसका निर्धारण केवल उस तंत्र के द्वारा किया जाता है, जिसके वे अंततः एक हिस्सा बन जाते हैं। कैदी (सचमुच में कोई सचेष्ट प्रयत्न किए बिना) जितने कपड़े प्राप्त करते हैं, उनसे संभवतः निर्धन राहगीर को ईर्ष्या हो सकती है किंतु तथ्य यह है कि अधिकांश

कारागृह सहवासी (79.75%) अपनी बर्दी से नफरत करते हैं जो अपनी विचित्रता के कारण उनकी मुद्रा को सुस्पष्ट करती है। वस्त्रों की गुणवत्ता और मात्रा की मनोवैज्ञानिक अस्वीकृति के अलावा सहवासी विशेष रूप से कारागृह पोशाकों की घटिया सिलाई पसंद नहीं करते।

पोशाक के बारे में सहवासियों के विचार -

कारागृह बर्दी की पर्याप्तता या अपर्याप्तता पर टिप्पणी करने और पोशाकों के वितरण या प्रतिस्थापन की पद्धति से उद्भूत शिकायतों के प्रकार की व्याख्या करने के बारे में पूछे जाने पर सहवासियों की प्रतिक्रियाएँ नानाविध थी किंतु कुल मिलाकर संतुष्टि तथा पर्याप्तता का चित्र उभरकर सामने आया।

बहुत बड़े प्रतिशत (78.75%) में सहवासियों ने महसूस किया कि कैदी जितनी गरमी और सर्दी की पोशाकों के हकदार थे, उतनी पोशाकें उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बिल्कुल पर्याप्त थीं। उनमें से बड़ी संख्या में कैदी यह विश्वास करते प्रतीत हुए कि कारागृह के सहवासियों को जितनी संख्या में वस्त्र मिलते है, वह संख्या कारागृह के बाहर के सामान्य जनों के पास आमतौर पर होने वाले वस्त्रों की संख्या से बहुत अधिक हैं। जिस खादी के सूत से कारागृह वस्त्र बनाए जाते हैं, वे (74.25%) सहवासियों के द्वारा संतोषजनक रूप में पाए गए। आधे से कुछ अधिक (50.50%) सहवासियों ने उत्तर दिया कि कारागृह वस्त्र थोड़े अधिक टिकाऊ थे और वे शीघ्र नही फटते। उनमें से आधे से कुछ कम (48.00%) ने कहा कि फटे-पुराने कपड़ो को समय पर और बिना अधिक कठिनाई के बदल दिया जाता था। किंतु उनके कथन को काटने के लिए (51.25%) सहवासियों ने कहा कि वस्त्रों को आसानी से नहीं बदला जाता और उन्हें बदलने के समय का पालन पूर्णत: नहीं किया जाता। पूर्व कथन को काटनेवालों में से कुछ ने कहा कि अनेक बार सामान्य सहवासियों को घिसे-पिटे और जर्जर वस्त्र कई महीनों तक निरंतर धारण करने पड़े। कारागृह में पुरानी-पोशाकों को नष्ट करना विशेष रूप से आसान नहीं है। 15.89% सहवासियों ने वितरण और प्रतिस्थापन की पद्धति में पक्षपात किए जाने का आरोप लगाया। उनका कथन था कि केवल परिमंडल जेलर के कृपाकांक्षियों तथा मुँहलगों को, जब भी वे चाहे नए वस्त्र प्राप्त करने में सफलता मिलती है। यहाँ तक कि उन्हें सर्दियों में अतिरिक्त वस्त्रों को प्राप्त करने की सुविधा मिलती है। किंतु 'समय' का नियम उन पर लागू नहीं होता।

साधारण सहवासियों के लिए वस्त्रों के बदलवाने में उन्हें सर्किल जेलर या सहवासी प्रभारी

के समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना के अतिरिक्त कही अधिक अपमान सहन करना होता था। जिन्होंने पक्षपात किए जाने की शिकायत की थी, उन्होंने इसे भ्रष्टाचार की संज्ञा दी ओर कहा कि कैदियों को जो विधिक रूप में देय है, यह उसकी स्पष्ट मनाही है। किंतु फिर भी कारागृह में भेदभावपूर्ण परिपाटियों के ये आलोचक इस संबंध में औपचारिक रूप में अपना विरोध प्रकट नहीं कर सके। जिन्होंने कारागृह-वस्त्रों से घृणा की, उन्होंने (80.15%) कहा कि पोशाकों की सिलाई इतनी बुरी तरह से की गई थी कि वे सहवासियों के शरीर पर फिट नहीं बैठती थी। ऐसे ही एक सहवासी ने कहा कि ''कारागृह वर्दी में सहवासी ''रास्ते के मदारी के बंदर'' जैसे दिखाई देते थे।''

31% सहवासी कारागृह पोशाकों को उनकी विशिष्ट बनावट और रंग की बजह से पसंद नही करते थे। ये सहवासी इस तर्क को समझने में असमर्थ थे कि जब उन्हें पूर्णत: रक्षित कारागृह की दीवारों के वातावरण में रखा जाता है ओर जहाँ से निकल भागना करीब-करीब असंभव है, तब कैदियों को ऐसी वेशभूषा में क्यों रखा जाता है कि वे अलग दिखाई दें।

सहवासियों ने कैदियों के लिए पोशाक व्यवस्थाओं में दोषों को बताने के अलावा वहाँ वस्तु-स्थितियों को बेहतर बनाए जाने के लिए कुछ सुझाव भी दिए। सहवासियों के बहुत बड़े बहुमत (98.00%) का अभिमत था कि कैदियों को अपनी पोशाकों में कुछ फेर-बदल करने दिया जाए जिससे कि वे उनके शरीर पर फिट बैठ सकें। कुल सहवासियों (18.75%) ने हालांकि गुप्त रूप में अपनी पोशाकों में रद्दोबदल किया या सिलाई के छोटे-छोटे परिवर्तन किए। यदि वे प्रशासन के निकट संपर्क में न होते, तो उन्हें नियमों की अवज्ञा के लिए नरम और कठोर दोनों तरह से दण्डित किया जाता। इस असंगत प्रतीत होनेवाले विनियम में सुधार के लिए सहवासियों ने चाहा कि जो सहवासी अपनी पोशाकों में रद्दोबदल (आल्टर) कराते हैं, उनके इन कार्यों के लिए उनको प्रशासकों के कोप का भाजन न बनना पड़े। 76.25% सहवासी चाहते थे कि पोशाकों के टिकने का समय पहले से नियत न किया जाए क्योंकि कुछ सहवासियों के लिए कुछ पोशाकें उनकी समय-सीमा की समाप्ति तक नहीं टिक पाती। उन्होंने सुझाव दिया कि जब पोशाकें घिस-पिट जाएँ, तब उनको बदलवाने के लिए कैदियों की हकदारी का उदार उपबंध इस संशोधन सहित होना चाहिए कि संबंधित सहवासी के द्वारा फटे हुए और घिसे-पिटे वस्त्र परीक्षण के लिए सर्किल जेलर के सामने रखे जाएँ। (78.75%) सहवासियों के द्वारा सर्दी की पोशाकें संतोषजनक मानी गई

किन्तु इन सहवासियों ने यह भी कहा कि ठंड की ऋतु के ठिठुरन के दिनों में दो के बदले में तीन कम्बल समस्त सहवासियों (विशेष रूप से कमजोर अशक्त तथा वयोबृद्धों) को दिए जाएँ जिससे कि इस ऋतु के दौरान एक का प्रयोग विछाने वाले गद्दे के रूप में और शेष दो का प्रयोग रजाई के रूप में किया जा सके। 30.60 प्रतिशत सहवासी प्रत्येक पोशाक दो जोड़ियों में चाहते थे। 20.40% प्रतिशत सहवासियों ने समस्त सहवासियों के लिए समान प्रकार की बर्दी को वरीयता दी क्योंकि उन्होंने महसूस किया कि पोशाक में अन्तर होने से सहवासियों में वर्ग भावना पनपती है और इस वजह से कुछ सिद्ध-दोष अधिकारी उच्च-पदस्थों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। साबुन की पूर्ति के बारे में काफी बड़ी संख्या में (70.79%) सहवासियों ने महसूस किया कि कैदियों को दी गई साबुन की मात्रा उन्हें अपनी वर्दी को साफ-स्वच्छ रखने के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है।

प्रासंगिक रूप में सहवासियों की इन आपत्तियों और सुझावों में से कुछ वही थीं। जिनका संयुक्त प्रान्त जेल जांच समिति की रिपोर्ट (1929) और संयुक्त प्रान्त विभागीय जेल समिति की रिपोर्ट (1939) में विशेष उल्लेख किया गया था। वर्ष 1939 की विभागीय जेल समिति ने कदाचित ऐसी वर्दी (जो अपनी बनावट और दिखने में विचित्र और विशिष्ट हो) पहनने के कुछ कैदियों की आपत्ति के मद्देनजर यह प्रेक्षण दिया कि ''कारागृह में कैदी के द्वारा धारण की गई पोशाक यथासंभव उसके द्वारा कारागृह के बाहर साधारणत: पहनी गई पोशाक के करीब-करीब अनुरूप हो।'' (पृष्ठ 49) दो कम्बलों की अपर्याप्तता के बारे में सहवासियों की शिकायत से सहमत होते हुए सन् 1929 की जेल जांच समिति ने जोर देते हुए प्रेक्षण दिया कि ''आपवादिक अति सर्द लघु अवधियों के दौरान सिद्धदोष को गरम रखने के लिए दो कम्बल पर्याप्त नहीं थे।'' (पृष्ठ 214)

कारागृह में पोशाक के प्रति सजग सहवासी

जैसा कि कारागृह के बाहर के समाज में है, वैसा ही कारागृह में समस्त सहवासी उस प्रकार के नहीं बनना चाहते जिन्हें हम मौटे तौर पर ''पोशाक के प्रति सजग'' प्रकार के कहते हैं। कारागृह में जो सहवासी असाधारण रूप में इस संबंध में सतर्क रहते हैं कि वे क्या पहनते हैं, उनकी संख्या और भी लघु हो सकती है। अधिकांश कारागृह सहवासी (87.25%) अपने वस्त्रों, व्यक्तित्व या स्वरूप के बारे में अधिक ध्यान रखते हुए प्रतीत नहीं होते। उन्हें फिक्र करने के लिए अत्याधिक महत्व की बहुत अधिक वस्तुएँ

मिल जाती हैं। कुछ ने तो यह भी कहा कि कारागृह में पोशाक, स्वरूप या आचार-व्यवहार में विशिष्ट बनने का अर्थ जान-बूझकर परेशानी तथा कष्टों को आमंत्रण देना है। सब लोगों की नजर ऐसे सहवासियों पर टिक जाती है, कुछ तो उनकी ओर ईर्ष्या से भी देखते हैं। कारागृह के सर्वोच्च पदों पर आसीन पदाधिकारी भी ऐसी दोषरहित पोशाक धारण करने वाले सहवासियों पर निगरानीपूर्ण नजर रखते हैं और छोटे-मोटे अपराधों पर ऐसे सहवासियों को डाटा-डपटा तथा दंडित किया जाता है।

परिणामों के बावजूद थोड़ी संख्या (12.75%) में सहवासी अपने पहनावों का ध्यान रखते थे कारागृह की भाषा में उन्हें 'फैशन परस्त' कहा जाता था और उन्हें आसानी से उनकी पोशाक की मुग्धकारी सफेदी सहवासी समूह से खींचकर बाहर कर देती थी। ये सहवासी सामान्यत: वही थे जिन्हें अपने परिवार के लोगों के द्वारा कपड़ा धोने के साबुन और टिनोपाल की नियमित पूर्ति की जाती थी। कुछेक अपवादों सहित ये सहवासी अपने व्यवहार में सामान्यत: अभिमानी (दंभी) थे और वे ऐसे लोगों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे जो अपेक्षाकृत अस्वच्छ कपड़े धारण करते थे। वे बहुधा प्रांगण में यहाँ-वहाँ जाने अथवा इस बैरक से उस बैरक में जाने की बाल-प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते थे, केवल अपने वस्त्रों की अतिरिक्त सफेदी और उज्जवलता की ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही वे यह उछल-कूद करते थे। वे शायद चाहते थे कि सहवासी उनकी चर्चा करें ओर एक कैदी होते हुए भी उन्हें खुशकिस्मत के रूप में माना जाए। बहुत प्रकार की हानियों और वंचनाओं से घिरे समाज में ऐसे सहवासी दूसरों को ईर्ष्यालु और लघु होना महसूस कराते हैं। मात्र अपनी दोष-रहित पोशाक के द्वारा ये सहवासी पश्चातापी वातावरण में एक बड़ी विषमता या विरोध को प्रस्तुत करते थे। जहाँ अधिकांश सहवासी अस्वच्छ तथा मलिन वस्त्र धारण करते थे।

आवास, जिसे कैदी पाते हैं :-

कारागृह सिद्धदोषियों के लिए एक अस्थायी घर के समान है, जहाँ उनमें से प्रत्येक को आवास के रूप में एक खाट भर स्थान मिलता है। एक बैरक में कुछ गज वाला आवास 60 से लेकर 80 सहवासियों के लिए होता है, यही उनके भाग्य में रहता है। वे यहाँ भीड़भरा जीवन बिताते हैं जहाँ स्वामित्व की शब्दावली में वास्तव में प्रयोक्ता के हिस्से में कुछ भी नहीं आता। ऐसी आश्रय-स्थली में जहाँ समुदाय (कम्यून) प्रकार के जीवन संबंधी प्रयोग होते हैं, सहवासियों को अगले द्वार के अपने पड़ोसी का चयन करने

का कदाचित ही कोई विकल्प बचता है। व्यक्ति को अच्छे और बुरे लोगों के साथ रहना होता है।

कारागृह की बैरकों का प्राकृतिक पर्यावरण दमघोंटू ओर श्वास-रोधी होता है। इस पुरानी शैली के कारागृह में रिहायशी बैरकें इस प्रकार बनायी गई हैं कि उनमें सूर्य का प्रकाश और ताजा हवा का पहुँचना लगभग असंभव है। बैरकों की पार्श्ववर्ती दीवारों में पिंजरानुमा खिड़कियों में से सहवासियों को धूप तथा हवा दोनों नहीं मिल पाती। इन ''कैदीगृहों'' की बदतरीन (सबसे खराब) खासियत रात्रि में उनकी रोशनी (प्रकाश) की है। यह प्रकाश व्यवस्था घटिया से लेकर अत्यंत घटिया तक है। दो या तीन कम शक्ति वाले बल्ब जो कुछ बैरकों के छप्परों से लटकते थे, उनके आलोक से रात्रि में चीजें तो दिखाई देती थीं किंतु उस प्रकाश में आखों पर जोर दिए बिना कुछ भी पढ़ा नहीं जा सकता था चांदनीरहित कुछ रात्रियों में जब बिजली बंद हो जाती थी, तो अंधेरा संपूर्ण रिहायशी क्षेत्र को घेर लेता था और उस समय जब कारागृहके समस्त रिहायशी स्कन्धों में बिजली की व्यवस्था नहीं थी। उनमें से बहुतेरों में घटिया प्रतिस्थानी के रूप में लालटेनें बल्वों के स्थान लिया करती थीं। इन बैरकों में हरिकेन लालटेनों के द्वारा किया गया आलोक ऐसा खराब होता था कि दस गज से दूर की कोई वस्तु देखना कठिन था। उस दूरी से परे धुंधले के सिवाय और कुछ नहीं दिखाई देता था।

जब बैरकों में जीवन अपनी पूर्णता पर होता है, वहाँ सामाजिक वातावरण बाजार जैसा बन जाता है। सहवासियों की उच्चतम स्वर की कानाफूसी पाषाण दीवारों से टकराकर लौटती है और अपनी ऊँची ध्वनि से सब कुछ दबा देती है। एकान्तता प्रत्यक्षत: नदारत रहती है और प्रत्येक दूसरों के लिए दिखावों के रूप में होता है। सहवासी एक दूसरे के इतने करीब होते हैं कि थोड़ी सी काना-फूसी अगले पग पर सो रहे सहवासी के द्वारा स्पष्टत: सुनी जा सकती है। सहवासियों के समस्त कार्यकलापों पर न केवल सिद्धदोष रात्रि-प्रहरियों की नजर होती है बल्कि बैरकों में रहने वाले समस्त व्यक्ति भी उन्हें देखते हैं। मात्र सुरक्षा कारणों से कैदियों को एकान्तता (गोपनीयता) के अधिकार से वंचित किया जाता है और उन्हें निरंतर सुरक्षा-कर्मियों की निगरानी के अधीन रखा जाता है। तालाबंद बैरकों में भी सहवासी रतजगे के अधीन रखे जाते हैं। रात्रि में नौ बजे के बाद जब बत्ती चली जाती है, और जब सहवासियों को ऐसा माना जाता है कि वे सो जाएंगे, भले ही उन्हें नींद आए या न आए, सहवासियों को अपने आबंटित स्थान से हटना पूर्णत: निषिद्ध है।

सहवासी सोते समय अपने साधारण निजी सामान को अपने सिरहाने के समीप रखते हैं। भूख से त्रस्त और दरिद्र कारागृह समुदाय में छोटी-मोटी चोरी विशेषकर खाने की चीजों की चोरी की संभावना हमेशा अधिक होती है और इसलिए कारागृह के अधिकांश सहवासी (69.15%) अपनी बैरकों के अन्य सहवासियों की ओर संदेहपूर्ण नजरों से देखते हैं। ''अपराधियों के समुदाय में प्रत्येक संभावित चोर है।'' यह अभ्युक्ति एक अतिसतर्क सहवासी की है, जो अपनी भौतिक वस्तुओं की रखवाली अति सावधानीपूर्वक करता था। कुछ प्रशासकों ने शोधकर्ता से कहा कि चोरियों की सहवासियों की आशंका कारागृह में उनके व्यक्तिगत अनुभवों पर आधारित थी अतः वह निर्मूल नहीं थी। उन्होंने बहुधा ऐसी शिकायतों पर कार्रवाई की है।

कारागृह में या बैरकों के भीतर सफाई तथा स्वच्छता के बारे में अधिकांश कारागृह आगन्तुकों को शिकायत करने हेतु कुछ नहीं मिला उन्होंने वहाँ की चीजें बहुत अधिक अच्छी और सुखकर लगीं। किंतु कारागृह में गंध के बारे में एक बात निश्चित है, वह विचित्र और अत्याधिक जी मिचलाने वाली है। रिहायशी वैरकें विचित्र प्रकार की गंध से परिपूर्ण थीं, जिसे बाहरी आगन्तुक अधिक समय तक सहन नहीं कर सकते थे। कारागृह बैरकों में स्थायी तौर पर तम्बाकू के धुएँ, सहवासियों के पसीने और प्रस्वेद की बदबू व्याप्त रहती है और जैसे ही कारागृह आगन्तुक इनमें अपना कदम रखते है, वैसे ही वह दुर्गन्ध उनकी नाक का स्वागत करती है। इसके अतिरिक्त वातावरण को और अधिक प्रदुषित करने के लिए बैरकों के भीतर करीब-करीब खुले हुए रात्रि-शौचालय मानवीय कचरे की बदबूदार गंध अत्याधिक फेंका करते हैं। सचमुच में कंठभर श्वास लेना कठिन हो जाता है। कारागृह बैरकों के वातावरण का उपसंहार करते समय यह यथार्थ नहीं होगा कि कोई शोधकर्ता उसे साधारणतः वीभत्स की संज्ञा दे। कारागृह में ऐसे स्थान थे जहाँ बदबूदार गंध नाक और कंठ में घुटन पैदा करती थी और सम्पूर्ण पर्यावरणिक प्रदुषण किसी के जीवन को दयनीय बनाता था।

कैदियों के लिए काम (कार्य) का कार्यक्रम

जब क्रिया या कार्यकलाप के बिना जीवन के बारे में सोचा नहीं जा सकता, तब कार्य मानव अस्तित्व का एक अनिवार्य अंग बन जाता है। मानव जो कार्य करता है, उससे जीवन सार्थक बनता है इसलिए नहीं कि वह उसे रोजी-रोटी कमाने में सहायता देता है, बल्कि इसलिए कि वह शारीरिक तथा

मनोवैज्ञानिक संतुष्टि प्राप्त करने में सहायक होता है। कैदियों के लिए कार्य पुरस्कार तथा दंड, दोनों है। जहाँ तक वह कैद के अनियत आलस्य और ऊबन का प्रतिकारक है जिसके परिणामस्वरूप वह घंटों पश्चन्दर्शन में डूबा रहता है अर्थात् पुरानी घटनाओं के बारे में सोचता रहता है, वहाँ तक वह एक पुरस्कार है।[5] जहाँ तक वह सजा के अनिवार्य अंग के रूप में है, उनसे निम्न और कड़ी मजदूरी, दुर्वह और नीरस तथा ऊबनभरा कार्य कराया जाता है, जिससे उन्हें कष्ट, अपमान और हुजूरियापन की प्रतीति हो सके।[6] वहाँ तक वह एक दंड है। सिद्धदोष श्रम की यह पुरूष्कार तथा दंड की धारणा कार्य को एक ओर एक ऐसा अभिकर्ता बनाती है जो कैदी को अपना व्यक्तित्व संतुलित बनाए रखने में सहायक होता है, और दूसरी ओर उन्हे उनके अपराधों की सजा भुगतने में सहायक होता है।[7]

कारागृह में कैदी जो कार्य करते हैं, उसे अब अतिरिक्त दंड के रूप में नहीं माना जाता है। उसे कैदियों के पुनर्वास में सहायता-कार्य के लिए उनके प्रशिक्षण, अच्छी कार्य आदतें डालने और सुस्ती के हानिकर प्रभावों को रोकने के साधन के रूप में लिया जाता है[8] सुथरलैंड तथा क्रेसे ने इस आधार पर कैदियों के लिए कार्य के दण्डात्मक स्वरूप की पुनर्वासात्मक उपयोगिता को उचित ठहराया है कि उससे उनमें उद्योग (परिश्रम) आज्ञा-पालन, अध्यवसाय और अनुरूपता की आदतें विकसित होती हैं।[9] लॉपेज रे ने एक कदम आगे बढ़कर कहा कि आधुनिक दंड-विज्ञान के संघात के अधीन कैदी जो कार्य करते हैं, उसे अभी हाल ही में वास्तव में अनुशासन ओर कारागृह की व्यवस्था की अवज्ञा किए बिना उन्हें कारागृह में जिस व्यवहार को मिलने की आशा की जाती है, उसके एक भाग के रूप में या उनके अधिकार के रूप में माना जाने लगा है। [10]

कलेम्मेर ने कैदियों के कार्य को अपने विशुद्धत: व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा। उन्होंने राय दी कि ''कैदी कार्य करते हैं क्योंकि वे कार्य करना चाहते हैं और कारण सरल है।''[11] क्लेम्मेर ने जिन सुधारालयों का अध्ययन किया, उनके अधिकांश सहवासी जानते थे कि न केवल उबाऊ और अत्याधिक दुख को बढ़ानेवाला है, बल्कि वे यह भी जानते थे कि यदि वे मानसिक तथा शारीरिक रूप में व्यस्त नहीं रहेंगे, तो वे संभवत: आगे चलकर टूट जाएंगे।

कारागृह प्रशासकों के दृष्टिकोण से दलील देते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के कारागृह ब्यूरों के तत्कालीन निदेशक ने 1937 में एक अत्याधिक महत्वपूर्ण अभ्युक्ति दी : ''कारागृह में सबसे बड़ी

आवश्यकता कार्य की है। यदि मुझे इस शर्त पर किसी कारागृह का प्रबंधन करना पड़े कि मैं एक वस्तु का अनुशासन के सहायक के रूप में केवल एक वस्तु का उसके आरोग्यकर मूल्य के लिए सुधार के अभिकरण के रूप में अपना चयन करूँ तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कार्य केवल प्रत्यक्ष रूप में अच्छी तरह ईमानदारी से कार्य का चयन करूँगा।''[12] सीक्ज ने अभिरक्षण के दृष्टिकोण से कार्य के महत्व के बारे में तर्क दिया ''अभिभावक संस्था में अपराधी कुछ-कुछ ऐसे हठी (अड़ियल) बेटे की स्थिति जैसा है, जिसे सख्त पिता के द्वारा बलपूर्वक कार्य करने के लिए बाध्य किया गया हो। कष्टदायक उपद्रवी युवक अपनी आजीविका भले ही अर्जित न करे किन्तु वह कम से कम एक सत्य श्रम पर लगाया जाएगा, और यदि उसकी कमाई उसके खर्च के कुछ भाग की पूर्ति करे, तो वह कुछ भी न होने से बेहतर है। हमें इससे आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि हमारी उपमा में माता-पिता आर्थिक स्वार्थ, आध्यात्मिक मुक्ति और ऐसी बुनियादी विरोधी भावना के साधन के रूप में कार्य की क्षमता में निष्ठा के विचित्र सम्मिश्रण के द्वारा अभिप्रेरित है कि कोई भी व्यक्ति अपने मस्तक के पसीने के द्वारा स्वयं की आजीविका अर्जित करने के भार से बचना नहीं चाहिए।''[13]

कारागृह श्रम का उद्देश्य:-

रखरखाव की लागत को पूरा करने के लिए सम्पूर्ण या आंशिक सम्पूर्ति में कैदी जो कार्य करते हैं, उसे दंड-विज्ञान की शब्दावली में 'कारागृह श्रम' कहा जाता है। इसे केवल किसी उपयुक्त आर्थिक कारण से अनिवार्य नहीं समझा जाता है। वास्तव में यह कारण भी विद्यमान रहता है। किंतु समानरूप से यह महत्वपूर्ण विचार भी रहता है कि कैदी व्यस्त और कार्य में संलग्न रहें और ऐसा होने से प्रशासन के लिए ऐसी सभी समस्याओं का सामना न करना पड़े जो ऐसे व्यक्तियों के समूह की अधिक समय तक की निष्क्रियता के फलस्वरूप पैदा होती है, जो व्यक्ति सामान्यत: अपने व्यवहार तथा दृष्टिकोण में अपराधी प्रवृत्ति के होते हैं और जो किसी समय शरारत कर सकते हैं और अव्यवस्था ला सकते हैं।

गिल्लिन ने सारगर्भित रूप में उसके प्रशासकीय, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा पुर्नवासी कार्यो का वर्णन किया है। उन्होंने उसे

(1) कारागृह अनुशासन की समस्या परिवर्तित करने में एक प्रधान तत्व;

(2) कारागृह को आत्मनिर्भर बनाने के एक प्रधान साधन ;

(3) दण्ड के एक उचित साधन;

(4) कैदियों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षक तथा परिरक्षक ;

(5) समाज में लौटने के लिए कैदी को तैयार करने के एक साधन; और

(6) श्रम के रूप जो निजी उद्योग से होड़ नहीं करेगा अर्थात उचित श्रम के रूप में माना ।[14]

अन्तर्राष्ट्रीय दांडिक तथा सुधारात्मक आयोग (जिनेवा, 6 जुलाई, 1951) ने कारागृह श्रम के निम्नलिखित उद्देश्यों पर अपनी सहमति जताई : उसे

(क) यथासंभव कारागृह से रिहाई पर ईमानदारी से अपना जीवनोपार्जन करने की कैदी की क्षमता बनाए रखना चाहिए अथवा उसमें वृद्धि करना चाहिए,

(ख) उपयोगी कारीगरी (ट्रेड) में, विशेष रूप में युवा कैदियों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए ।

अत: संक्षेप में कारागृह श्रम अनुशासन तथा मनोबल को बढ़ावा देने तथा सहवासियों को न केवल कारागृह जीवन की ठहरी हुई निष्क्रियता तथा ऊबन के विध्वंशक प्रभाव से बचने के लिए कार्य करने बल्कि कुछ ऐसे ट्रेडों और पेशों में अच्छी आदतों तथा हस्तकौशलों को सिखलाएगा, जो थोड़े से जेब खर्च और अपने निर्वाह के लिए आंशिक लागत की पूर्ति के अलावा उनके भावी आर्थिक पुनर्वास में भी सहायक सिद्ध होगा ।[15]

भारतीय संदर्भ में कारागृह श्रम सैद्धान्तिक रूप में उसी तरह के उद्देश्यों के लिए है, जिनके लिए साहित्यिक (आलंकरिक) रूप में परिश्रम प्राप्त करने का प्रयास किया गया । इस देश में उसके ध्येय और उद्देश्यों पर बहुत समय तक बहस होती रही और विशेषज्ञ समिति ने पहले ही अपना निर्णय स्पष्ट तथा असंदिग्ध शब्दों में दे दिया है। लाभ के लक्ष्य को केवल गौण महत्व दिया गया है। ''कारागृह श्रम के प्रवरण की दृष्टि में केवल लाभ प्राप्त करने को यथार्थ उद्देश्य के रूप में नहीं रखा जा सकता। अपेक्षाकृत उद्देश्य अपराधियों को सुधारा जाकर आगे अपराधों की रोकथाम का होना चाहिए।''[16]

भारतीय जेल समिति (1919-20) के निम्नलिखित प्रेक्षणों ने इस दृष्टिकोण को अत्याधिक स्पष्ट कर दिया है:

1.''तत्काल लाभ के विचार के सिवाय समस्त विचारों को ठुकराने से कारागृह श्रम कैदी के शोषण के बराबर है। ऐसी उपेक्षा से कैदी को सुधारने और समाज के उपयोगी सदस्य के रूप में उसे बदलने की कोई

भी सम्भावना समाप्त हो जाती है।''(पृष्ठ 117)

2. ''कारागृह में कराए जानेवाले श्रम का मुख्य उद्देश्य कैदी में सुधार लाने का होना चाहिए।''(पृष्ठ 118)

3. ''श्रम के ऐसे समस्त रूप जो विशुद्धतः प्रयोजनरहित और अनुर्वर हो, उनसे परहेज किया जाए।''(पृष्ठ 118)

4. ''श्रम का चयन यथासंभव कैदियों का प्रशिक्षित करने, सुधारने और उनकी सहायता करने के लिए किया जाए।''(पृष्ठ 119)

समिति ने कारागृह श्रम के सुधारात्मक पहलू को कैद की सजा के आजकल के दर्शन के उद्देश्य अर्थात् सामाजिक रूप में रचनात्मक कार्य-अनुभव के माध्यम से कैद के सुधार करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उजागर किया है। समिति का यह विचार इस भाव के अनुरूप है कि सुधारात्मक संस्थाए कभी लाभ कमाने वाली संस्थाएं नहीं बन सकती क्योंकि कल्याण और व्यवसाय को एक साथ संयुक्त नहीं किया जा सकता। किंतु इस पर जोर नहीं देना है कि कारागृह आत्मनिर्भर न बने। यह केवल यह महसूस कराने के लिए है कि कारागृह की आर्थिक आत्मनिर्भरता को किसी भी स्थिति में कारागृह की कैद की सजा के अंतिम लक्ष्य की उपेक्षा न करने दी जाए।

संयुक्त प्रांत जेल उद्योग जाँच समिति (1956) ने इस दावे का समर्थन किया : ''सरकार किसी भी परिस्थिति के अधीन पहले लाभों के बारे में आग्रह न करे अन्यथा कैदियों को सुधारने तथा उनका पुनर्वास करने के हमारे समस्त प्रस्ताव लाभों के लिए कारागृह प्रशासन के द्वारा ठुकरा दिए जाएंगे। सुधारण और पुनर्वास अन्य सभी कारणों से सबसे ऊपर होना चाहिए।''[17]

कारागृह सुधार के बारे में विशेषज्ञ समितियों जिन्होंने भारतीय जेल समिति (1919-20) के द्वारा की गई सिफारिशों के प्रकाश में कारागृह श्रम के मौजूदा संगठन का परीक्षण किया, कि सर्वसम्मति के सारांश को निम्नलिखित रूप में दर्ज किया जा सकता है-

(1) यह कि दण्डात्मक उपाय के रूप में कारागृह में कार्य की संकल्पना दण्ड प्रशासन, जो अन्य बातों के साथ-साथ कैदी के सुधारण के द्वारा आगे अपराधों की रोकथाम पर बल देता है, के वर्तमान संदर्भ में पुरानी प्रतीत होती है,

(2)कारागृह श्रम का स्वरूप और अन्तर्वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो कैदियों की रूचि को जगाए और

उन्हें अपनी शक्तियों का प्रयोग स्वेच्छा से करने के लिए प्रेरित करे,

(3) कारागृह श्रम का उद्देश्य कैदियों में परिश्रम की आदत डालने और किए गए कार्य के बारे में सीखे गए कौशलों के अर्जन के लिए अवसर प्रदान करने हेतु उन्हें प्रशिक्षित करने का होना चाहिए ,

(4) कैदियों को ऐसे श्रम साध्य कार्य समनुदेशित किए जाएँ जिससे कि उनकी रिहाई पर जीविकोपार्जन के अवसरों को पर्याप्त रूप में बढ़ावा देने हेतु उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण मिल सके,

(5) निवारक दण्ड, उत्पादकता और लाभकारिता का पूर्ववर्ती पारंपरिक प्रयोजन कैदियों को काम पर लगाने के लिए बिल्कुल उद्देश्य के रूप में नहीं रह गया है।

सहवासियों के श्रम के निर्धारण के लिए मापदंड:-

कारागृह में पहले पहल आये बंदी को कम से कम एक सप्ताह या वैसी ही अवधि तक सामान्यत: कोई औद्यौगिक कार्य नहीं सौंपा जाता। उसे कारागृह में मुलाहिजा के रूप में ज्ञात प्रेक्षण पर रखा जाता है। (एक सप्ताह से एक महीने तक विस्तृत) इस अवधि के दौरान नयागतों को किसी प्रकार का कोई उद्योगेतन हल का कार्य सौपा जाता है। उन्हें सामान्यत: निम्न कर्तव्य करने जैसे- झाड़ने, पुष्प-बागों को साफ करने, बर्तन साफ करने, कार्यालय के फर्नीचर की धूल हटाने, मिट्टी खोदने और मनों अनाज से भरे बोरों को ढोने के लिए कहा जाता है। सहवासी को ये अरूचिकर और भारी कार्य अपमान का पहला आधात प्रदान करते हैं। वह कारागृह श्रम की शुरूआत को एक अशुभ प्रारंभ के रूप में पाता है और कारागृह जीवन के अनुवर्ती अपमानों के लिए मानसिक रूप में तैयार हो जाता है।

इस प्रकार कारागृहों में मुलाहिजा एक शिक्षा देने की प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कैदियों को किसी प्रत्यक्ष (खुल्लमखुल्ला) आलोचना या नाराजगी प्रदर्शित किए बिना बहुत से मेहनती तथा कष्टदायक कार्य करने के लिए तैयार किया जाता है। इस प्रकार वे यह सीखते हैं कि कारागृह के जीवन में विसम्मति के लिए कोई स्थान नहीं है और बंदीकर्ता का आदेश एक समादेश है।

जब यह चरण समान होता है, तब कारागृह का अधीक्षक यथा साध्य निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखकर कुछ कार्य निर्दिष्ट करता है :

(क) किसी विशेष प्रकार के कार्य के लिए सहवासी की शारीरिक या मानसिक क्षमता ;

(ख) किसी उद्योग, कारीगरी या सहवासी की पारिवारिक वृत्ति का अनुभव या पिछला प्रशिक्षण ;

(ग) किसी विशेष प्रकार के कार्य के लिए सहवासी की अभिरूचि या झुकाव; और

(घ) पुर्नवासात्मक संभावनाएँ अर्थात् क्या सहवासी को कारागृह से अपनी रिहाई पर विशेष प्रकार के कार्य जिसके लिए अपनी कैद की अवधि के दौरान उसने प्रशिक्षण प्राप्त किया हो, पर आसानी से लगाया जा सकता है।

किन्तु वास्तविक व्यवहार में प्रशासनिक औचित्य के सिवाय कोई अन्य कारक सहवासियों को अधीक्षक के द्वारा काम वितरित किए जाने के उसके निर्णय को प्रभावित नहीं करता। कार्य के लिए शारीरिक और मानसिक क्षमता की पहली शर्त पर भी हमेशा महत्वपूर्ण ध्यान नहीं दिया जाता। श्रमसाध्य कार्यों पर संलग्न शारीरिक रूप में अशक्त तथा मानसिक रूप में कमजोर सहवासियों को पाना कारागृह में कोई विरल नजारा नहीं है। व्यावहारिक तौर पर सहवासी अपने कार्य के बारे में कुछ भी नहीं कह सकते-किसी विशेष प्रकार के कार्य के लिए उनकी अभिरूचि या झुकाव का प्रश्न या उन पर उनको संलग्न किए जाने का प्रश्न ही नही उठता। पूर्ववर्ती प्रशिक्षण या किसी उद्योग, कारीगरी या पारिवारिक वृत्ति के अनुभव की शर्त निरर्थक हो जाती है क्योंकि भारतीय कारागृहों में केवल कुछ प्रशिक्षित तथा विशेषज्ञ व्यक्ति पहुँच पाते हैं। भारत में अधिकांश कैदियों में ऐसे सहवासी शामिल हैं, जो अधिकतर अकुशल या अर्धकुशल कृषीय कार्य करने की क्षमता रखते हैं। ऐसे सहवासियों की संख्या भी आवश्यक रूप में पर्याप्त नहीं होती जो नाई, धोबी, मेहतर, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, माली, तेली और बुनकर आदि जैसे पारंपरिक पारिवारिक वृत्तियों में कुशलतापूर्वक सज्जित होकर कारागृह में आते हों तथा सांस्थानिक रखरखाव के लिए उसी प्रकार के कार्य को कर सकें।

सहवासियों के लिए कार्य की पुनर्वासात्मक उपयोगिता का विचार कार्य का प्रभावी मापदंड की कमी नहीं हो सकती - अधिकांश भारतीय कारागृहों में कार्य पर लगाना, जहाँ औद्योगिक कार्य को अब भी पुराने तथा पारंपरिक प्रतिमानों पर आयोजित किया जाता है, जिसका सीखना शायद ही खुले समाज में किसी लाभप्रद औद्योगिक रोजगार को प्राप्त करने में सिद्धदोष को परिसम्पत्ति के रूप में होगा। सहवासियों के भावी आर्थिक पुनर्वास के दृष्टिकोण से हमारे कारागृह बहुत घटिया रूप में संगठित है। अपने ऐसे समस्त सहवासियों के लिए कारागृहों में सीमित ट्रेड या व्यावसायिक विकल्प हैं, जो हजारों की संख्या में होते हैं। इस स्थिति में प्रशासकों के लिए कारागृह नियम-पुस्तक के नियमों के पूर्णतः अनुरूप कार्य वितरण करना

व्यावहारिक रूप में असंभव हो जाता है। कारागृह के प्रशासक सहवासियों के श्रम-टिकटों को भरते समय अपने ध्यान में केवल यह प्रभावी कारण रखते हैं कि सहवासी उसे निर्दिष्ट किए गए कार्य को करने के लिए शारीरिक और मानसिक रूप में सक्षम हैं अथवा नहीं। शेष सभी कारण महत्व में गौण हैं और उन्हें व्यवहार में केवल उस समय लाया जाता है जब वे प्रशासकीय रूप में उचित पाए जाएँ।

इस कारागृह में सामान्य परंपरा युवा तथा शारीरिक रूप में सक्षम सहवासियों को कठिन परिश्रम के कार्य निर्दिष्ट करने की रही है। वृद्ध, अशक्त और कमजोर को कम श्रम-साध्य मझोले तथा हल्के किस्म के कार्य करने को दिए जाते हैं। नए सहवासियों के श्रम-टिकट भरते समय कारागृह अधीक्षक निः संदेह उनसे किसी विशेष कार्य को उनके द्वारा वरीयता दिए जाने के बारे में पूछताछ करना पसंद करते हैं किंतु सीधे-सादे और विनीत के लिए, जैसे कि अधिकांश कैदी शुरू-शुरू में होते हैं, अंत में सरकारी तंत्र का निर्णय ही निर्धारित करता है कि किसको कौन-सा कार्य करना है। केवल विरल रूप में कुछ उग्र स्वभाव वाले सहवासी अपनी पसंदगियों का आग्रह कर पाते हैं किंतु उस स्थिति में कम से कम शुरूआत में, सहवासियों की इच्छाओं को सामान्यतः स्वीकृत नहीं किया जाता। कारागृह के पदाधिकारी सहवासियों के आग्रह का अर्थ आदेशों के प्रति उनकी अवज्ञा के रूप में लगाते हैं। वे तुरंत अपराधी की प्रार्थना को केवल इस वजह से ठुकरा देते हैं कि वे यह पहला पाठ सीखें कि कारागृह में आधिकारिक आंदेश वास्तव में कैदियों की पसंदगी के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहने देते और आदेशों का इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक पालन करना होता है।

इस प्रकार के कार्य-नियतन में सहवासियों की कार्य के प्रति उनकी पसंदगी या नापसंदगी के प्रश्न का शायद ही कोई महत्व होता है। नियम यह है कि कारागृह-श्रम किए जाने के लिए होता है, भले ही वह अरूचिकर या दुर्वह हो, लाभकारी हो या अलाभकारी हो। कारागृह के सर्वसत्तात्मक वातावरण में केवल थोड़े-से बुद्धिहीन सहवासी कार्य करने से मना करते हैं या अपनी पसंद के कार्यो को नियत किए जाने का प्रयास करते हैं। बहुत बार ऐसे जिद्दी कैदियों को कठोर दंड दिया जाता है। किंतु बाद में इस बात पर ध्यान दिए बिना कि उनको किस प्रकार दण्डित होना पड़ा। कारागृह में फिर भी ऐसे अपनी किस्म के शहीद बचे रहते हैं, जो कुछ निम्न प्रतिष्ठा वाले और अलाभकारी कार्य करने से मना करते हैं। उदाहरणार्थ कारागृह के कुछ रूढ़िवादी उच्चजाति के सहवासियों ने नम्रतापूर्वक फर्श को झाड़न, रसोईघर के वर्तन साफ

करने और अनाज के बोरे उठाने से इन्कार किया है। किंतु कारागृह प्रशासकों ने ऐसे सहवासियों की प्रार्थना को जातिगत भावना को ध्यान में रखकर मान लिया।

कार्य का विकल्प चुनने में कारागृह के युवा सहवासी कार्यशाला में कार्य करने के अधिक उत्सुक थे क्योंकि वहाँ अतिरिक्त कार्य करने पर मजदूरी (वेतन) मिलता था और कार्य औद्योगिक और अर्ध-औद्योगिक प्रकार का होता था। अधिक उम्र वाले झाड़ने-बटोरने, मिट्टी-धावन, सफाई और पुष्प बागवानी जैसे कार्य को तरजीह देते थे। कारीगर समूह के सहवासी बढ़इयों लुहारों, कुम्हारों, नाइयों और बुनकरों के रूप में कार्य करना पसंद करते थे। शिक्षित सहवासियों ने सहवासी लिपिकों , स्टाफ अर्दलियों, सिद्ध-दोष-शिक्षकों, गोदाम-प्रभारियों, चिकित्सालय-परिचरों जैसे आधिकारिक किस्म के कुछ कार्य करने का प्रयत्न किया।

कारागृह श्रम का कार्य-पर-प्रशिक्षण, कार्यक्षमता और उत्पादन-आवश्यकताएँ-

कारागृह में सभी प्रकार के श्रम के लिए नवसिखियों को एक माह की या वैसी ही अवधि के लिए रियायत दी जाती है। इस अवधि के दौरान उन्हें सहवासी कार्य पर्यवेक्षकों (जिन्हें कारागृह में छुटिवान कहा जाता है) के द्वारा कार्य करना सिखाया जाता है। केवल तैयारी की इस अवधि के पश्चात् उनसे कच्चे माल को बर्बाद किए बिना कार्य-आवश्यकताओं की पूर्ति किए जाने की अपेक्षा की जाती है। सहवासियों से जिस मात्रा में कार्य किए जाने की अपेक्षा होती है, उसके मापदंड कारागृह नियम-पुस्तक में निर्धारित किए गए हैं और ऐसे मापदंड हर ट्रेड (कारीगरी) के लिए अलग-अलग हैं। प्रत्येक सहवासी के लिए निर्धारित मूल न्यूनतम कार्य की पूर्ति करना कारागृह में अत्यावश्यक है, जहाँ सहवासी की दक्षता या अदक्षता की परख सामान्यत: किए गए कार्य की गुणवत्ता से नहीं बल्कि किए गए कार्य की मात्रा से की जाती है। इस उजरती कार्य पद्धति की वजह से कारागृह सहवासी पहले केवल दिन के लक्ष्य को पूरा करने की सोचते है और वह भी कार्य में चूक के लिए जेलर के सामने पेश किए जाने से बचने के लिए। कार्यशालाओं में जहाँ सहवासी अतिरिक्त कार्य के लिए हकदार नहीं होते ऐसा शायद ही होता है कि सहवासी आधिकारिक रूप में आवश्यकता से अधिक उत्पादन करें। केवल उन कार्यशालाओं में अतिरिक्त कार्य का प्रश्न उठता है जहाँ सहवासी मजदूरी के अथवा किसी प्रकार के भौतिक प्रोत्साहन के हकदार होते हैं। किंतु उन कार्यशालाओं में भी सभी सहवासी केवल पैसे के लिए अथवा मक्खन के छोटे से पैक के लिए अधिक उत्पादन करने की

परवाह नहीं करते। पैसा कमाने वाले सामान्यतः वे सहवासी होते हैं , जिन्हें अपने परिवारजनों से पैसों की नियमित पूर्ति नहीं की जाती और जिनके पास कारागृह कैंटीन से खाद्यमदों और सामान्य सौदे की वस्तुएँ की खरीदारी के प्रयोजनार्थ पैसों की कमी होती है। हालांकि जेल से बाहर के स्वतंत्र समाज में मजदूरी अदायगी की दरों की तुलना में कठिन परिश्रमी सहवासियों को की गई अदायगियों का आर्थिक मूल्य महत्वहीन (नगण्य) होता है, फिर भी कारागृह संसार में ये छोटी धन राशियाँ भी सहवासियों को बहुत बड़ी दिखाई देती हैं। अधिकांश शारीरिक रूप में सक्षम, सक्रिय और दक्ष दीर्घावधिक कैदी ऐसी शालाओं में कार्य करना पसंद करते हैं जहाँ कार्य पारिश्रमिक प्रकार का होता है। इन कार्यशालाओं में कार्यरत सहवासी आगे आने वाले वर्षों के दौरान अपने संबंधित कार्यो पर बने रहना चाहते हैं। दूसरे भी जो इन आकर्षित स्थानों के इच्छुक होते हैं , वे उन्हें पाने के लिए भरसक प्रयत्न करते रहते हैं। उनमें से कुछ को उन्हें पाने में सफलता मिल जाती है जिन्हें दूसरे बहुत से सहवासी उन्हें पाने में असफल रहते हैं ये सहवासी अपने विफलीकरण के कारण कारागृह के उच्च अधिकारियों, विशेष रूप से अधीक्षक के द्वारा अभिकथित रूप में अपनायी जानेवाली भेदभावपूर्ण विधियों की आलोचना करते हैं। वे कारागृह के कार्य-नियतन की व्यवस्था, जिसमें प्रियपात्र मजदूरी अर्जित करते हैं और अपात्र अपनी शक्तियाँ निरर्थक खोते रहते हैं , विरूद्ध एकान्त में अपनी शिकायत या आपत्ति व्यक्त करते हैं।

सहवासी श्रम के विक्रय और क्रय की अनौपचारिक पद्धति-

जबकि कारागृह में औपचारिक शर्त यह थी कि सभी सहवासी अधिक नहीं तो उन्हें निर्दिष्ट श्रम की आवश्यक मात्रा पूर्ण करेंगे। किसी को भी औद्योगिक या अर्ध-औद्योगिक कार्यशालाओं में आसानी से सहवासियों के श्रम के क्रय-विक्रय का तीव्र अनौपचारिक व्यवसाय देखने को मिलेगा। कुछ सहवासी जिनको कभी-कभार साक्षात्कार मिलता या कोई साक्षात्कार नहीं मिलता और जिनके पास हमेशा पैसों की कमी रहती थी वे अतिरिक्त कार्य करते थे और उसे अपनी कार्यशालाओं के ऐसे आलसी और निष्क्रिय सहवासियों को बेच देते थे जो अपनी कार्य-आवश्यकताएँ या तो आंशिक रूप में पूर्ण करते थे अथवा जो बिल्कुल कार्य नहीं करते थे सहवासी श्रम की यह खरीद-फरोख्त केवल उन कार्यशालाओं में होती थी जहाँ अतिरिक्त कार्य के लिए सरकारी अदायगी की कोई व्यवस्था नहीं होती। अदायगी का तरीका आवश्यक रूप में केवल नकद रूप में नहीं होता वह नकद रूप में उस समय होता था जब खरीदारों के पास विधिक रूप

में पैसा होता था और जो रक्षकों की सक्रिय सहायता से कारागृह में चोरी से लाया जाता था ऐसे अनाधिकारिक मजदूरी-उपार्जक अपना कठिनाईपूर्वक अर्जित पैसा या तो जुआबाजी में या रक्षकों (गार्डों) के माध्यम से बाह्य बाजार से दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने में खर्च करते थे। रक्षकों को सामान्यत: ऐसी प्रत्येक मद, जो वे जरूरतमंद सहवासियों के लिए गुप्त रूप में देते थे, के लिए 25 प्रतिशत कमीशन मिलता था।

सहवासी श्रम के संभावित क्रेता बहुधा हृष्ट-पुष्ट सहवासी हुआ करते थे। किंतु अशक्त, रूग्ण या वृद्ध सहवासियों को संभाग्य क्रेता नहीं माना जाता था। इच्छा से या अनिच्छा से उन्हें अपना काम पूर्ण करना पड़ता था। पूरा न करने की स्थिति में उन्हें प्रभारी जेलर के सामने लाया जाता था और उन्हें अस्वस्थता, शारीरिक असमर्थता या वृद्धावस्था के आधार पर छूट दिए जाने के लिए प्रार्थना करनी पड़ती थी। उन्हें अपूर्ण श्रम करने के लिए सामान्यत: क्षमा कर दिया जाता था, बशर्ते कि वे संबंधित अधिकारी के प्रति आदर भाव रखते हों और सीधेसादे हों। सुस्त युवक जो कार्य नहीं करना चाहते थे, उनके लिए स्थिति बहुत कठिन थी। उन्हें अपना पूर्ण श्रम न करने के लिए डांटा-फटकारा जाता था, अपशब्द सुनने पड़ते थे अथवा अपमान सहन करना होता था। बहाने चाहे यथार्थ हों या अयथार्थ, उन्हें अधिकारी के क्रोध तथा दंड से नहीं बचा सकते थे। दंड दिए जाने के आसन्न भय से दूसरे सहवासियों से श्रम क्रय करने और सरकारी आवश्यकता की पूर्ति करने के सिवाय उनके सामने और कोई दूसरा रास्ता नहीं होता था। आर्थिक रूप से खुशहाल नए सहवासी अपने आगमन के तत्काल बाद ट्रेड की बारीकियों और युक्तियों को सीखते थे। ऐसा सहवासी कारागृह के सहवासियों के बीच ऐसे निम्न सहवासियों को पाते थे जो गरीब होने के कारण, कठिन परिश्रम करते थे, अधिक उत्पादन करते थे और अपना अतिरिक्त उत्पादन बेच देते थे। इस प्रकार तथाकथित धनवान सहवासी कारागृह में तथाकथित गरीब की सेवाएँ खरीदते थे और अपना समय आराम से काटते थे। कार्य के घंटों के दौरान उन्हें या तो आराम करते हुए या अपने कार्य स्थलों के भीतर या बाहर घूमते हुए पाया गया।

कुछ मामलों में इन श्रम क्रय करने वाले सहवासियों ने अपने कार्य-पर्यवेक्षकों (छुट्टीवान) को घूस दी और अपने कार्य से मुक्ति पायी। छुट्टीवानों ने प्राप्त किए गए पैसों या माल के बदले में अतिरिक्त कार्य या तो स्वयं किया या दूसरों से कराया जिससे कि ऐसे सहवासियों का आवश्यक श्रम कोटा पूर्ण हो सके।

श्रम को क्रय करने के अलावा कार्य को किए बिना अपने श्रम को पूर्ण किए जाने की कुछ अन्य युक्तियाँ थीं। चोरी करना भी एक तरीका था। किंतु यह अधिक से अधिक एक या दो बार ही चल सकता था। यह एक जोखिम भरा साहसिक कार्य था क्योंकि श्रम-चोरों का शीघ्र पता लगा लिया जाता था और उन्हें कठोरता से दण्ड दिया जाता था। अतः यह पद्धति बहुत असमान्य थी और केवल मूर्ख नवसिखिए ऐसा करते थे। लैंगिक संतुष्टि प्रदान करना एक दूसरा तरीका था, किंतु इसके लिए किसी को किसी का सहनशील संगी बनना होता था और अपने सम्मान तथा आत्म प्रतिष्ठा को बेचना पड़ता था। कुछ कार्यशालाओं में अनुसंधान-कर्ता की जानकारी में कुछ उदाहरण लाए गए थे, जिनमें तथा कथित बाल-पालकों (सक्रिश समानलिंगियों के लिए प्रयुक्त शब्द) को अपने लिए तथा अन्य सहनशील संगियों के लिए कार्य करते हुए पाया गया। किंतु ये दोनों युक्तियाँ, जहाँ तक कारागृह में उनके घटित होने का संबंध है, केवल आपवादिक थी।

कारागृह श्रम की प्रासंगिकता पर सहवासियों के विचार -

कारागृह में सहवासियों के रहने की अवधि के दौरान लिए गए व्यावसायिक प्रशिक्षण का कारागृह के बाहर के उनके जीवन में क्या कोई विशेष प्रासंगिकता होगी, इस प्रश्न के प्रत्युत्तर में सहवासियों की प्रतिक्रियाएँ थीं:

(1) मैं जो काम करता हूँ उसका रिहाई के पश्चात् मेरे जीवन में कोई अर्थ नहीं होगा (90.00%) क्योंकि

(क) मैं श्वेतकालर कार्य का पता लगाऊँगा (8.50%)

(ख) मै किसी लघु व्यवसाय में जाना चाहूँगा और एक किराने की दुकान खोलूगाँ। (10.50%)

(ग) मै आगे अपना अध्ययन जारी रखूंगा। (1.70%)

(घ) मै अपना पैतृक (वंशानुगत) पेशा करने लगूँगा। (8.50%)

(ङ) मै अपनी भूमि की देखभाल करूंगा और फिर से एक कृषक बनूंगा। (67.00%)

(च) मै इतना बृद्ध हो गया हूँ कि रिहाई के पश्चात कोई कार्य नहीं कर सकता। (6.50%)

(2) मै जो कार्य करता हूँ वह प्रासंगिक सिद्ध हो सकता है (10.00%) क्योंकि

(क) यहाँ अर्जित विशेष औद्योगिक कौशल किसी औद्योगिक प्रतिष्ठान में कोई कार्य दिलाने में

सहायक हो सकते हैं। (5.00%)

(ख) प्रशिक्षण की पर्याप्तता या अपर्याप्तता को छोड़कर मै सोचता हूँ कि मैं अपने ग्राम में एक छोटा सा कुटीर उद्योग स्थापित कर सकता हूँ, यदि सरकार से कुछ आर्थिक सहायता मिल सकेगी। (4.00%)

कारागृह के भीतर श्रम कार्यों के महत्व के बारे में सहवासियों के प्रत्युत्तर निम्नलिखित थे:

(1) कार्य हमें व्यस्त रखता है और ऊबन, नीरसता और अनावश्यक चिन्ता से मुक्त करता है (17.76%)

(2) औद्योगिक इकाइयों में कामकाज भावी आर्थिक पुर्नवास के लिए एक प्रशिक्षण है। (10.00%)

(3) पारिश्रमिक कार्यों के करने से अत्यावश्यक लघुधनराशियाँ अर्जित करने में हम समर्थ हो सकते हैं। (23.21%)

(4)कारागृह श्रम अरूचिकर आगे कोई काम न दिलानेवाला और शारीरिक रूप में कमजोर बनाने वाला है। (50.25%)

कारागृह श्रम की वर्तमान व्यवस्था के पुनर्गठन के बारे में सुझाव देने के लिए कहे जाने पर प्रत्यर्थियों ने निम्नलिखित सुझाव दिए :

(1) दंड-अभिमुखी श्रम कार्य, जो थकान पैदा करने वाले, भविष्य में कोई कार्य न दिलाने वाले, मान हानि करने वाले और आर्थिक रूप से अलाभकारी हैं, उन्हें तत्काल बंद कर दिया जाना चाहिए। (95.00%)

(2)कारागृह उद्योगों को यांत्रिकीकृत किया जाए और बिजलीचालित कुटीर उद्योगों के प्रतिमान पर पुर्नगठित किया जाए। (67.75%)

(3) समस्त कार्यरत सहवासियों को ''कामगारों'' के रूप में माना जाए और किए गए कार्य की गुणवत्ता और मात्रा के अनुसार प्रचलित बाजार मजदूरी अदा की जाए। (65.00%)

(4) श्रम कार्यों के आबंटन में सहवासी की अभिरूचि, कौशल योग्यता को आवश्यक महत्व दिया जाए (30.25)

(5)जो सहवासी अपने अनुशासन और मेहनत के द्वारा अपनी योग्यता प्रमाणित करें, उन सभी को प्रोत्साहन के रूप में अतिरिक्त-छूट स्वीकार्य की जाए। (30.75%)

(6)मजदूरी के माध्यम से अर्जित 70 प्रतिशत धनराशि सहवासी के व्यक्तिगत खाते में जमा की जाए

ओर उसे केवल रिहाई के समय अदा किया जाए। (15.75%)

(7) इस एकमुश्त राशि के अतिरिक्त उन सभी सहवासियों को प्रवीणता प्रमाण-पत्र दिया जाए जिन्होंने अपनी सजा के अंत में औद्योगिक कारीगरी या पेशे में पर्याप्त प्रशिक्षण या कौशल प्राप्त किया हो। (24.50%)

(8) उच्चतर शैक्षणिक अर्हताओं (हाईस्कूल और ऊपर के) वाले कैदियों को उन कार्यों पर काम करने के लिए लगाया जाए, जो उन्हें कुशल कामगार बनाएँ। (17.75%)

(9) 20-30 वर्ष के उम्र समूह में युवा अपराधियों को मुख्यत: इस दृष्टिकोण से इंजीनियरी और अन्य छोटे ट्रेडों में प्रशिक्षित किया जाए कि वे कारागृह से छूटने के पश्चात् कारखानों में काम पाने में समर्थ हो सके। (17.25%)

(10)व्यावसायिक प्रशिक्षण केवल ऐसे सहवासियों को दिया जाए, जो शहरों या नगरों के हों और जेल से रिहाई पर जिनके द्वारा वही ट्रेड अपनाए जाने की अधिक संभावना हो।

(11) कृषि तथा उद्यानिकी (बागवानी) कार्य में वैज्ञानिक प्रशिक्षण केवल उन्ही कैदियों को दिया जाए, जो पेशे से कृषक हों। (40.50%)

ऊपर प्रस्तुत की गई आधार-सामग्री से यह बिल्कुल स्पष्ट हुआ है कि अधिकांश सहवासी उन्हें दिए गए कार्य से खुश नहीं हैं। उनके द्वारा दिए गए सुझाव महत्वपूर्ण हैं और उनपर गंभीर रूप से विचार किए जाने की आवश्यकता है। कारागृह उद्योगों के यंत्रीकरण के माध्यम से श्रम कार्यों को सम्पूर्ण औद्योगिक अनुकूलन प्रदान किए जाने की उनकी मांग सही है क्योंकि वह न केवल कार्यालय श्रम से संबंध ओछेपन और ऊबन से मुक्ति दिलाएगी बल्कि उससे सहवासियों की उत्पादकता और लाभकारिता भी बढ़ेगी। किंतु कारागृह उद्योगों का यंत्रीकरण किए जाने और कारागृह सहवासियों को पूर्ण मजदूरी की अदायगी किए जाने का प्रश्न एक जटिल प्रश्न है। सर्वप्रियता और व्यावहारिकता में हमेशा मेल नहीं खा सकता और इसलिए इन दोनों प्रश्नों पर उनके सम्पूर्ण रूप में परीक्षण किए जाने की आवश्यकता है।

कारागृह उद्योगों का यंत्रीकरण:-

कारागृह श्रम की बुद्धिसंगत व्याख्या किए जाने और विद्युत चालित तथा तीव्रगामी औजारों तथा उपकरणों का प्रयोग करने के प्रश्न पर हाल ही में अपराध शास्त्रीय तथा दंडशास्त्रीय विचार-विमर्श में

चर्चा की गई है और सरकार ने कारागृह सुधार समिति नियुक्त की है। इस विषय पर व्यापक रूप में बहुत प्रकार के विचार व्यक्त किए गए। किंतु गुण-दोषों का परीक्षण किये जाने के पश्चात सर्वसम्मति यह रही कि सरकार समस्त महत्वपूर्ण कारागृहों में वर्तमान औद्योगिक कर्मशालाओं के यंत्रीकरण के लिए पर्याप्त धनराशि प्रदान करे जिससे कि युवा तथा शारीरिक और मानसिक रूप में सक्षम अपराधियों को ऐसे पर्याप्त रूप में अच्छे औद्योगिक प्रशिक्षण तथा कौशल सहित समाज में वापस भेजने के अंतिम प्रयोजन के लिए यांत्रिक शिल्पों तथा कारीगरी में औद्योगिक प्रवीणता से सुसज्जित किया जा सके और जिस प्रशिक्षण तथा कौशल की बदौलत उन्हें कुल काम मिल सके और वे अपना जीविकोपार्जन ईमानदार तथा कर्मठ नागरिकों के रूप में कर सकें।[18] यह सिफारिश, जहाँ तक उसकी पुनर्वासात्मक उपयुक्तता का संबंध है, पूर्णत: ठीक है। किंतु इस दिशा में उतावली में कदम उठाए जाने से पहले वर्तमान दण्डात्मक वातावरण में इस प्रस्ताव के औचित्य पर अधिक चिन्तन करते हुए विचार किया जाए। इस मुद्दे से घनिष्ट रूप में संबंधित प्रश्न इस प्रकार हैं :

(1) ऐसे प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक प्रारंभिक आर्थिक तथा वित्तीय निवेश।

(2)उत्पादों के विक्रय के लिए बिजली, कच्चे माल और तैयार बाजार की उपलब्धता।

(3) उत्पादन पहलू का लाभ-हानि तथा गुणवत्ता मात्रा विश्लेषण।

(4) अपराधी कामगारों के चयन, प्रशिक्षण और प्रशिक्षता का पहलू।

आर्थिक निवेश:-

जहाँ तक बिजली चालित चक्रों तथा यंत्रों के द्वारा कारागृह कर्मशालाओं के हस्तचालित औजारों तथा उपकरणों को बदले जाने के लिए प्रारंभिक आर्थिक निवेश का प्रश्न है, वहाँ तक इस दिशा में विधियों की कमी इस प्रयोजन के लिए एक बड़ी बाधा है। आज भी कारागृह और कैदी राज्य सरकार के कार्यों की प्राथमिकता में गौंण विषय हैं। कारागृह प्रशासन के लिए जो धनराशि निर्दिष्ट की जाती है, वह अत्याधिक कम है। वह कैदियों को न्यूनतम अच्छा जीवन प्रदान करने के लिए भी कम पड़ती है। इस स्थिति में वर्तमान कारागृह कर्मशालाओं तथा उद्योगों के यंत्रीकरण के लिए आवाज उठाना व्यर्थ है क्योंकि ऐसी मांग स्थिति की वास्तविकता को नजरअंदाज करती है। यदि राष्ट्रीय तथा राज्यिक योजना प्रलेखों में विभागीय प्राथमिकताओं की सूची में कारागृहों और कैदियों का सार्थक उल्लेख नहीं होता, तो कारागृह प्रशासक अपने

तंगहाल बजट से वर्तमान कारागृह उद्योगों का आधुनिकीकरण और पुनर्गठन करना असंभव समझेंगे।

बिजली, कच्चे माल और बाजार की उपलब्धता:-

कारागृह उत्पादों के विक्रय के लिए बिजली, कच्चे माल और तैयार बाजार की उपलब्धता का प्रश्न समान रूप से महत्वपूर्ण है। जब राज्य में वर्तमान बिजली संकट सार्वजनिक तथा निजी उद्यमों के सामान्य उत्पादन को प्रभावित कर रहा है, तब यह संदिग्ध है कि कारागृह उद्योगों को अबाध बिजली पूर्ति की व्यवस्था वर्तमान संदर्भ में की जा सकेगी। हम विद्युत पूर्ति (यदि कभी कारागृह उद्योगों को की जाए) के परिणामों का अनुमान लगाएँ, यदि यह पूर्ति अचानक रोक दी जाए। क्या इससे कैदियों की बलात् अस्थायी छंटनी नहीं होगी ?

अभाव और कमी के इन दिनों में कच्चे माल की उपलब्धता एक अन्य कठिनाई है। ऐसी सरकार से जो सरकार गरीबों को खाद्य-मदों की पूर्ति करने में भी बुरी तरह असफल रही हो उससे कारागृह उद्योगों के लिए कच्चे माल की नियमित पूर्ति किए जाने की आशा करना यदि बेतुकी नहीं, तो अवास्तविक अवश्य है, अत: प्रश्न यह है कि वाणिज्यिक माल के उत्पादन के लिए केवल उन्हीं कारागृह उद्योगों का आधुनिकीकरण किया जाए, जिनके लिए खुले बाजार में बहुतायत से कच्चा माल उपलब्ध हो।

कारागृह उत्पादों के लिए बाजार का सृजन अधिक कठिन नहीं है बशर्ते कि कारागृह उद्योग मध्य तथा निम्न वर्ग के लोगों के उपभोग के लिए मदें विनिर्मित करें। यहाँ उत्पादों की गुणवत्ता तथा मूल्य मौजूदा खुले बाजार की मूल्य-रेखा के अनुपात में होना चाहिए। कारागृह उत्पादों की कीमत, गुणवत्ता ओर टिकाऊपन का प्रचार किया जाना पूर्णत: अनिवार्य है क्योंकि सामान्य जन इस प्रकार विश्वास करते हैं कि कारागृह उत्पाद न तो सस्ते होते हैं और न गुणवत्ता में बेहतर होते हैं। उपभोक्ता बाजार पर कब्जा करने के लिए प्रत्येक जिले या बड़े नगर में भी एक कारागृह डिपो होना चाहिए और उस स्थान के समस्त महत्वपूर्ण बिक्री केन्द्रों में या बाजारों में कुछ दुकाने होनी चाहिए।

लाभ-हानि तथा गुणवत्ता-मात्रा विश्लेषण:-

कारागृह उद्योगों के यंत्रीकरण को एक लाभकारी आर्थिक स्थिति के रूप में तैयार करने के लिए उत्पादन की लाभ-हानि तथा गुणवत्ता-मात्रा का विश्लेषण अधिक वांछनीय है। उत्पादन इस प्रकार आयोजित किया जाए कि पर्याप्त संख्या में गुणवत्तापूर्ण मदें विनिर्मित की जा सकें जो बिक सके तथा

यथोचित लाभ दे सकें। इसको सुनिश्चित किए बिना, सारा प्रयास व्यर्थ साबित होगा क्योंकि उससे हानि होगी और प्रशासन वित्तीय भार तथा हानि पहुँचाने वाली औद्योगीकृत कारागृह कर्मशालाओं को बंद करने के लिए विवश हो जाएगा इसके अतिरिक्त अपराधियों के द्वारा विनिर्मित उत्पादों के विक्रय से लाभ अर्जित करने का प्रश्न स्पष्ट सैद्धांन्तिक विरोधाभास से परिपूर्ण है। चूंकि लाभ के उद्देश्य से कामगारों का शोषण होगा, अत: लाभ का उद्देश्य कारागृह उद्योगों के संगठन में एक बड़े निर्णायक तत्व के रूप में नहीं होना चाहिए। भय यह है कि ऐसे अवसर पर जब कारागृह प्रशासक उत्पादन की गुणवत्ता या मात्रा में विशिष्ट गिरावट देखेंगे, वे कैदियों की शारीरिक और मानसिक क्षमता से परे उनसे कार्य करवाने के लिए प्रेरित हो जाएंगे। इससे निश्चित रूप से कारागृह सहवासियों का शोषण होगा और उससे कारागृह श्रम के सुधारात्मक मूल्य को आघात पहुँचेगा। कारागृह श्रम के पुर्नवासात्मक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस तरह के आकर्षण की उपेक्षा की जानी चाहिए। किंतु प्रश्न यह है कि यदि कारागृह उद्योग लाभ न देगें तथा कारागृह विभाग के अल्प संसाधनों के लिए तथा राज्य के राजकोष पर भी सफेद हाथियों के रूप में बोझिल तथा हानिकर बने रहेंगे, तो क्या कारागृहों को लघु उद्योगों के रूप में विकसित करना अर्थपूर्ण होगा।

अपराधी कामकारकं का चयन, प्रशिक्षण और प्रशिक्षुता:-

जब हमारे अधिकांश कैदी अशिक्षित, अकुशल हैं तथा स्वभाव से अपनी कारागृह की सजा की अवधि के दौरान कोई नया कौशल या कारीगरी सीखने के विरूद्ध है, कारागृह से रिहाई के पश्चात् जो वे पहले से जानते हैं और भविष्य में व्यवहार में लाने की आशा करते हैं, कारागृहों के यंत्रीकृत उद्योगों में अपराधी कामगारों के चयन की प्रक्रिया अत्याधिक सावधानीपूर्ण तथा कठोर होनी चाहिए। प्रथमत: औद्योगिक व्यवसायों में प्रशिक्षण के लिए केवल ऐसे सहवासियों का चयन किया जाए जो लंबी सजाएँ भोग रहे हैं। और इनमें भी केवल उन सहवासियों को चुना जाए जो शारीरिक रूप में सक्षम हो तथा कुशल कारखाना कामगारों (कारीगरों) के समान औद्योगिक प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए मानसिक रूप में तैयार हों। 20 से 40 उम्र समूह के बीच के ऐसे युवा सहवासियों को अधिमानत: कारागृह की यंत्रीकृत कर्मशालाओं में कौशलपूर्ण कार्यों का प्रशिक्षण ओर शिक्षण दिया जाए, जो लंबी सजा काट रहे हों। पूरी तरह से कारीगर बनने के लिए प्रशिक्षण आवश्यकताओं को अधिक बुद्धिसंगत तथा वैज्ञानिक रूप में निर्धारित किया जाए। कार्य से पहले के व्यावसायिक प्रशिक्षण का उद्देश्य कार्य-आदतों, कार्य-कौशलों, कार्य-निष्पादन, कारीगरी-

बुद्धिमत्ता और शिल्पकारिता विकसित करने के अलावा औजारों, उपकरणों और यंत्रों के प्रचालन के शिक्षण का होना चाहिए।

विभिन्न प्रशिक्षण परियोजनाओं के स्थायी आयोजन के लिए संस्था में पर्याप्त कर्मचारी और सुविधाएँ होना चाहिए। प्रशिक्षण परियोजना पर खर्च की गई लागत को कारागृह कारखानों के अपराधी कामगारों को प्रशिक्षण के प्रयोजन के लिए अनिवार्य निवेश के रूप में माना जाए। सिद्धदोष कारीगरों के प्रशिक्षण चरणों में प्रशिक्षुता काल, कार्य पर प्रशिक्षण, कारीगरी और व्यवसायों में, जहाँ तक वे कार्य और प्रशिक्षण के लिए सांस्थानिक स्थितियों तथा उपलब्ध सुविधाओं से मेल खाएँ, व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्मिलित किए जाएँ।

कैदियों को मजदूरी की अदायगी:-

कैदियों को मजदूरी की अदायगी का प्रश्न आधुनिक दंडशास्त्र में एक अन्य जटिल मुद्दा है। कैदियों को उनके कार्य के लिए पारिश्रमिक अदा किया जाए, यह सिद्धांत अधिकांश समकालीन दंडशास्त्रियों के द्वारा माना गया है। अंतर्राष्ट्रीय दंड तथा दंडात्मक आयोग (6 जुलाई, 1951), अपराध की रोकथाम और अपराधियों के प्रति व्यवहार के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र यूरोपीय क्षेत्रीय परामर्शी ग्रुप (जिनेवा, दिसम्बर, 1952) और लेटिन अमेरिका, मध्यपूर्व और एशिया तथा सुदूर पूर्व के लिए अपराध की रोकथाम और अपराधियों के प्रति व्यवहार के बारे में संयुक्त राष्ट्र क्षेत्रीय संगोष्ठी, जो क्रमशः रियोडिजिनेरो, ब्राजील में (अप्रेल, 1953), कैरो, मिश्र में (दिसम्बर, 1957) और रंगून, वर्मा में (अक्टूबर, 1954) आयोजित की गई थी। इन्होंने इस सुझाव का समर्थन किया। विधिक तथा नीतिपरक विषयों तथा कार्यविधिक समस्याओं पर मतभेद इस तथ्य को नहीं छुपाते कि सावधानीपूर्वक नियोजित कैदी पारिश्रमिक योजनाओं में प्रोद्भूत निश्चित लाभ महसूस किए गए हैं।

बारहवीं अंतर्राष्ट्रीय दंड तथा दंडात्मक कांग्रेस ने कारागृह के बाहर जो मापदंड प्रचलित है उन्हीं मापदंडों के अनुसार प्राक्कलित मजदूरी अदायगी की पद्धति में अन्तर्निहित कठिनाइयों की कदर की। जिस पर भी उसने सिफारिश की कि कारागृह श्रम को यथासंभव अधिकतम सीमा तक लाभकर होना चाहिए। यह नीति अपराध की रोकधाम और अपराधियों के प्रति व्यवहार के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र यूरोपीय क्षेत्रीय सलाहकार ग्रुप के द्वारा जिनेवा में अपने द्वितीय सत्र में (अगस्त, 1955) दोहरायी गई। हाल के वर्षों

में कैदियों की मजदूरी को मुक्त उद्योग में मिलने वाली मजदूरी के अनुरूप बनाने के लिए एक आन्दोलन शुरू किया गया। सलाहकार ग्रुप ने उसका स्वागत किया और यह अनुभव करते हुए कि उसे व्यवहार में लाना कितना कठिन है, उसने सिफारिश की उसकी संभावनाओं का पता लगाया जाए।

कारागृह श्रम के बारे में संयुक्त राष्ट्र रिपोर्ट (1955) ने इस प्रस्ताव के लाभों को स्पष्ट किया। उसने प्रेक्षण दिया कि उद्योग के हित की आदत के लिए अपराधियों को प्रेरित करने के अतिरिक्त अनुमोदित वस्तुओं के क्रय के लिए और उनकी कारागृह से रिहाई के दिन के लिए बचत निधि के संचय के लिए पैसों कर अत्याधिक अर्जन किया जा सकता है। यदि अदायगियाँ न्यूनतम से अधिक हों तो आश्रितों की आवश्यकताओं तथा हर्जानों और अन्य विधिक दायित्वों की अदायगी और पूर्ति के लिए और सजा के व्यय के लिए राज्य को प्रतिपूर्ति करने के लिए कम से कम सांकेतिक योगदान करने के लिए कुछ संभावना रहती है। यदि सहवासी स्वतंत्र कारीगारों के समान मजदूरी अर्जित कर सकें, तो वे न केवल अपने नैतिक और विधिक दायित्वों के लिए पर्याप्त अदायगी कर सकेंगे बल्कि ऐसे समाज जिसमें अधिकांश सहवासियों को जेल से लौटकर रहना है, के सामान्य आर्थिक प्रकार्यों में भी हाथ बंटा सकेंगे।

हमारे अधिकतम सुरक्षा कारागृहों में मजदूरी (वेतन) के लिए सहवासियों का कोई विधिक अधिकार नहीं है क्योंकि उनके कार्य के उत्पादों को पूर्णत: राज्य की सम्पत्ति के रूप में माना जाता है। किंतु उन्हें या तो प्रतिदिन की समान दर पर या कार्य के कोटे के आधार पर अच्छे कार्य के लिए 'पुरष्कार' प्राप्त होता है। इससे देश की कैदी-आबादी में, विशेष रूप से लम्बी अवधि की सजा काट रहे कैदियों के बीच अत्याधिक निराशा और नाराजी उत्पन्न हो रही है। वे दलील देते हैं कि सम्पूर्ण कारागृह कार्य के लिए पारिश्रमिक दिया जाए और कैदियों को खुले कार्य बाजार में प्रचलित दरों पर मजदूरी अदा की जाए। इस मांग की पूर्ण स्वीकृति कठिन है क्योंकि हमारे कारागृहों के लंबी अवधि की सजा काट रहे कैदियों में से केवल आधे कैदी ऐसे कार्यों में संलग्न है, जो माल तैयार करते हैं। किंतु इसमें पूर्णत: कोई संदेह नहीं कि बहुत-से ऐसे कुशल कैदी कारीगर समाज में अन्य कारीगरों के समान पूर्ण वेतन पाने के हकदार हैं। आदर्श कारागृह नियम-पुस्तक में कैदियों के लिए मजदूरी के प्रश्न पर विचार किया गया और निम्नलिखित सिफारिशें की गईं :[19]

1. कैदियों को सरकार के द्वारा नियत की गई दरों पर मजदूरी अदा की जाए,

2. मजदूरी-पद्धति का उद्देश्य यह हो:-

(क) प्रयत्न, कार्य और उद्योग के लिए प्रोत्साहन और प्रेरणा प्रदान करना।

(ख) कारागृह कार्य को प्रयोजन-मूलक और सार्थक बनाना।

(ग) सहवासियों के बीच उत्तरदायित्व तथा स्वाभिमान का भाव विकसित करना।

(घ) कारागृह केन्टीन से अपनी दैनिक अतिरिक्त आवश्यकताओं के क्रय के लिए कैदियों को समर्थ बनाना।

(ङ) कारागृह से अपनी रिहाई के पश्चात् के जीवन और पुनर्वास के लिए बचत करने के हेतु तथा उनके परिवारों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए सहवासियों को सहायता देना।

3. तीन महीनों या अधिक की मूल सजा प्राप्त कैदियों को मजदूरी अर्जित करने के पात्र के रूप में माना जाए। जैसे ही ऐसा कैदी, जो मजदूरी अर्जित करने का पात्र हो, निर्धारित तरीके से निर्दिष्ट कार्य पर पूरी तरह उत्पादन करने लगे, उसे वेतन-पद्धति पर रखा जाए। जो कैदी इन आवश्यकताओं के अनुरूप न हों, उन्हें वेतन न दिया जाए। प्रशिक्षण और प्रशिक्षता की प्रारंभिक अवधि के दौरान कैदियों पर वेतन अर्जित करने के लिए विचार न किया जाए।

4.वेतन-पद्धति निम्नलिखित प्रकार की होनी चाहिए:-

(क) अनिवार्य सेवा एकक, अनुरक्षण एकक में ओर सहवासी सेवा एकक के लिए दैनिक वेतन (दिहाड़ी)।

(ख) निर्धारित समय में किए जाने वाले विनिर्दिष्ट गुणवत्ता के निर्धारित उत्पादन या उत्पादों के लिए उजरती-दर वेतन।

(ग) कैदियों के सामान्य प्रयत्नों के समूहन के माध्यम से सहवासी-ग्रुप के द्वारा संयुक्त रूप में किए गए कार्यों के लिए सामूहिक आधार पर वेतन। बाद में सामूहिक वेतन का वितरण आनुपातिक आधार पर कैदियों के बीच किया जाए।

5.कैदियों के द्वारा अर्जित एक तिहाई वेतन उसकी पुर्नवास आवश्यकताओं की पूर्ति किए जाने हेतु अनिवार्य बचत के रूप में आरक्षित किया जाए। कैदी को अपने उपार्जनों के शेष भाग का उपयोग कारागृह केन्टीन से वस्तुओं के क्रय, पोस्टकार्ड और लिफाफों अनुमोदित पुस्तकों के क्रय और जुर्मानों की अदायगी

तथा अन्य विधिक, सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों की पूर्ति के लिए करने दिया जाए।

कारागृह की शलाकाओं के पीछे शिक्षा :-

कारागृह के सहवासियों के आचरण में सुधार के लिए कारागृह में शिक्षा को उसकी शुरुआत से ही एक कारगर ताकत के रूप में देखा गया है। पुनः प्रतिष्ठित करने के अभिकरण के रूप में कारागृह की जो एक उद्धार करने वाली विशेषता है, वह सार रूप में उनकी बौद्धिक शक्ति में तीव्रता लानेवाली, उनमें स्वाभिमान पैदा करने वाली, जीवन के उच्चतर उद्देश्यों के प्रति उन्हें प्रोत्साहित करने वाली और कारागृह के निम्न और अनैतिक मनोविनोदों के बदले एक स्वस्थ प्रतिस्थानी की पूर्ति करने वाली है।[20] अपने उचित परिप्रेक्ष्य में कारागृह के भीतर की शिक्षा का लक्ष्य सहवासियों की जीवन जीने के प्रति अधिक अच्छी प्रवृत्ति सहित और अच्छे ईमानदार तथा कानून को मानने वाले नागरिकों के रूप में अपने आप को ढालने की इच्छा सहित समाज में उनकी वापसी के लिए उन्हें तैयार करने के अंतिम लक्ष्य सहित उनके पुन: समाजीकरण का है।[21] आस्टिन एच. मैक कॉर्मिक ने कारागृह के अंदर शिक्षा के रहस्य की व्याख्या इस प्रकार की है : ''वयस्क कैदियों के लिए शिक्षा एक लक्ष्य और तत्व है। उसका दर्शन (सार) कैदी को मुख्य रूप से शिक्षा की अपेक्षा रखनेवाले एक वयस्क के रूप में समझने का है और गौंण रूप में सुधार की अपेक्षा रखने वाले एक अपराधी के रूप में समझने का है। उसका उद्देश्य एक व्यक्ति के रूप में कैदी को इस प्रकार के शिक्षा के अवसर प्रदान करने का है कि वह अनुभव तथा विचार शक्ति उन्हें इस आशा सहित लाभदायक और रुचिकर रहे कि वे उसके द्वारा समाज के सदस्यों के रूप में अधिक सक्षमता तथा पारस्परिक सहयोगिता से जीवन बिताने में समर्थ बन सकें।''[22]

कारागृह सहवासियों के उद्धार के लिए एक उपाय के रूप में शिक्षा के निर्विवाद (असंदिग्ध) महात्व की सिद्धि ने सन् 1870 में ही संयुक्त राज्य अमेरिका के सुधारवादी प्रशासकों में यह धारणा पैदा की कि ''शिक्षा कारागृहों में प्राथमिक रूप से महत्व रखती है और उसका प्रसार संस्थाओं के अन्य प्रयोजनों से मेल खानेवाली अधिकतम सीमा तक किया जाए।''[23]

आस्टिन मैक कॉर्मिक[24] कैदियों को शिक्षा के महत्व से इतने अधिक प्रभावित हुए कि कैदियों को सुधारने में उसके योगदान के बिना भी उन्होंने उसे उपयोगी समझा। डोनाल्ड टफ्ट ने विशुद्धतः उपयोगिता के आधार पर कैदियों को शैक्षिक कार्यक्रम की मांग को उचित ठहराया। उन्होंने प्रेक्षण दिया

"भले ही कारागृह शिक्षा उनके पुनर्वास में (या उनको पुन: प्रतिष्ठित करने में) कुछ भी योगदान न करे, फिर भी उसकी मांग बनी रहेगी क्योंकि जब वह निष्क्रियता के लिए एक प्रतिस्थानी है और सिद्धदोषों (अपराधियों) के लिए दीर्घ सजाएँ अधिक सहनीय बनाती हैं, तब वह कारागृह में व्यवस्था बनाए रखती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा इस वजह से भी उपयोगी है कि वह निरक्षर सहवासियों को पुस्तकें पढ़ने तथा अपने मित्रों और सम्बन्धियों को पत्र लिखने में समर्थ बनाती है।"[25]

सर अलेक्जेंडर पेंटरसन ने मत दिया कि कैदियों के लिए प्राथमिक शिक्षा का प्रावधान भी कुछ उपयोगी है क्योंकि वह खपट्ट और बद्मिजाज बन्दियों के मस्तिष्कों को सक्रिय बनाता है और उनकी रुचियों के क्षेत्र को बढ़ाता है।[26]

भारत में कारागृह शिक्षा :-

भारतीय कारागृहों में, जहाँ अधिकांश कैदी बहुत बड़ी संख्या में निरक्षर या अर्द्ध-शिक्षित हैं, सिद्धदोषों के लिए शिक्षा का प्रावधान आधारभूत महत्व का है। भारतीय जेल समिति (1919-20) ने वयस्क कैदियों के उद्धार की योजना में उसके महत्व पर कोई संदेह नहीं किया।[27] उसने अभिमत दिया कि कारागृह से रिहाई पर सत्यनिष्ठ जीवन बिताने हेतु भारतीय कैदियों को पढ़ने और लिखने तथा संकेताक्षरों का ज्ञान निश्चित रूप से लाभदायक है। अत: समिति ने भारतीय कैदियों के लिए शिक्षा को वांछनीय माना और यह सिफारिश की कि "शैक्षणिक सुविधाएँ कारागृहों में ऐसे कैदियों को मुहैया करायी जाएँ जो उनसे लाभान्वित होने में समर्थ हों।"[28] चूँकि समिति भारतीय कैदियों के सामाजिक, आर्थिक वर्ग के प्रति सजग थी, वह इसकी कायल थी कि वह प्रौढ़ कैदियों के लिए व्यवहारिक रूप में उपयोगी होगी। तद्नुसार समिति ने 25 वर्ष से कम उम्र के सिद्धदोषों के लिए समस्त केन्द्रीय और जिला कारागृहों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की सिफारिश की। किन्तु समिति ने 25 वर्ष से अधिक उम्र के सिद्धदोषों के लिए यह सिफारिश की कि यदि ऐसा कोई कैदी शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त करे तो उसे इस शर्त पर शैक्षिक कक्षाओं में शामिल होने का अवसर प्रदान किया जाए कि वह सीखने की वास्तविक इच्छा और शिक्षण के द्वारा लाभान्वित होने की क्षमता, दोनों प्रदर्शित करे।

भारतीय जेल समिति 1919-20 ने कैदियों के लिए एक प्राथमिक शैक्षणिक कार्यक्रम बनाया जिसका उद्देश्य केवल तीन 'आर' में शिक्षा प्रदान करने का था। जो इससे आगे शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक

हों, उनके बारे में समिति ने सिफारिश की कि शैक्षणिक रूप से इसे इच्छुक कैदियों के लिए इस प्रयोजन के लिए आवश्यक पुस्तकें और सहायता प्रदान की जाएँ। इसके अतिरिक्त जो कैदी उससे लाभान्वित होने की क्षमता रखते हों, उन्हें शिक्षा प्रदान करने के प्रावधानसहित समिति ने सिफारिश की कि प्रत्येक केन्द्रीय तथा जिला कारागृह में एक लघु पुस्तकालय की व्यवस्था की जाए और उनमें ऐसी पुस्तकों को पर्याप्त संख्या में रखा जाए, जो उन्हें पढ़ सकनेवाले कैदियों के लिए जारी करने हेतु उपर्युक्त हों।[29]

तीन 'आर' में कैदियों का शिक्षण के अलावा सिद्धदोषों की शिक्षा के लिए भारतीय कार्यक्रम कारागृहों में धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण निर्धारित करता है।

भारतीय कारागृहों में कैदियों की शिक्षा के कार्यक्रम के बारे में यह दुखद अनुभव हुआ है कि स्थिति असंतोषजनक बनी हुई है। सन् 1927-28 में अमेरिका में कारागृह शिक्षा के बारे में आस्टिन मैक कार्निक ने जो कुछ कहा, वह आज भी भारतीय कारागृहों पर लागू होता है।[30] भारतीय कैदियों के लिए शैक्षणिक कार्यक्रमों का कोई भी वस्तुपरक प्रेक्षक बिना किसी हिचकिचाहट के मैक कार्निक की निम्नलिखित अभ्युक्ति की पुष्टि करेगा ''यदि हम संपूर्ण देश को लें, तो हम एक दुखान्त विफलता को सह रहे हैं। भारतीय कारागृहों में सुव्याप्त शैक्षणिक कार्यक्रम जो पर्याप्त रूप से वित्त पोषित हों तथा जिसमें पर्याप्त कर्मचारी नियुक्त हों, वह यथार्थता से कोसों दूर है। देश के अधिकांश कारागृह इतिहास, भूगोल, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र या समाजशास्त्र के मूल तत्वों की जानकारी नहीं देते। यहाँ तक कि तीन 'आर' के क्षेत्र में भी व्यवस्थाएँ बिल्कुल संतोषजनक नहीं हैं। अधिकांश कारागृहों में कक्षाएँ किसी बैरक में या किसी वृक्ष के नीचे लगाई जाती हैं। प्रदत्त उपस्कर बेहद अपर्याप्त हैं। शिक्षक कभी कभार कक्षायें लेते हैं और उनमें सामान्यत: अनुभव तथा प्रशिक्षण का अभाव होता है। सामान्यत: वातावरण एक विद्यालय का न हो कर एक कारागृह का होता है।[31]

जेलों मे कैदियों की शिक्षा :-

संयुक्त प्रान्त कारागृह जाँच समिति 1929 की रिपोर्ट में (पृष्ठ 85-86) में शिक्षा के प्रश्न पर विचार किया गया और कुछ सामान्य सिद्धान्त निर्धारित करने का अभिमत दिया गया। इस समिति ने प्रेक्षण दिया कि ''शिक्षा कम उम्र के कैदियों तथा किशोरों को दी जानी चाहिये।'' इस समिति ने इस शर्त सहित शैक्षणिक सुविधाओं में वृद्धि का जोरदार समर्थन किया कि कुछ प्रकार के ऐसे सिद्धदोषों को रोकने के लिए

अपेक्षित सावधानी बरती जाए जो काम से बचने के लिए स्वैच्छिक रूप में शिक्षा लेना चाहें। समिति ने छोटी उम्र वाले तथा किशोरों की शिक्षा तथा इक्कीस और पच्चीस वर्ष के बीचे के पुरुषों की शिक्षा की व्यवस्था का पक्ष लिया।

विभागीय जाँच समिति की रिपोर्ट 1939, (मुद्रित पृष्ठ 50-53) ने संयुक्त प्रात कारागृहों में प्रौढ़ शिक्षा को कैदियों के निष्क्रिय मन-मस्तिष्क में भरने को एक उपाय के रूप में और किसी शरारत की बात को सोचने से रोकने के उपाय के रूप में लिया। कारागृहों में प्रौढ़ शिक्षा के महत्व को एक मुख्य सुधार के रूप में प्रस्थापित करते हुए इस समिति ने एक महत्वपूर्ण निर्णय लिया : ''कारागृह से रिहाई के पश्चात् उपयोगी नागरिक बनने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए यह अत्यावश्यक है कि ऐसे भाग्यहीन कैदियों, जिन्हें अपने बचपन में शिक्षा पाने का अवसर न मिला हो, कारागृह में स्वयं को शिक्षित करने में फुर्सत के समय का उपयोग करने और कारागृह से रिहाई के पश्चात् बेहतर तथा अधिक अच्छी तरह से अपनी जीविका कमाने में समर्थ बनाने की सुविधायें प्रदान की जाएँ।'' इसके अतिरिक्त शिक्षा प्राप्त करं वे ऐसी उत्कृष्ट धार्मिक तथा नैतिक पुस्तकें पढ़ सकेंगे, जिनका उनके मन-मस्तिष्क पर स्वस्थ प्रभाव पड़ेगा और इस प्रकार उनकी आपराधिक प्रवृत्तियों में सुधार आएगा।

समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की :

1. 50 वर्षों से कम उम्र के सभी कैदियों के लिए शिक्षा अनिवार्य की जाए। सभी केन्द्रीय कारागारों से शुरुआत की जाए। यदि कोई कैदी शारीरिक रूप में निर्योग्य हो अथवा मानसिक रूप में दोषपूर्ण हो, तो उसे छूट दी जाए। जो कैदी अच्छी तरह अध्ययन करे तथा अपनी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाएँ, उन्हें कैद की सजा में छूट दी जाए। इस प्रयोजन के लिए अधीक्षक की शक्ति में इस प्रकार इजाफा किया जाए कि वह कारागार नियम-पुस्तक में यथा निर्धारित एक महीने की माफी के बदले एक माह तथा दस दिन की माफी दे सके ऐसा इस प्रकार के अनुदेशों सहित किया जाए कि इस अवधि का आधा भाग शिक्षा प्रयोजनों के लिए छूट की मंजूरी के लिए रखा जाए। इसके अतिरिक्त हम सिफारिश करते हैं कि जो अपनी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास करें अथवा आपवादिक रूप में अच्छा कार्य करें, उन्हें मिठाइयाँ दी जाएँ, अधिमानतः ऐसी परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर एक छटाक चीनी दी जाए। छूट की मंजूरी तथा मिठाई का दिया जाना, दोनों ही कैदियों के अध्ययन के लिए भारी प्रोत्साहन बतौर होंगे।

2. हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक शयन शायिका के समीप दीवारों पर लगभग 1.1/2 फुट चौकोर सीमेंट बोर्ड बनाएं जाएं जिससे कि कैदी फुर्सत के समय लिखने का अभ्यास कर सकें।

3. हम सिफारिश करते हैं कि जैसे-जैसे शिक्षा आगे बढ़े, तीसरा दर्जा पास करने वाले कैदियों को काष्ठ की छोटी तख्तियों की पूर्ति की जाए जिससे कि वे सरकंडे के कलम से अभ्यास कर सकें।

4. जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है, शिक्षा सिद्धदोष शिक्षकों के द्वारा दी जाए। अतः हम प्रस्तावित करते हैं कि जो कैदी मिडिल तक शिक्षित हों और तीन से पाँच वर्षों के बीच सजा काट रहे हों और पेशेवर न हों, उन्हें तीन महीनों के प्रशिक्षण के लिए एक केन्द्रीय कारागृह में इकट्ठा किया जाए जिसके बाद उनका वितरण आनुपातिक रूप में समस्त जेलों में किया जाए। सिद्धदोष शिक्षक कैदियों को पढ़ाऐंगें और सवैतनिक शिक्षक उनके कार्य का पर्यविक्षण करेंगे तथा परीक्षाऐं आयोजित करेंगे यह प्रस्तावित किया जाता है कि शुरुआत में प्रत्येक केन्द्रीय कारागार को दो सवैतनिक शिक्षकों की पूर्ति की जाए। बाद में जब कैदी शिक्षित हो जाऐं, तब इन शिक्षकों की संख्या को घटाकर एक कर दी जाए और जब निधियाँ उपलब्ध हों, तब यह योजना जिला कारागारों पर लागू की जाए। पर्यविक्षण करने के लिए प्रत्येक जिला कारागार को सवैतनिक शिक्षक दिया जाए।

5. हम सिफारिश करते हैं कि अनिवार्य शिक्षा केवल केन्द्रीय कारागृहों तक ही परिसीमित करके न रखी जाए बल्कि दो या तीन वर्षों के दौरान उसे जिला कारागृहों तक भी बढ़ाया जाए।

कारागृह सुधार समिति की रिपोर्ट (1946) में विभागीय कारागृह समिति (1939) के द्वारा यथा अभिशांसित कारागृहों में अनिवार्य प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के द्वारा की गई प्रगति की समीक्षा की गई और यह पाया गया कि कारागृहों में शिक्षा की वर्तमान पद्धति संतोषजनक नहीं है। केन्द्रीय कारागारों में कुछेक सवैतनिक शिक्षक हैं, जो उनके कार्य पर रहने के समय उन्हें पढ़ना तथा लिखना सिखाते हैं। शिक्षण नीरस और उबाऊहै और प्रगति धीमी है। जब जिला कारागृह के अधीक्षक को अपने कारागृह में शिक्षक की आवश्यकता होती है तब किसी केन्द्रीय कारागार से कोई सिद्धदोष शिक्षक उस कारागार में स्थानांरित किया जाता है। ये सिद्धदोष शिक्षक सामान्यत: आदतन शरारती होते हैं और शरारत करने से नहीं चूकते। हमारे कारागृहों में शिक्षा की बुनियादी पद्धति अथवा शिक्षा की मानदेय पद्धति शुरू करने का अभी तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

इस प्रेक्षण की दृष्टि से समिति ने सिफारिश की कि ''प्रथमत: हम सिद्धदोष शिक्षकों पर

अभिकर्ताओं के रूप में अनन्य विश्वास करना छोड़ दें।जब सिद्धदोष शिक्षकों का उपयोग सवैतनिक शिक्षकों के सहयोगियों के रूप में किया जाए, तब मात्र इस अभिकरण पर आधारित कैदियों को शिक्षित बनाने की किसी योजना का असंतोषजनक होना लाजिमी है। समिति की यह राय थी कि प्रत्येक केन्द्रीय कारागार में एक प्रधानाध्यापक तथा चार अध्यापक होने चाहिए, प्रथम या द्वितीय दर्जे के प्रत्येक जिला कारागार में दो शिक्षक और अन्य जिला कारागारों में एक शिक्षक होना चाहिए। ये सभी शिक्षक प्रशिक्षित व्यक्ति होने चाहिए।

इसके अतिरिक्त समिति ने कारागारों में शिक्षा की बुनियादी तथा मांडे पद्धति शुरु करने की सिफारिश की। ये पद्धतियाँ शिक्षण की प्रक्रिया को रुचिकर बनाती हैं और उनसे बेहतर परिणाम मिलने की संभावना है। शिक्षण भी अधिक व्यवस्थित आधार पर दिया जाए। शिक्षण अवकाश के समय दिया जाए न कि ऐसे समय जब कैदी काम कर रहे हों। इन परीक्षाओं में विशेष योग्यता प्रदर्शित करने वाले कैदियों को उपर्युक्त रूप में पुरुस्कृत किया जाए।''

कारागार में वर्तमान शैक्षणिक कार्यक्रम की रूपरेखा :-

निरक्षर को साक्षर बनाने के नाम पर कारागृह के शैक्षणिक कार्यक्रम ने वाचन, लेखन और अंक गणित के प्रारंभिक ज्ञान के शिक्षण की सुविधाऐं प्रदान कीं। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सीमित संख्या में केवल थोड़े से व्यक्ति आ सकें और इन व्यक्तियों में केवल वे सहवासी सम्मिलित थे जो 'अंगूठे की भाषा' के सिवाय कुछ नहीं जानते थे। शिक्षा का लाभ केवल ऐसे सहवासियों को उपलब्ध हुआ जिन्हें निरक्षरों या अर्द्धसाक्षरों के रूप में निरूपित किया गया। बहुत से अन्यों के लिए, जो पाँचवे दर्जे से अधिक शिक्षित थे, कारागृह पाठशाला के दरवाजे करीब-करीब बंद थे। 'सिद्धदोष पाठकों' के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम सामान्यत: चार महीनों की अवधि का था, जिसमें निरक्षर कैदियों की शिक्षा के लिए बनायी गई नया सहारा योजना के तहत सिद्धदोष शिक्षकों के द्वारा (हर दिन दो घंटे) उन्हें शिक्षण दिया जाता था। 'कारागृह पाठशाला' नामक स्थान के बारे में जितना कम कहा जाए उतना बेहतर है। वह एक जीर्णशीर्ण बैरक में स्थित होती थी जिसमें बैठने की अपर्याप्त व्यवस्था रहती थी। परिणाम स्वरूप सिद्धदोष शिक्षकों को अपनी कक्षाऐं या तो किसी वृक्ष के नीचे अथवा ऐसी रिहायशी बैरक में लगाने के लिए वाध्य होना पड़ता था जहाँ वहाँ निवास करने वालों के झुंड चारों ओर दौड़ते रहते थे। किसी बाहरी प्रेक्षक को स्कूल लगाने की

ये व्यवस्थाऐं उस शैक्षणिक कार्यक्रम की कलई खोल देती थीं, जो कारागृह अपने निरक्षर सहवासियों को शेखी बघारते हुए प्रदान करता था। अनुकूल (अरुचिकर) वातावरण के अलावा कारागृह के सहवासियों की अपनी पाठशाला कदाचित ही ऐसा स्थान था जहाँ कक्षाऐं संतोषजनक रूप में आयोजित की जा सकें। कक्षाओं में दर्ज सिद्धदोष छात्रों की वर्तमान संख्या प्रदर्शित करती थीं कि 1700 से अधिक की सहवासियों की कुल जनसंख्या में से केवल 52 कैदियों के नाम विद्यालय उपस्थिति रजिस्टर में दर्ज थे।

52 सिद्धदोष छात्रों की संख्या दो महत्वपूर्ण बातें प्रदर्शित करती है :

(1) समस्त निरक्षर या अर्द्धसाक्षर कैदियों ने जो कुल जनसंख्या के 49.50 प्रतिशत थे, कारागृह में तीन 'आर' (पढ़ना, लिखना, अंकगणित) की दी जाने वाली शिक्षा का लाभ नहीं उठाया और

(2) जिन्होंने कक्षाओं में जाना शुरू किया, उन्होंने भी पाँचवे दर्जे - कारागृह में सहवासी शिक्षा के सर्वोच्च दर्जे तक अध्ययन नहीं किया।

उपस्थिति रजिस्टर से यह भी स्पष्ट हुआ कि कारागृह विद्यालय में बीच में पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या भी अधिक थी। सहवासियों ने कक्षाओं में दाखिला लिया, कक्षाओं में कुछ समय तक गए और तब अचानक कुछ घटित हुआ और फिर कक्षाओं में अध्ययन के लिए नहीं लौटे। जिन्होंने अपना अध्ययन जारी रखने के लिए संघर्ष किया और अत्याधिक ईमानदारी से अध्ययन किया वे भी अनेक प्रकार के कारणों से नियमित उपस्थिति नहीं दे सके।

कारागृह विद्यालय के जो ग्यारह सिद्धदोष छात्र शोधकर्ता के नमूने में शामिल किए गए, उन्होंने अत्यधिक विस्तार से अपनी अनेक प्रकार की कठिनाइयों और समस्याओं का विवरण दिया। उनकी उन शिकायतों की पुष्टि बहुत से ऐसे अन्य सहवासियों के द्वारा की गई जो कारागृह के शिक्षण कार्यकृम का लाभ प्राप्त करना चाहते थे। सहवासी के कथन का सारांश निम्नलिखित है :

1. अधिकांश अर्द्धसाक्षर कैदी (19.25%) कारागृह विद्यालय में शिक्षण प्राप्त करना चाहते थे और अपने ज्ञान को वहाँ शिक्षा प्राप्त करके बढ़ाना चाहते थे।

2. अधिकांश निरक्षर कैदियों (35.00%) का विश्वास था कि कारागृह विद्यालय में थोड़ा सा पढ़ने पर भी वे पढ़ने का प्राथमिक ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। यह उनके लिए बड़े लाभ की बात है क्योंकि इससे वे कम से कम पढ़ने और अक्षर लिखने में और कदाचित शौक के रूप में अपने वाचन का विकास करने में समर्थ

हो सकेंगे।

3. किन्तु कैदियों की बहुत बड़ी संख्या (96.50%) का विश्वास था कि उनके 'स्वामी' (अधिकारी) अपनी प्रजा को पढ़ने-लिखने की अनुमति देने में शायद ही दिलचस्प थे। वे मुख्यत: उनसे काम कराने में ही दिलचस्पी रखते थे।

4. महत्वपूर्ण संख्या में कैदी (64.00%) महसूस करते थे कि कारागृह अधिकारी अपने दिमाग में इस बात को रखकर अनेक प्रकार के रोड़े अटकाते थे। कृषीय ऋतु के दौरान विद्यालय भवन में दो घंटों के लिए सहवासियों के बैठने की अनुमति देने से मना करना कैदियों की शिक्षा के प्रति उनकी अरुचि का प्रत्यक्षीकरण है।

5. इन कैदियों ने महसूस किया कि नियमित रूप से कक्षाओं में उपस्थित होने के लिए सिद्धदोष छात्रों को मना करने की व्यापक रूप में प्रचलित परंपरा का जोरदार नकारात्मक प्रभाव पड़ता था और सहवासी समाज के अधिकांश शिक्षा-उत्साही, इस प्रकार अधिकतर कैदियों की शिक्षा के नाम में जो कुछ कहा या किया जाता था, उस हर गतिविधि के प्रति कोई दिलचस्पी या अभिरुचि प्रदर्शित नहीं करते थे।

6. कैदी समाज के मुखर व्यक्तियों के यह विश्वास करने के कारण थे कि कारागृह में शिक्षा दर्शकों को लुभाने का ऐसा कार्यक्रम था जो वे कारागृह के निरक्षर व्यक्तियों के लिए आयोजित करके एक दिखावे के रूप में उनके समक्ष प्रस्तुत करते थे। ऐसे कुछ सहवासियों ने यहाँ तक कह दिया कि शिक्षा भी कारागृह में शुरू किए गए पुनर्वास के बहुत से अन्य ढोंगी कार्यक्रमों में से एक है।

कारागृह के शैक्षणिक कार्यक्रम की कमियाँ :-

<u>सहवासियों का कथन</u> - निरक्षरों तथा अर्द्धसाक्षरों के लिए कारागृह के शैक्षणिक कार्यक्रम की कमियों के बारे में सहवासियों का कथन निम्नलिखित है :

1. सिद्धदोष शिक्षक यथार्थ अभिरुचि से नहीं पढ़ाते (80%) ;
2. सिद्धदोष शिक्षकों के पास साधनों का अभाव है और वे अपने को ऊँचा समझने वाले हैं (29.75%);
3. कारागृह अधिकारी कैदियों की शिक्षा के प्रति उदासीन हैं। (96.75%);
4. कक्षाओं में उपस्थिति होने की आजादी हमेंशा मंजूर नहीं की जाती। (68.00%);
5. कैदियों की सीमित और मामूली शिक्षा निरर्थक है और सहवासियों के भावी पुनर्वास के लिए

कोई व्यवहारिक महत्व नहीं रखती। (90.00%)

6. सहवासी जो पढ़ना चाहते हैं, उसकी पसंदगी की कोई गुंजाइश नहीं है (25%);

7. कुछ सहवासियों के लिए बाध्यता के तहत शिक्षा प्राप्त करना कठिन महसूस होता है (25.00%);

8. ऐसे कारागृह सहवासियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा आकर्षक नहीं है, जो जीवन के प्रति ही भ्रमित हैं (78%);

9. कारागृह में विद्यमान शैक्षणिक कार्यक्रम आकर्षक कम और निरुसाहित करने वाला अधिक हैं (35%);

10. अधिकांश युवा सहवासी अधिकतर विभिन्न औद्योगिक व्यवसायों (शिल्पों) तथा पेशों के कौशल सीखने में रुचि रखते हैं (79.00%);

11. अधिक उम्र वाले सहवासियों के लिए उस ढलती उम्र में शिक्षा प्राप्त करना न केवल कठिन है बल्कि बेकार है। (80%);

12. अधिक उम्र प्राप्त सहवासियों को किशोरों का शिक्षण देना हास्यास्प्रद है (20%);

शिक्षकों का कथन :-

कारागृह विद्यालय के सात शिक्षकों (दो पूर्णकालिक सिद्धदोषतर शिक्षक और पाँच पूर्णकालिक सिद्धदोष शिक्षक) से अलग-अलग तथा एक समूह में साक्षात्कारों से पता लगा कि लगभग सभी शिक्षक उनकी कक्षाओं में पर्याप्त संख्या में इच्छुक सहवासियों के उपस्थित न होने के कारण भ्रमित और निराश हैं। शिक्षकों का अभिमत था कि बड़ी संख्या में निरक्षर सहवासी शिक्षा प्राप्त करने में रुचि रखते हैं। उनके विचार से अध्ययन में उनकी अधिक समय तक रुचि न होने का मूल कारण कारागृह अधिकारियों के द्वारा उन्हें कक्षाओं में उपस्थित होने के लिए दो घंटों का मुक्त समय दिए जाने से मना किया जाना है। सिद्धदोष शिक्षकों ने संपूर्ण कार्यक्रम को चालाकीपूर्वक नष्ट करने और उसे एक निरर्थक कार्यकलाप बनाने के लिए स्पष्टत: दोषी ठहराया।''

अपनी अशक्तता को व्यक्त करते हुए एक शिक्षक ने नाराजीपूर्वक टिप्पणी की कि ''हम स्थिति के स्वामी नहीं हैं। इस स्थिति की व्यवस्था या अव्यवस्था करने वाले तो कारागृह के 'स्वामी' हैं। इस बात पर शिक्षक अत्याधिक नाराज थे कि कारागृह के 'छ: बड़े अधिपति' सहवासियों को अचानक विद्यालय

से हटाकर दीर्घकालिक जुताई, बुआई और कटाई ऋतु के दौरान कारागृह के कृषि प्रक्षेत्र पर अनेक प्रकार के कार्यों पर तैनात कर देते हैं। उन्होंने कहा कि इस परंपरा के कारण कारागृह विद्यालय से अलग होने वालों की संख्या में असामान्य वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार सत्यनिष्ठ रूप में रुचि रखने वाले सहवासियों का प्रारंभिक उत्साह कारागृह अधिकारियों के द्वारा उत्पन्न की गई प्रतिकूल स्थितियों के विरूद्ध अध्ययन जारी रखने की उनकी इच्छा के प्रति ठंडा पड़ जाता है। शिक्षकों ने कहा कि ऐसी प्रशासनिक रुकावटों से सहवासी महसूस करते हैं कि कारागृह अधिकारी उनसे काम लेने में दिलचस्पी रखते हैं और किसी अन्य कार्य में नहीं। अपनी कक्षाओं में कम उपस्थिति के लिए सिद्धदोष शिक्षकों ने एक अन्य बिन्दु पर प्रशासन की भर्त्सना इस प्रकार की - शिक्षण सामग्री जैसे चाक, श्यामपटों, मेजों, कुर्सियों, टाट-पट्टियों, पुस्तकों, पेंसिलों, स्याही और उत्तर-पुस्तकों की अल्प पूर्ति। उन्होंने अपने द्वारा संचालित विद्यालय के लिए इन अनिवार्य मदों की पूर्ति करवाने में अपमान का अनुभव करने की शिकायत की। ''स्पष्टत: किसी लाभ के बिना विद्यालय संचालन हेतु दर-दर भटकने का दुखद अनुभव नरक की यातना जैसा है।'' यह अभ्युक्ति उस सिद्धदोष शिक्षक की थी, जो पिछले सात वर्षों से कारागृह विद्यालय से जुड़ा हुआ था। एक अन्य सिद्धदोष शिक्षक, जो अपेक्षाकृत कम उम्र का और खरा था, ने कैदियों के लिए एक शैक्षणिक कार्यक्रम पर अपनी टिप्पणी को समेटते हुए उसे कैदियों को कारागृह में मूर्ख बनाने में रचा गया केवल एक कुचक्र और निरर्थक ढौंग बताया।''

अधिकारियों का कथन :-

चार 'सर्किल जेलरों' से अनौपचारिक बातचीत में शोधकर्त्ता को यह बताया गया कि सहवासी तथा सिद्धदोष शिक्षक जहाँ तक अधिकारियों के कन्धों पर दोषारोपण करते हैं, उनमें से एक भी उनके मत से सहमत नहीं। जेलरों ने टिप्पणी की कि कैदियों की शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था निराशाजनक रूप में विफल नहीं हुई है। दिलचस्पी रखने वाले सहवासियों ने उसका लाभ उठाया। कार्यक्रम के आलोचकों के बारे में उनका प्रेक्षण यह था कि कैदी अधिकतर वहीं हैं, जो निष्क्रिय होते हैं और जो कक्षाओं में उपस्थित होने के नाम में हर दिन दो-तीन घंटों का मुक्त समय चाहते हैं। किन्तु जेलर यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि कारागृह में मौजूदा शैक्षणिक कार्यक्रम पूर्णत: संबल, संरक्षण और प्रोत्साहन के अभाव में लंगड़ा रहा है। सहवासियों के उत्साह में कमी के लिए कारागृह नौकरशाही के मध्यम दर्जे के इन अधिकारियों ने केवल कैदियों को दोषी ठहराया, स्वयं को नहीं।

कारागृह पुस्तकालय :-

कारागृह के भीतर शिक्षा से निकटस्थ सम्बन्धित 'कारागृह पुस्तकालय' नामक एक संस्था है। 'कारागृह विद्यालय' के समान कारागृह पुस्तकालय भी एक ऐसा अभिकरण माना जाता है जो पठनीय पुस्तकों के माध्यम से सहवासियों के समाजीकरण के लिए होता है। एडिथ काथलीन जोन्स ने एक कवि के अन्दाज में कारागृह पुस्तकालय का वर्णन "मनबहलाय और शांति के मित्रतापूर्ण वातावरण के लिए एक मरुद्यान (हरित भूमि) के रूप में किया।"[32] बार्न्स और टीटर्स ने उसे कारागृह संसार में पुनर्वास के कार्यक्रम के एक सौतेले बच्चे के रूप में बताया।[33] मैक कार्निक ने अभ्युक्ति दी कि कारागृह में उचित रूप में अनुरक्षित तथा सक्षम रूप में संचालित पुस्तकालय न केवल संपूर्ण मनोरंजन के लिए बल्कि अप्रत्यक्ष शिक्षा के लिए भी एक अत्यधिक उपयोगी अभिकरण है। इस सभी कारणों से बार्न्स तथा टीटर्स ने कारागृहों में पुस्तकालय को अत्यावश्यक ठहराया।[34] भारतीय कारागृहों में पुस्तकालय की अधिक आवश्यकता है क्योंकि सहवासियों की स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए कोई अन्य लाभदायक साधन नहीं है और इसके अतिरिक्त भारतीय कारागृहों में कैद की सजा की अनुभूति इतनी अधिक उत्साह भंग करने वाली है कि शान्त तथा शांतिपूर्ण पठन के सिवाय शायद ही कोई चीज बेहतर हो जो सहवासियों की नैतिक शक्ति को बनाए रखे अथवा उसमें वृद्धि करे।[35]

कार्यालय पुस्तकालय शिक्षित व्यक्तियों की संकल्पना के पुस्तकालयों से अनेक रूपों में भिन्न है।दोनों में बड़ा भारी अंतर है। रचना और कामकाज के दोनों रूपों में उनमें सामान्य रूप में बहुत सी समान विशेषताऐं नहीं हैं। उनके उद्देश्य, उनके ग्राहकों के गठन, पुस्तकों के वितरण और वापसी की उनकी पद्धति में समानताओं की अपेक्षा भिन्नताएँ अधिक हैं। अधिकांश कारागृह पुस्तकालयों का बजट कम रहता है। पुस्तकों का उनका चयन घटिया होता है और उनका संपूर्ण संगठन भयानक रूप में निरूपित होता है।उचित स्थान और निधियों की अपर्याप्तता, पुस्तकों और प्रशिक्षित कर्मचारियों का अभाव संपूर्ण स्थिति को सतही या सामान्य बना देता है।

कारागृह पुस्तकालय का रेखाचित्र :-

कारागृह में 'केन्द्रीय पुस्तकालय' या वाचन कक्ष नामक कोई स्थान नहीं होता, जहाँ सहवासी प्रवेश करके पुस्तकें जारी करा सकें या वहाँ उन्हें पढ़ सकें। शायद संस्था के भीतर सहवासियों के

मुक्त विचरण पर लगाए गए अनेक प्रतिबंधों के कारण प्रशासन कारागृह पुस्तकालय या वाचन कक्ष के लिए एक केन्द्रीय बैरक निर्धारित नहीं कर सका।इसके बदले में वह सहवासियों की कक्षाओं के संचालन के लिए तथा पुस्तकालय की पुस्तकों को जारी करने तथा लौटाने दोनों के लिए प्रत्येक परिमंडल में एक लघु अल्प साधन युक्त बैरक नियत कर सका। कारागृह के तीन ऐसे लघु पुस्तकालय विभिन्न विषयों पर मुश्किल से तीन हजार छ: सौ सत्तर पुस्तकों से 1700 सहवासियों से अधिक की जनसंख्या की वाचन आवश्यकताओं तथा जरूरतों की पूर्ति करते हैं। इन पुस्तकों को बिना अधिक सावधानी से या सहेजे बिना थोड़ी सी बड़ी लकड़ी की पेटियों में रखा जाता है। पुस्तकों के सूचीकरण या अनुक्रमणीकरण की कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप कारागृह के 'पुस्तक प्रेमी' ऐसी पुस्तकों के विभिन्न शीर्षकों के बारे में मुश्किल से कोई आभास प्राप्त कर पाते हैं, जो निर्गम और वितरण के लिए उपलब्ध हों। अभिलेख रखने के प्रयोजनों के लिए वरिष्ठतम् शिक्षा अध्यापक के पास एक रजिस्टर था जिसमें ऐसी सभी पुस्तकों की प्रवृष्टि की जाती थी, जो समय-समय पर कारागृह पुस्तकालय में प्राप्त होती थीं। यह रजिस्टर सहवासियों को उपलब्ध नहीं कराया जाता था और उसे एक स्थायिवत गोपनीय दस्तावेज के रूप में माना जाता था।

उचित सूचीकरण के अभाव में अधिकांश सहवासियों को अपनी पसंद की पुस्तकों का पता लगाना आसान नहीं था। उन्हें उनकी रुचि के अनुसार अच्छे वाचन के लिए कौन-सी पुस्तक अच्छी होगी, इसके लिए अपने सिद्धदोष शिक्षक की सलाह पर निर्भर करना होता था। शोधकर्त्ता के नमूने में 276 साक्षर सहवासियों में से 202 के बारे में सूचना मिली कि उन्हें पुस्तकें पढ़ने का चस्का था। इन 202 सहवासियों को जिन कठनाइयों और समस्याओं का सामना करना होता था, वे निम्नलिखित थीं :

1. सिद्धदोष शिक्षण व पुस्तकाध्यक्ष से संपर्क स्थापित करना कठिन था क्योंकि वे अक्सर अपने स्थानों पर अनुपस्थित रहते थे (35.14%);

2. कुछ सिद्धदोष पुस्तकाध्यक्ष घमंडी प्रकार के हैं जो अपने तुच्छ प्राधिकार के घमंड में सहवासियों की प्रार्थनाओं पर उचित ध्यान नहीं देते और कभी ऐसा झूठा बहाना बनाकर कि वे किसी अन्य महत्वपूर्ण सांस्थानिक कार्य में व्यस्त हैं, कुछ समय पश्चात् आने को कहकर पुस्तकों की पूर्ति करने से मना कर देते थे। यही उनका उत्तर रहता है। (14.35%);

3. सिद्धदोष पुस्तकालय अध्यक्ष अपने ऐसे मित्रों का अच्छी पुस्तकों (उपन्यास, नाटक और कहानी

की पुस्तकों) की पूर्ति करते हैं, जो उन्हें कई महीनों तक वापस नहीं करते। यह परंपरा ऐसे अन्य सहवासियों को इस सुविधा से वंचित रखती हैं तथा निरुसाहित करती हैं, जो समान रूप से ऐसी पुस्तकें पढ़ने में रुचि रखते हैं (82.67%);

4. धार्मिक, ऐतिहासिक और पाठ्यक्रम की पुस्तकों का स्टॉक ऐसे उपन्यासों, आत्मकथाओं, जीवनियों, कथा-साहित्य तथा काव्य-ग्रन्थों के स्टॉक से अधिक होता है जिन्हें सहवासी पढ़ना अत्याधिक पसंद करते हैं (22.77%);

5. अधिकांश पुस्तकें फटी-पुरानी स्थिति में होती हैं और इसलिए पाठकों को उन्हें हाथ में लेते समय अत्यधिक सावधानी बरतनी होती है। ऐसी पुस्तकों को पढ़ना अपने आप में एक समस्या है। (51.85%);

6. बजट सम्बम्धी परिसीमाओं की वजह से पुस्तकालय में सहवासियों के उपभोग के लिए पुस्तकों की नियमित रूप से पूर्ति नहीं होती है (7.92%);

7. सिद्धदोष पुस्तकालय अध्यक्ष को अपने इस कार्य का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता और इसलिए इस कार्य को उचित रूप में नहीं कर पाते (30.69%);

8. सिद्धदोष पुस्तकालय अध्यक्ष की रुचि न तो पुस्तकों में होती है और न उनमें इस कार्य के लिए स्वाभाविक झुकाव होता है।(38.61%);

जब शोधकर्त्ता के द्वारा सहवासी पुस्तकालय अध्यक्ष से अनौपचारिक रूप में टिप्पणी करने के लिए संपर्क स्थापित किया गया, तब उसने सूचित किया कि पुस्तकालय में बहुत समय से पुस्तकों के स्टॉक की कोई महत्वपूर्ण पूर्ति नहीं की गई। उन्होंने कहा कि उचित रख-रखाव और रैक आदि की सुविधा के अभाव में पुस्तकें फट रही हैं। किन्तु उन्होंने स्वैच्छिक रूप में इस आरोप से जोरदार इंकार किया कि जहाँ तक अपने ग्राहकों से उनके व्यवहार का संबंध है, वे दुर्ग्राह्य (भ्रम में डालने वाले) अक्खड़ और घमंडी प्रकार के नहीं है। सिद्धदोष पुस्तकालय अध्यक्ष एकमत से इस बात के प्रति कारागृह अधिकारियों की आलोचना करने में एकमत थे कि वे पुस्तकें पढ़ने में अधिक से अधिक सहवासियों की रुचि को प्रोत्साहित करने के प्रति उदासीन रहे हैं। कारागृह पुस्तकालय की जिन कमियों और खामियों ने पुस्तकालय को हानि पहुँचाई, उसके लिए उन्होंने अपने मालिकों को उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में यह आभास कराया कि कारागृह विद्यालय तथा पुस्तकालय कदाचित कारागृह व्यवस्था का सर्वाधिक अक्षमतापूर्ण

प्रशासित पहलू है। शोधकर्त्ता से अपनी चर्चा में उनका निहितार्थ था कि कारागृह प्रशासनिक अंचलों में कैदियों की शिक्षा के विरूद्ध निश्चित पूर्वाग्रह था।

कैदियों की वाचन अभिरुचि :-

कारागृह में शिक्षा की अनेक खामियों के बावजूद जेलों में हमेशा कुछ ऐसे कैदी होते हैं जो कारागृह के बाहर के साधारण रूप में शिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक पढ़ते हैं , हो सकता है कि ऐसा कारागृह में अत्यधिक फुर्सत का समय होने अथवा कैद की सजा की कुछ दमनकारी बाध्यताओं के होने की वजह से हो। किन्तु यह एक तथ्य है कि कारागृह के अपने अनेक प्रकार के ऐसे पुस्तक प्रेमी होते हैं जिनकी पढ़ने की रुचि बहुविद्य होती है और जिनकी पुस्तकों तथा समाचारों की खपत कारागृह की दीवारों से बाहर के शिक्षित व्यक्तियों के उपभोग तथा खपत से कहीं भारी होती है।

सहवासी सर्वाधिक क्या पढ़ते हैं ? इसकी जाँच स्पष्टत: पुस्तकालय से जारी पुस्तकों की संख्या और आवृत्ति से की जाए। कारागृह पुस्तकालय के अभिलेख से यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि रोमानी (प्रेम संबंधों वाली कल्पना प्रधान) और अतिनाटकीय (भावुकतापूर्ण) हिन्दी तथा उर्दू उपन्यास, लघु कहानी पुस्तकें और भगवतगीता, बृज विलास, रामायण, महाभारत, हनुमान चालीसा, शिव चालीसा, दुर्गा चालीसा और कुरान जैसी अन्य धार्मिक पुस्तकें ऐसी थीं, जिन्हें अधिकांश सहवासी अपने नाम पर जारी कराने का आग्रह करते थे। सामान्यत: युवा सहवासी उपन्यासों, नाटकों और लघु कहानी की पुस्तकों का साधारण वाचन करना पसंद करते थे और अधेड़ तथा अपेक्षाकृत अधिक उम्र के सहवासी धार्मिक ग्रन्थों के प्रति तरजीह देते थे। इतिहास, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, सामान्य विज्ञान और सामान्य ज्ञान की पुस्तकों की मांग ऐसे थोड़े से सहवासियों के द्वारा की जाती थी, जो केवल समय काटने के तरीके मात्र के लिए पढ़ा करते थे। वे उसे ज्ञान और शिक्षण के अर्जन के सशक्त स्रोत के रूप में लेते थे। केवल यही सहवासी ऐसी पुस्तकों को सावधानीपूर्वक पढ़ते थे और अपनी व्यक्तिगत डायरियों में ब्यौरेवार विवरण दर्ज किया करते थे।

जो सामाजिक और रोमानी उपन्यास लघु कहानियाँ और नाटक पढ़ते थे, उन्होंने अपनी रुचि के कारणों को इस प्रकार समझाया :-

1. "ये पुस्तकें सरल हल्के-फुल्के वाचन के लिए हैं और ये हमारे थके-मांदे तथा चिन्ताग्रस्त मस्तिष्क

पर दबाब नहीं डालती।''

2. ''ऐसी किताबें अपनी रोमानी तथा साहसिक विषय-वस्तु के कारण हमारा ध्यान अत्यधिक आकर्षित करती हैं।''

3. ''साहसिक और रोमानी उपन्यासों, गल्पों और उपन्यासों का वाचन हमें एक ऐसे स्वप्न लोक में ले जाता है जहाँ कुछ मिनटों और घंटों के लिए हम ऐसी पुस्तकों के बहादुर साहसी चरित्रों जैसे महसूस करते हैं।''

4. ''रोमानी आनंद या साहस प्रदान करने के अलावा ऐसी पुस्तकें काम विषयक (रत्यात्मक) या कामोद्दीपक विषयवस्तु या शृंगारिक भाषा के कारण हमारी अतृप्त लैंगिक कामनाओं की तुष्टि करती हैं।''

लघु कहानियों की पुस्तकें ऐसे सहवासियों के द्वारा अत्यधिक पढ़ी जाती हैं जिनकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि लम्बी चौड़ी, मोटी तथा जिल्दबंद पुस्तकों के तेजी से वाचन के लिए अपर्याप्त हैं। ये सहवासी जो लघु कहानी पुस्तकें पढ़ते हैं, वे प्राचीन ऐतिहासिक या धार्मिक कथाओं तथा किस्सों (उपाख्यानों) से संबंधित होती हैं। ऐसे बहुत से सहवासियों ने विचार व्यक्त किया कि ''ये पुस्तकें बोध गम्य और विचारोत्तेजक हैं। जिन कैदियों ने असाधारण साहस, वीरता या देश-प्रेम की इन पौराणिक काल्पनिक कहानियों के बारे में कभी कुछ नहीं सुना, उन्होंने उन्हें बहुत पसंद किया। इन पुस्तकों के वाचन ने कारागृह के अनजान तथा नव साक्षरों को देश की पारंपरिक संस्कृति तथा इतिहास की जानकारी दी।''

समाचार पत्र वाचन :-

जहाँ तक सूचना मिली है समाचार पत्र वाचन कारागृह के थोड़े से साक्षरों और मुट्ठी भर शिक्षित सहवासियों का शौक रहा है। समाचार पत्र प्रेमी यह शब्द जो कारागृह में प्रचलित है, वे सहवासी हैं, जो हर दिन समाचार पत्रों के आने की धैर्यहीनतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं।

अपरान्ह में जब कारागृह की कार्यशाला में कार्य की गति धीमी पड़ जाती है और जब कुछ सहवासी भीतर थोड़ी झपकी लेने चले जाते हैं अथवा ताश के पत्ते, शतरंज या पाशा खेलने के लिए बैठ जाते हैं या अपनी कार्यशाला के चारों ओर फुर्सत में विचरण करने लगते हैं, तब समाचार पत्र प्रेमी सर्किल जेलर के कार्यालय में पहुँचते हैं और कार्यालय के सहवासी लिपिक दैनिक समाचार पत्रों की कुछ प्रतियों की पूर्ति करने की

गुहार लगाते हैं। ऐसे सहवासियों को समाचार पत्रों की प्रतियाँ सर्किल जेलर के द्वारा उन्हें पढ़े जाने के बाद ही दी जाती है। दिलचस्पी लेने वाले सहवासियों को ऐसे अनुदेश दिए जाते हैं कि वे समाचार पत्रों को पढ़ने के पश्चात् वे उनकी प्रतियाँ समान रूप से दिलचस्पी लेने वाले सहवासियों को हस्तान्तरित करें। चूँकि प्रत्येक सर्किल (जिसमें लगभग 4 या 5 सौ सहवासी होते हैं) के सहवासियों को दैनिक समाचार पत्रों की दो या तीन प्रतियाँ उपलब्ध रहती हैं, अत: उन्हें पहले पहल चाहने वाले सहवासियों के बीच बहुत सी अशोभनीय स्थितियाँ अक्सर उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसी स्थितियों में किसे समाचार पत्र पहले मिले, इस संबंध में जेलर का आदेश अन्तिम होता था। जिन सहवासियों के अनुरोध अमान्य कर दिए जाते थे, वे इस घटना के लिए जिम्मेवार उन सभी कैदियों के विरूद्ध रुष्ट हो जाते थे तथा उनके ऐसे कार्य पर आपत्ति करते थे ऐसे अवसरों से सामान्यत: बचा जाता था और दिलचस्पी रखने वाले सहवासी अपने बीच यह तय किया करते थे कि कौन समाचार पत्र पहले पढ़ेगा। बहुत बार वे स्वयं के बीच समाचार पत्र के पृष्ठ वितरित किया करते थे और बारी बारी से उन्हें पढ़ा करते थे।

कारागृह सहवासी किन समाचार पदों को दिलचस्पीपूर्वक पढ़ते थे, इसका पता लगाना कठिन नहीं था। कैदियों को दी गई छूट के बारे में , पैरोल शर्तों में परिवर्तन के बारे में एक या दूसरे कारागृह से बचकर भागने, कारागृह में दंगा और भूख-हड़ताल होने के बारे में , ऐसे किसी कारागृह के राज्य के जेल मंत्री के आकस्मिक जाँच दौरे के बारे में, जहाँ किसी धोखाधड़ी का उन्हें संदेह रहा हो और जहाँ उन्होंने उस कारागृह के कुछ संबंधित अधिकारियों के निलम्बन की अन्तिम रूप में घोषणा की हो, के समाचारों की तुलना में सहवासियों को राजनीतिक खबरें (राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों) कम मनोरंजक होती थीं। यदि संयोग से ऐसा कोई समाचार मद समाचार पत्र में छपी हो, तो वह जंगली आग जैसी फैल जाती थी और करीब-करीब प्रत्येक सहवासी उसे उत्सुकता तथा आनंदपूर्वक पढ़ता या दूसरों से सुनता था। ऐसा समाचार मदों पर चर्चाएं दो या तीन के समूहों में या और अधिक सहवासियों के बीच अनेक दिनों तक हुआ करती थीं।

कुछ सहवासियों ने शोधकर्त्ता से कहा कि कारागृह प्राधिकारी सहवासियों की रुचियों से परिचित हैं और इसलिए वे समाचार पत्र की प्रति सहवासियों तक पहुँचने से पूर्ण ऐसी समाचार मदों को कैंची से काटकर अपने पास रख लेते थे। जो सहवासी नियमित रूप से समाचार पत्र पढ़ते थे वे इस प्रकार की

सेंसरी की कटु आलोचना करते थे।

जिन अन्य समाचार मदों को सहवासी समान दिलचस्पी से पढ़ते थे, वे ऐसी थीं जिनका संबंध महत्वपूर्ण हत्या और डकैती प्रकरणों में आपराधिक खबरों या न्यायालयीन निर्णयों से होता था। तीसरा महत्व उन समाचारों का होता था जो सहवासियों के गृह जिलों में घटित घटनाओं के बारे में दिए जाते थे। यह शायद उन्हें उनके पिछले प्रभाव क्षेत्र में घटित स्थितियों का परिचय देता था।

सहवासी कभी हास्यजनक चित्रों और कार्टूनों को देखने से नहीं चूकते थे और उन्हें उनसे कुछ मिनटों के लिए बहुत मजा आता था। राजनीतिक खबरें केवल उस समय महत्वपूर्ण होती थीं जब राज्य के चुनाव होने वाले हों या देश (भारत) अपने किसी पड़ोसी देश विशेषकर पाकिस्तान से युद्ध की देहरी पर हो। संपादकीय या अन्य लेख शायद ही कभी पढ़े जाते थे और सहवासी समाचार पत्र वाचकों के द्वारा उन्हें नहीं पढ़ा जाता था।

उन पर समाचार पत्र वाचन के वास्तविक प्रभाव के बारे में या सामान्यत: कैदी जनसंख्या पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में पूछे जाने पर संबंधित प्रत्यार्थी ने उत्तर दिया कि कारागृह के जीवन से उनका ध्यान बंटता है, हांलाकि वैसा अस्थायी रूप से होता है और वे कुछ समय के लिए कारागृह के जीवन के नैराश्य को भूल जाते हैं। वह उन्हें बाहरी संसार में होने वाली घटनाओं की जानकारी भी प्रदान करता है इसके विपरीत जो सहवासी समाचार पत्र नहीं पढ़ना चाहते और जेल की दीवारों के बाहर जो घटित हो रहा है, उस पर चर्चा नहीं करना चाहते, उन्होंने कहा कि ''जब हम जेल में हैं, तब हम बाहर के घटना क्रम को प्रभावित नहीं कर सकते, व्यावहारिक रूप में उन घटना-क्रमों के बारे में चिंता करना निरर्थक है जो हमारे नियंत्रण से परे है।''

100 सहवासियों की वाचन दिलचस्पी में जाँच से निम्नलिखित जानकारी मिली :

1. महापुरुषों की आत्मकथाओं और जीवनियों के वाचन में मुख्य रूप से दिलचस्पी रखने वाले (15.34%)

2. धार्मिक पुस्तकें पढ़ने में मुख्य रूप से दिलचस्पी रखने वाले (36.13%)

3. कथा साहित्य, काव्य, लघु कहानियों की पुस्तकें और अपराध वृतांतों में मुख्य रूप से दिलचस्पी रखने वाले (8.42%)

4. मुख्य रूप से ऐसी पुस्तकें पढ़ने में दिलचस्पी रखने वाले जो इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और प्राथमिक विज्ञान की जानकारी देती हैं (9.40%)

5. मुख्य रूप से समाचार पत्रों , साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाओं के दैनिक वाचन में दिलचस्पी रखने वाले (25.71%)

6. किसी विशेष समय में जो भी उपलब्ध हो, उसे पढ़ने मे दिलचस्पी रखने वाले (5.00%)

कारागृह सहवासियों की वाचन रुचियों के बारे में आवश्यक निष्कर्ष यह था कि उनमें से अधिकांश (उनके शैक्षणिक स्तर के बावजूद) धार्मिक पुस्तकें, लघु कहानियां और रामायण, महाभारत,गीता,हनुमान चालीसा, दुर्गा चालीसा, ब्रज विलास जैसे महान हिन्दु महाकाव्य और सन्त कवि तुलसीदास के अन्य महान ग्रन्थ पढ़ने के शौकीन थे।

जैसा कि सहवासी पुस्तकालय अध्यक्ष ने शोधकर्ता को बताया , इन पुस्तकों की भारी मांग थी। सहवासी उन्हें पढ़ते हैं और पुन: पढ़ते हैं, कुछ उनमें अपनी रुचि कि कारण और अन्य उन पुस्तकों की अन्तर्निहित पावनता में उनके अडिग विश्वास की वजह से उन्हें बार बार पढ़ते हैं। ऐसे धार्मिक प्रवृति के सहवासियों के लिए जिनका यह अडिग विश्वास था कि पापकर्ता को अत्याधिक धार्मिकता के प्रदर्शन से सहारा मिल सकता है, इन पुस्तकों के पढ़े जाने को स्वर्गीय मुक्ति और माफी के लिए एक विश्वस्तम तरीके के रूप में लिया गया। इस प्रकार के धार्मिक रूप में झुकाव वाले सहवासियों की उम्र चालीस वर्षों से भी अधिक की आंकी गई। सहवासी की उम्र जितनी अधिक होती थी, उसकी दिलचस्पी धर्म, अनुष्ठान तथा पूजापाठ में उतनी ही अधिक थी।

सहवासियों का एक अन्य बड़ा वर्ग (अपेक्षाकृत कम उम्र का वर्ग) सामाजिक-रोमानी कथा-साहित्य उपन्यासों छोटी कहानियों तथा अपराध की सनसनीखेज रचनाओं में दिलचस्पी रखता था। ऐसी पुस्तकों का वाचन उनकी कैद की सजा से पहले के वाचन के विस्तार के रूप में बताया गया।

इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल और सामान्य विज्ञान पर पुस्तकें पढ़ने के इच्छुक सहवासियों की लघु संख्या के लिए जो कारण जिम्मेवार थे, वे इस प्रकार के थे :

1. सहज और हल्के-फुल्के वाचन के लिए कैदियों के द्वारा तरजीह

2. हृदयगम करने में कठिन या क्लिष्ट वाचन सामग्री के प्रति कैदियों की सामान्य उदासीनता जाँच

ने आगे खुलासा किया कि सामन्य त: कैदी पुस्तकें पढ़ने के बारे में कम उत्साही थे, हाँलाकि उनके पास बहुत-सा फुर्सत का समय था। अत्यत्सुक पाठक (5 %)ऐसे आकस्मिक पाठकों (67.00%) की तुलना में थोड़े से थे, जो हर माह एक या दो पुस्तकें उधार लेते थे। पढ़ने और उसे एक चस्के के रूप में कारागृह में फुर्सत के समय का उपभोग करने हेतु विकसित करने में दिलचस्पी की कमी के बहुत से कारण थे। मुख्य कारण थे :-

1. कैदी समुदाय का आपराधिक सांस्कृतिक वातावरण जहाँ ''अपराध में शिक्षा '' और ''समाज विरोधी व्यवहार '' पर बल ''मस्तिष्क की शिक्षा'' तथा व्यवहार के सामाजिक रूप में अनुमोदित मानदंडो पर बल की अपेक्षा कहीं अधिक सुस्पष्ट था

2. एक सामाजिक वर्ग के रूप में कैदियों की शैक्षणिक संप्राप्तियों का सामान्यत:निम्न स्तर,

3. अपने दिन प्रतिदिन के कार्यादि में पुस्तकीय ज्ञान की स्पष्ट व्यर्थता या सारहीनता ,

4. कारागृह की शिक्षा पद्यति का आयोजन और नियोजन मूलक व्यवस्थांए प्रोत्साहित करने के बदले में अनावश्यक तरीकों से पुस्तक प्रेमी सहवासियों को निरुस्साहित करती थी, और

5. कैदी जिन पुस्तकों को पढ़ना चाहते थे उनकी आवश्यक संख्या में अनुपलब्धता

बेहतर पद्यति के लिए सहबासियों के सुझाव:-

कारागृह के विद्यालय और पुस्तकालय सुविधाओं से लाभ उठाने वाले सहवासियों ने व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए निम्न लिखित सुझाव दिए :-

1. पुराने किस्म की बैरकों में स्थित किए जाने के बदले कारागृह विद्यालय को विद्यालय जैसा अलग भवन दिया जाए जिसमें पर्याप्त संख्या मे कक्षाओं के कमरे कुर्सियां मेजें । श्यामपट और अन्य आवश्यक सुविधाएँ और उपकरण हों (75%)

2. अर्हता प्राप्त और प्रशिक्षित सिद्धोस्तर के शिक्षा अध्यापकों का पर्याप्त संख्या में लगाया जाना (68.53%)

3. कक्षा में प्रतिष्ठ सहवासियों के लिए नियमित और अवाध शिक्षण घंटे (45.25%)

4. कारागृह के शैक्षणिक कार्यक्रम में सम्मिलित अनिवार्य तत्व निकाल दिया जाए और केवल ऐसे सहवासियों को शिक्षा दी जाए जो उसे पाने के इच्छुक हों और जिनके लिए शिक्षा भविष्य में बेहतर

पुर्नवासमुसख अवसर प्रदान कर सकें (24.25%)

5. उन सभी सहवासियो के लिए पर्याप्त सुविधाएं होनी चाहिए जो उच्चतर शिक्षा जारी रखना चाहते हों (6.00%)

6. तीन आर (पढ़ना लिखना और अंकगणित) शिक्षा के साथ-साथ व्यवसायिक प्रशिक्षण और बागवानी इंजीनियरी के लिए प्रबंध किए जाए जिससे जेल से रिहाई के पश्चात कृषकों को तथा व्यवसायिक काम खोजने वालों दोनों को लाभ मिल सके (19.25%)

7. ऐसे सहवासियों के लिए विशेष छूट का प्रावधान होना चाहिए जो अपनी पढ़ाई या अध्ययन प्रशंसनीय प्रयास और ध्यान से करते हैं (25.50%)

कारागृह पुस्तकालय के लिए बेहतरी प्रदान करने की दृष्टि से शोध कर्ता के नमूने के सौ सहवासियों ने जिनके नाम कारागृह की पाठक पुस्तीका की सूची में दर्ज पाए गये। निम्नलिखित सुझाव दिये गए :-

1. कारागृह में एक बड़ा केन्द्रीय स्ववाचन कक्ष होना चाहिए।जिसमें कम से कम एक समय में 100 सहवासियो के बैठने की जगह हो (88%)

2. इस वाचन कक्ष के साथ केन्द्रीय पुस्तकालय के कार्यालय और रेक रखने के कक्ष स्थित हों (63%)

3. दक्षता पूर्ण और सहज संचालन के लिए कारागृह पुस्तकालय में उसके अपने प्रशिक्षिक और विशैष योग्यता प्राप्त कर्मचारी होने चाहिए (46.03%)

4. कारागृह सहवासियों की अनोखी मांगो की पूर्ति के लिए पुस्तकों का चयन बुद्धिमतता से किया जाए (38.11%)

5. फटी पुरानी पुस्तकों के स्थान में नई किताबें चाहे गए शीर्षकों सहित और दिलचस्पी पैदा करने वाली विषय वस्तु सहित रखी जाए क्योंकि फटी पुरानी पुस्तकों को पढ़ना उन्हें नहीं भाता (42.07%)

6. जिन पुस्तकों की मांग अत्यधिक हो उन सभी की 50 से लेकर 100 प्रतियां होनी चाहिए (58%)

7. केन्द्रीय पुस्तकालय सभी कार्य दिवसों पर दस बजे सबेरे से पाँच बजे शाम तक काम करें (12%)

8. सहवासियों को एक समय में दो पुस्तकें लेने का अधिकार हो और उन्हें एक बार में कम से कम

बीस दिन की अवधि के लिए अपने पास रखने की अनुमति हो (29.19%)

कारागृह अधिकारियों का मत :-

शोध कर्ता ने कारागृह के उच्च अधिकारियों से अनेक अनौपचारिक वार्ताओं में कुछ प्रश्न उठाए जिनका अत्याधिक संबंध कैदियों के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम के दक्षता पूर्ण और सुगम संचालन से था। अधिकारियों ने विद्यालय और पुस्तकालय के लिए एक अलग भवन की आवश्यकता की बात को हिचकिचाते हुए मानकर और यह मानकर कि उन्हें संचालित करने के लिए अर्हता प्राप्त और प्रशिक्षित कर्मचारियों का विशेष रूप से महत्व है केवल इस बात की शिकायत की उनके पास हमेशा निधियों की अपर्याप्तता रहती है। वर्तमान समय की दांडिक समरचना में अपनीनिश्चित परिवर्तन संबंधी राय का फलीभूत होना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि कारागृह भिखमंगों जैसा तृष्ट रहेगा उनकी राय में पैसे और सामग्री की कमी कारागृहों और कैदियों को विरूपित और सुखहीन बनाती है। उनके विचार से सुधार के दर्शन की सुविकृति कारागृहों में यथास्थिति बाद को हटाने में सहायक नहीं होगी। अपने आप की सराहना करते हुए अधिकारी यह कहने में करीब-करीब एक मत थे कि थोड़े से बजट और पदत्य व्यवस्था में कारागृह विद्यालय और पुस्तकालय बहुत अच्छी तरह कार्य कर रहे थे। कारागृह में शिक्षा के सम्बंध में सहवासियों के द्वारा जिन समस्याओं का सामना किया गया उनके बारे में अधिकारियों ने कहा कि उनकी बहुत सी शिकायतें 'झूठी' 'आधारहीन' और 'कल्पित' थीं।

कैदियों के लिए चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाएँ :-

चूंकि कारागृह एक "सम्पूर्ण संस्था" है अत: उसकी जिम्मेदारी कैदियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सुरक्षा और अनुरक्षण की है।[36] अतएव कारागृहों में चिकित्सा व प्रशासन का उद्देश्य मुख्यत: कैदियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने और ठीक ठाक रखने तथा संस्था की सामान्य सफाई और स्वास्थ्य रक्षा को संतोष जनक स्तर तक बनाए रखने का है।[37] कैदियों के स्वास्थ्य और सुरक्षण के प्रति इस दायित्व का निर्वाह करने के लिए कारागृह प्रशासन पूर्ण कालिक प्रशिक्षित कर्मचारी नियुक्त करता है तथा आवश्यक चिकित्सा, शल्य क्रिया, दंत चिकित्सा और मनोरोग के लिए प्रावधानों सहित पर्याप्त रूप में सज्जित चिकित्सालय का रखरखाव करता है।

पूर्व प्रभाव को देखकर हम पाते हैं कि कारागृह प्रशासन की हमेशा बहुत गंभीर आलोचना

की जाती रही है ।[38] भारतीय जेल समिति ने देश में कुछ कारागृह चिकित्सालयों के संत्रांस दुर्दशा के सनसनीखेज चित्रों को दर्शाते हुए बहुत सारे प्रमाण जुटाए हैं हालाकि समिति ने (भारतीय कारागृहों में स्वास्थ्य सेवाओं के दोषों की ओर तीव्र ध्यान आकर्षित करते हुए) बहुत सारे प्रमाणों को प्रभाव शून्य रूप में खारिज कर दिया और कहा कि प्रमाण तथ्यो के अनुसार नही हैं। किन्तु उसने माना कि कारागृहों में चिकित्सालय उस प्रगति की गति पकड़ने में असफल रहे हैं , जो जेल के बाहर उसी प्रकार की संस्थाओं में हाल के वर्षों के दौरान घटित हुई है। कारागृह चिकित्सालयों ने कोई महत्वपूर्ण प्रगति नहीं की है और उनमें से बहुत से उसी स्थिति में हैं जिसमें वे एक पीढ़ी पहले थे ।[39] संयुक्त प्रांत में कारागृह सुधारो पर अनुवर्ती समिति ने उन दोषों और कमियो को दूर करने के लिए बहुत सारी मूल्यवान सिफारिशें की जो दोष और कमियां राज्य बंदीगृहों के चिकित्सालयों के संचालन पर विपरीत प्रभाव डालती थी। कुछ महत्वपूर्ण शिकायतें इस प्रकार हैं :-

1. प्रत्येक चिकित्सालय में एक सुप्रकाशित और अच्छा हवादार औषधालय तथा संतोषजनक भण्डार कक्ष होना चाहिए ।[40]

2. समस्त केन्द्रीय कारागृहों में एक ऐसा प्रशासनिक ब्लाक होना चाहिए जिसमें ऐसे मरीजों की जांच तथा इलाज के लिए उचित स्थान, उचित प्रकाश और सुविधाएँ हो, चाहे उन मरीजो को चिकित्सालय में बाद में भर्ती होने की आवश्यकता रहे या न रहे ।[41]

3. कारागृहों के लिए अलग और स्वतंत्र चिकित्सा सेवा बनाई जानी चाहिए ।[42]

4. शुरु में जेल या उसके किसी भाग कोमानसिक रूप में दोषी कैदियों से अलग रखा जाना चाहिए और एक मनोरोग विशेषज्ञ इस संस्था का प्रभारी बनाया जाना चाहिए ।[43]

5. हम सोचते हैं कि रोगी की परिचर्या और देखभाल का महत्व औषधियाँ देने तथा शल्य क्रिया करने की अपेक्षा बहुत अधिक है और यह कि परिचर्या के लिए केवल सिद्ध दोषों पर निर्भर करना उचित नहीं है ।[44]

6. समिति का विचार है कि केन्द्रीय कारागृहों और विभिन्न वर्गों के जिला कारागृहों में वर्तमान चिकित्सा कर्मचारी अपर्याप्त संख्या में हैं और वे रोगी की देखभाल और चिकित्सा के प्रति आवश्यक मात्रा में ध्यान नहीं दे सकते हैं ।[45]

7. कारागृहों में बहुत से चिकित्सालय प्रकाश हीन और सुनसान या निरानंद हैं। अतः हम सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक कारागृह चिकित्सालय को भवन और उपकरणों और रोग निदान कैदियों के उपचार के लिए आवश्यक अद्यतन औजारों सहित दोनों दृष्टियों से अध्यतन बनाया जाए और ये सब चीजें सभी महत्वपूर्ण कारागृहों को प्रदान की जाएँ, [46]

हालांकि कारागृहों में इनमे से कुछ सिफारिसों को पूर्ण या आंशिक रूप में कार्यान्वित किया गया है , फिर भी यह सच है कि कैदियों के लिए स्वास्थ्य सेवाएं असंतोषजनक बनी हुई हैं।

कारागृह चिकित्सालय :-

चिकित्सा अधिकारी के कथन के अनुसार कारागृह चिकित्सालय अच्छी तरह से सुसज्जित हैं और वह अपने रोगियों का उपचार पर्याप्त संतोष जनक रूप में करता है।वह कारागृह के मध्य में स्थित हो और उसमें तीन पूर्ण कालिक चिकित्सक (एक प्रभारी चिकित्सा अधिकारी और दो सहायक चिकित्सा अधिकारी) दो पूर्णकालिक प्रशिक्षित कम्पांउडर चार प्रशिक्षित और दो अप्रशिक्षित सहवासी परिचर्या अर्दली हैं। अंतरंग मरीजों के लिए चिकित्सा व शल्य क्रिया वार्ड है उसके साथ क्षय रोगियों और मानसिक रोगियों के लिए दो अलग वार्ड हैं स्वागत वार्ड के दोनों ओर के दो बड़े बाजू के बरामदों का उपयोग करके अंतरंग स्थान को बढ़ाया जा सकता है। चिकित्सा जाँच कक्ष, औषधालय और चिकित्सा रसोईघर बहुत कम दूरी पर स्थित हैं। क्षय रोग से ग्रसित रोगी और मानसिक रोगी सहवासियों को लघुअवधि केलिए रोककर रखा जाता है और उनके विशेषज्ञता पूर्ण उपचार के लिए उन्हें तुरंत बेहतर चिकित्सालयों में स्थानांतरित किया जाता है। शल्य क्रिया चिकित्सा, हाइड्रोसील की शल्य क्रिया जैसी लघु शल्य क्रिया तक सीमित रहती है। जटिल और उन्नत स्तर के शल्य तथा चिकित्सा उपचार की अपेक्षा रखने वाले मामलों को सिविल सर्जन के विशेषज्ञता संधान हेतु जिला चिकित्सालय को निर्दिष्ट किया जाता है।

चूंकि कैदी यह चयन करने के लिए कि वह चिकित्सक के पास जाए या नहीं इसके लिए स्वतंत्र अभिकर्ता नहीं रहा है, अतः सर्वाधिक आसान चिकित्सा इलाज के लिए भी पूर्णतः और एक मात्र रूप में जेलर पर आश्रित है। [47] जो पद्धति रोगी सहवासियों को कारागृह चिकित्सकों को ध्यान और देखभाल को प्राप्त करने की अनुमति देती है, उसे दंड या दंड शास्त्रीय क्षेत्र में "सिककाल के रूप में जाना जाता है।" जो कैदी बीमार है या जिन्हें चिकित्सीय ध्यान की जरूरत है वे जाँच और उपचार के लिए जेल चिकित्सक के

पास जा सकते हैं। यह एक नियमित दैनिक कार्यविधि है। इसमें सामान्यत: पास देने की पद्धति रहती है, जो कैदियों को चिकित्सक के पास जाने की अनुमति देती है।[48] जो कैदी बीमार होने की सूचना देते हैं और डाक्टर के पास पहुंचना चाहते हैं, उन्हें जेल अधिकारियों से सीधी प्रार्थना करनी पड़ती है। इसके बाद ये जेल अधिकारी डॉक्टर के द्वारा उनकी जाँच की व्यवस्था करते हैं।[49] यह पद्धति उस समय लागू नहीं होती जब कोई गंभीर दुर्घटना हुई हो अथवा कोई गंभीर चोट लगी हो, जिसके कारण सहवासी की चिकित्सा तत्काल की जानी हो।

सिककाल की पद्धति: उस पर वास्तविक अमल :-

कारागृह के रोगी सहवासियों को प्रभारी जेलर के द्वारा उन्हें दी गई सिफारिशी टिप्पणी के आधार पर चिकित्सकीय इलाज प्राप्त होता है वे अपनी स्वेच्छा से चिकित्सा कर्मियों के पास नहीं जा सकते हैं। कार्यविधिक रूप में उन्हें पहले अपनी बीमारी के प्रकार की सूचना ड्यूटी पर तैनात सिद्धदोष अधिकारी या परिरक्षक (गार्ड) को देनी होती है। जो उनकी शिकायत प्रभारी जेलर को सूचित करता है और आवश्यक होने पर उसे उसके सामने पेश करता है। प्रभारी जेलर स्वयं की संतुष्टि इस प्रकार करता है कि सिककाल का अनुरोध सत्य है या झूठ। यदि वह चाहे तो बीमारी, यदि वह स्पष्ट और अवलोकन करने योग्य हो तो उसके प्रकार को प्रत्यक्ष रूप में सत्यापित भी कर सकता है। अधिकांश मामलों में संबंधित जेलर उन सहवासी अधिकारियों (सिद्धदोष ओवर सियर और सिद्धदोष बार्डन) के कहने पर सिफारिश करते हैं। जो बाद में मरीज को कारागृह चिकित्सालय ले जाने के लिंए उत्तरदायी बनाये जाते हैं।

इस प्रकार कारागृह चिकित्सक के पास पहुंचने की अनुमति प्राप्त करना बीमार सहवासियों के लिए एक जटिल प्रक्रिया बना दी गई है। बहुत से अवसरों पर बीमारी का बहांना बनाने के आधार पर चिकित्सक के पास जाने की अनुमति नहीं दी जाती है। यदि बीमार सहवासी घोर सिरदर्द या पेट में दर्द, हल्की सर्दी और खांसी, दस्त पेचिश या किसी अन्य कारागृह रोग (जिसमें रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते) की शिकायतें करता है तो कारागृह अधिकारी सिककाल के लिए सहवासियों की प्रार्थना को गंभीरता से नहीं लेते। ऐसे मामलों में अधिक परेशान करने वाली जांच शुरू की जाती है और यदि किसी भी प्रकार के किसी कारण से सहवासी अपनी बीमारी का औचित्य सिद्ध न कर पाए तो संबंधित अधिकारी के द्वारा डॉक्टर की चिकित्सा पाने के विशेषाधिकार से उसे बंचित कर दिया जाता है। कुछ मामलों में जब बीमारी

का बहाना सिद्ध हो जाता है तो बहाना करने वाले सहवासी को चेतावनी दी जाती है अथवा उसे गंदी गालियाँ देकर फटकारा जाता है। कारागृह का यह संदेह आधारित नजरिया आवश्यक रूप में गलत धारणा पर आधारित नहीं है। कारागृह चिकित्सालयों में बीमारी का झूठा बहाना बनाना एक समस्या है और ऐसे मौके आते है जब कुछ सहवासी इस पद्धति को अपनाते है।[50] वे बीमारी का झूठा बहाना बनाते हैं और उनका उद्देश्य कारागृह के कठिन काम की एवज में चिकित्सालय में अपेक्षाकृत आराम दायक बिस्तर पर आराम करने तथा कदाचित थोड़ा बेहतर भोजन भी करने का होता है।[51]

चिकित्सालय पहुँचने पर रूग्ण सहवासी को चिकित्सक के कमरे में एक अन्य जाँच परीक्षण का सामना करता है। चिकित्सक फिर से पता लगाता है कि बीमारी या रोग की शिकायत वास्तव में सच है या नहीं। थोड़े से प्रश्न पूछने और स्वास्थ्य परीक्षण के पश्चात ड्यूटी पर तैनात डाक्टर (चिकित्सक) तदनुसार औषधि लिखता है। चिकित्सक सामान्यत: तीन कार्रवाइयाँ अपनाते हैं। (1) प्रथमोपचार के बाद या मिश्रण (मिक्सचर) या खाने की गोलियां देकर सहवासी को वापस भेज देते हैं। (2) रोगी को आगे अवलोकनार्थ तथा अन्य आवश्यक परीक्षणों के लिए रोक लेते हैं। (3) रोगी को अधिक समय के लिए अंतरंग उपचार हेतु चिकित्सालय में भरती कर लेते हैं।

प्रथमोचार उस समय दिया जाता है जब छोटी-मोटी शारीरिक चोटें, घाव या जख्म आदि हो और मिक्चर तथा गोलियाँ आदि उस समय दी जाती हैं जब बुखार, सर्दी, खांसी, दस्त (अतिसार) पेचिश या अन्य शरीर-दर्ज की शिकायतें हों। सहवासियों को ऐसे मामलों में रोककर रखा जाता है, जब छाती में दर्द, कफ में रक्त की शिकायतें हों तथा किसी मानसिक अवसामान्यता का संदेह हो। अस्पताल में भर्ती किया जाना विरले मामलों में संभव है और वह भी जब पेट में निरंतर दर्द हो, न्यूमोनिया आन्त्रज्वर, अतिसारहो या बार -बार मिर्गी के दौरे पड़ते हों या बदमिजाजी (झोंक) से जंगली स्वभाव हो जाता हो।

चूंकि चिकित्सालय कर्मचारी निश्चित रूप से यह जानते हैं कि बहुत-से मामलों में मरीज केवल एक रागिया (कामचोर) होगा, तो वे उनके सामान्यत: मिक्चर और गोलियाँ देते हैं, मुख्य रूप से उन्हें यह भय रहता है कि मरीज चिकित्सालय के अहाते से बाहर होते ही उन्हें फेंक देगा। ऐसा उन शिकायतों को ध्यान में रखकर किया जाता है जिनमें यह सूचित किया गया कि कुछ सहवासियों ने अन्यथा कीमती गोलियों का दुरूपयोग किया या उन्हें बर्बाद किया। मिक्चरों की पूर्ति सहवासियों को

नहीं की जाती क्योंकि नियमों के अनुसार सहवासी अपने पास कांच की बोतल नहीं रख सकते। यह कारागृह में एक सुरक्षा उपाय है जहाँ अन्य पेने शस्त्रों के अभाव में कांच के टुकड़ों का प्रयोग गला काटने के औजारों के रूप में किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त कारागृह के चिकित्सा स्टाफ के किसी सदस्य की उपस्थिति में मिक्चर और गोलियों का उपयोग करना आवश्यक बना दिया गया है क्योंकि कुछ मामलों में निरक्षर और चिड़चिड़े सहवासी कुछ नहीं समझ पाते और अपने आप अनेक प्रकार की सभी गोलियों की मिली जुली खुराक नहीं बना पाते। उनके मामलें में ऐसा करना केवल औषधियों के गलत प्रयोग से बचने का उपाय है। किंतु मिक्चरों से ठीक विपरीत ऐसे सहवासियों को बिना किसी हिचकिचाहट के गोलियां दी जाती हैं जिसके बारे में चिकित्सक इस प्रकार आश्वस्त हो कि सहवासी गोलियों का उपयोग ठीक तरह से करेगा और गोलियों को दिए गए अनुदेशों के अनुसार ठीक समय पर खाएगा।

कारागृह में ऐसे सहवासियों का एक विचित्र वर्ग था, जो चिकित्सालय इलाज कराने के लिए नहीं जाते थे, बल्कि अशक्त ,बुढ़ापे, कमजोरी, घोर थकान तथा शारीरिक अशक्तता के आधार पर विशेष चिकित्सा भोजन के लिए चिकित्सक की सिफारिश प्राप्त करने के लिए जाते थे। भोजन जिसमें दूध, चावल अंडे, मांस, मख्खन, घी, रबड़ी होते थे, के लिए कारागृह में उनका लोभ समझ में आने की बात थी, जहाँ अधिकांश सहवासियों को कम कैलोरी मूल्य का घटिया खाना खाकर रहना पड़ता था। चिकित्सक की अनुकम्पा चाहने वाले सहयोगियों के इस वर्ग में सामान्यत: (45 वर्ष से अधिक उम्र के) प्रौढ़ व्यक्ति शामिल थे। जिनके लिए कुछ प्रतिवादियों ने कहा- जब कारागृह अभिरक्षकों से कुछ कृपा दृष्टि प्राप्त करने का समय आता है। तब आत्म सम्मान और समादर कुछ भी नहीं रह जाता। प्राप्त सूचना के अनुसार इन सहवासियों को वास्तव में उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिए उनके सामने इस प्रकार प्रार्थना करनी पड़ती थी कि जिसे कोई स्वाभिमानी व्यक्ति सामान्यत: एक अपमानजनक समझौते के रूप में लेता। किंतु इस प्रकार के सहवासियों के अलावा कारागृह में ऐसे युवा और वृद्ध सहवासी थे जो चिकित्सा भोजन के लिए ललकते थे, और हाथ जोड़कर चिकित्सक की कृपा दृष्टि की मांग करते थे। जो सहवासी अपने इरादे में सफल हो जाते थे, वे अपनी जीत का जश्न मनाते थे। किंतु जिन्हें अपने प्रयत्नों में सफलता नहीं मिलती थी, वे असंतुष्ट होकर चिकित्सक की आलोचना अधिक उम्र प्राप्त सहवासियों के प्रति उसकी कठोर और कंजूसी

पूर्ण प्रवृत्ति के लिए करते थे। इस वर्ग के कुछ सहवासी विशेषाधिकार पूर्ण भोजन नहीं चाहते थे। वे किसी हल्के किस्म के काम पर लगाये जाने के लिए चिकित्सक का प्रमाण-पत्र या उसकी सिफारिश चाहते थे। क्योंकि इस प्रकार की कृपादृष्टि चाहने वाले कुछ सहवासियों की वास्तविक जरूरत हल्के श्रम की थीं। किंतु उनमें से बहुतों के लिए वह किसी मेहनती काम से बचने का एक बहाना मात्र था।

इस प्रकार ऐसे सहवासियों के लिए जिन्हें चिकित्सा भोजन का लालच या कार्य से मुक्ति का लालच प्रिय था या आवश्यक भी था। उनके लिए कारागृह चिकित्सक की हैसियत बहुत अधिक महत्व की थी। दूसरे सहवासियों के लिए वह एक पेशेवर व्यक्ति था। जिसके पास केवल तभी जाया जाए, जब जरूरी हो, और वह भी किसी सही प्रयोजन से।

काम से बचने के बहाने की समस्या :-

कारागृह में कामचो र सामान्यत: शारीरिक कमजोरी, पेट में और शरीर के अन्य भागों में बहुत अधिक दर्द, चक्कर आने या सिर घूमने, संदेहपूर्ण घवराहट के होने और मिर्गी के दौरे पड़ने की शिकायतें करते थे।

कारागृह के चिकित्सक ने शोधकर्ता से कहा कि उसने सामान्यत: कामचारों के इन बहाने बाजियों को रद्द नहीं किया। उसने उन्हें नम्रता से सुना और उन्हें केवल उस समय रोककर रखने या चिकित्सालय में भर्ती करने का आश्वासन दिया जब ऐसे व्यक्तियों ने अपने इलाज का निश्चित समय तक कराने की इच्छा व्यक्त की। चिकित्सक ने कहा- यह सहवासी को फंसाने का एक जाल था, जिसमें फंसकर उसे झूठे इलाज के दौरान लम्बे समय तक इलाज कराना पड़ता, अप्रभावी तथा कड़बे मिक्चर और गोलियों का उपयोग करना पड़ता।

अधिकांश मामलों में चिकित्सक की यह तकनीक सफल हुई। और कामचोर सहवासियों ने कटु और स्वादहीन दवाओं और गोलियों को आशा के विपरीत निगलने के पश्चात हर दिन चिकित्सालय पहुँचना बंद कर दिया। ऐसे मुट्ठी भर सहवासियों के लिए जिन्होंने सभी प्रकार के पाश्विक कृत्य करके पागल पन का स्वांग रचा, उन पर अपेक्षाकृत एक कष्टप्रद उपाय लागू किया गया, उनकों या तो एक महीने या वैसी अवधि के लिए अकेले रहने की सजा दी गई अथवा किसी कम स्थान वाली कोठरी में मानसिक रूप से बीमार सहवासी के साथ बंद करके रखा गया। कोठरी के एकदम अलग-थलग होने और मानसिक रूप से

बीमार सहवासी के साथ रहने के घबराहट पूर्ण अनुभव ने ऐसे कामचोर के झूठे पागल पन को सामान्यत: उससे भी कम समय में दूर कर दिया। जिसकों दूर करने के लिए सामान्यत: अधिक समय लगने की आशा की जाती थीं। उन्होंने अपनी बहाने बाजी छोड़ दी और वे बिल्कुल ठीक हो गए तथा होश में आ गए किंतु फिर भी कारागृह में सबसे अलग प्रकार के कामचोर बचे रहे। जो सुधबुध खोकर अपने शरीर में घाव (जख्म) कर लेते थे और मूर्खतापूर्ण ढंग से चिकित्सालय बिस्तर की शरण लेते थे। वे शारीरिक चोटें पहुँचाते थे अपने शरीर के अंगों मेंजख्म कर लेते थे अथवा अपनी अंगुलियाँ कुचल लेते थे उनमें से कुछ जानबूझ कर कुछ छोटें जख्मों पर किसी जहरीली जड़ी बूटी का बीज लगाते थे जिससे उनके जख्म थोड़े-से बड़े हो सकें। कुछ किसी देशी जहरीले पौधे का दूध चाटकर ज्वरग्रस्त अथवा किसी जंगली पौधे के विशेष पत्ते का रस अपनी आँखों के गोलकों में लगाते थे जिससे खून झलकता था। ये अतिबादी कामचोर सामान्यत: निराश कैदी होते थे जो सामान्यत: कठोर किस्म के किसी काम से बचने या आराम करने के लिए लालायित रहते थे। कहा जाता है कि वे इन अतिवादी उपायों का सहारा लेते थे। क्योंकि कारागृह प्रशासक उन्हें लगातार रियायतें देने से आना कानी किया करते थे।

इन बहानेबाज कामचोरों का तुरंत इलाज किया जाता था, भले ही चिकित्सकों को यह वास्तविक कहानी ज्ञात होती थी कि उन्होंने अपने रोग को किस प्रकार गम्भीर बनाया। कुछ ऐसे मामलों में जब रोग की स्थिति बदतर बन जाती थी उनमें शल्यक्रिया का सहारा लेना पड़ता था। शोधकर्ता के द्वारा आधार सामग्री जमा किए जाने की अवधि के दौरान ऐसे मामले हुए जिनमें शल्यक्रिया भी स्थाई शारीरिक नियोग्यता नहीं रोक सकी और फलत: सहवासी के पैरों को काटना पड़ा।

कारागृह चिकित्सकों के अनुसार कामचोरों की समस्या बहुत बड़े किस्म की थी। रोगियों की लाइन में हर दिन लगभग 20 से 30 प्रतिशत सहवासी लगे होते थे। जिनकी रूचि चिकित्सालय में रोककर रखे जाने या भर्ती किए जाने अथवा चिकित्सक की विशेष भोजन के लिए सिफारिश या दिए गए मेहनती काम से छूट में होती थी। इनमें से कुछ सहवासी रोग भ्रमी थे। जो उस समय भी अपने आप को रोगी बताते थे, जब उन्हें कोई गंभीर शारीरिक या मानसिक कष्ट नहीं होता था कारागृह में ऐसे झूठे मरीज स्वाभाविक रूप से शुरू में कारागृह चिकित्सकों के लिए एक समस्या पैदा करते थे। किंतु कैदियों के साथ काम करते हुए चिकित्सक जल्दी ही कामचोरों का पता लगाना सीख जाते थे और उनकी समस्याओं को प्रभावी रूप

में हल करने लगते थे। कारागृह चिकित्सक कामचोरों के विरूद्ध अपने आप को तैयार रखते थे। कामचोर ऐसे व्यक्ति थे जो वास्तविक रूप में बीमार नहीं थे किन्तु जो केवल बीमार की भूमिका का लाभ उठाना चाहते थे।

कारागृह के अभिरक्षक स्टाफ के ठीक विपरीत चिकित्सक सच्चाई को प्रमाणित करने के लिए दण्डात्मक विधियों का सहारा नहीं लेते थे। इसके बदले वे कारागृह में बहाना बनाने वाले रोगियों पर कुछ देशी उपाय -कुछ चिकित्सकीय और कुछ मनोवैज्ञानिक उपाय लागू करते थे। राबर्ट एम. ब्लेक ने अभ्युक्ति दी कि यह एक अच्छी नीति थी कि चिकित्सक बहानेबाज (कामचोर) कैदी को नहीं बुलाते थे, यदि उस प्रकार के विश्वास करने की उनके पास बजह नहीं होती थी। ऐसा करने से उन्हें सहवासी का साक्षात्कार लेने और यह पता लगाने का अवसर मिल जाता था कि कैदियों को यह जरूरी क्यों हो गया कि वे चिकित्सकों को धोखा दें। और इसके अतिरिक्त ऐसे सहवासियों को सहानुभूति पूर्वक जाँच के पश्चात् अक्सर उनकी समस्या का समाधान करने की कोई वास्तविक विधि का सुझाव देना संभव हो सके।[52] सहवासी को दोष न देना अथवा जब वे सिककाल विशेषाधिकार का सहारा लेते हैं, तब उस सहारे को कठिन न बनने देना एक अच्छी नीति है। भले ही सहवासियों की ऐसी प्रार्थनाओं से सुविधा दुरूपयोग हो सकता है, कठोर (सुदृढ़) बनने के दायित्व को लेने और विरोध उत्पन्न करने तथा कभी-कभी बीमारी के शीघ्र प्रारंभ होने की उपेक्षा करने की अपेक्षा उनकी प्रार्थना सुन लेना बेहतर है।[53]

कारागृह में मानसिक रूप से अवसामान्य का उपचार:-

कारागृह में बंदी बनना और कैदी की सजा की कठोरता अपने आप में एक ऐसी स्थिति निर्मित करती है जो कैदियों के मानसिक स्वास्थ्य की दशा के लिए एक खतरा है। सभी सहवासी आसानी से कारागृह वातावरण में लम्बे समय तक ठहरने के घबराहट पैदा करने वाले अनुभव को नहीं झेल पाते क्योंकि कारागृह में स्वतंत्रता और स्वशासन की हानि के साथ-साथ कुछ अन्य गंभीर शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रबंचनाओं का सामना करना होता है। इस विष की गांठ (वाइरस) से न केवल सीमा रेखा के मामले प्रभावित होते हैं बल्कि सामान्य इंन्द्रियों वाले सहवासी भी इसके शिकार हो जाते हैं।

यद्यपि शोधकर्ता बारंबार दुहराई गई अपनी इस अवधारणा को सिद्ध करने के लिए इस विषय पर पर्याप्त आधार-सामग्री नहीं जुटा सका। वह अवधारणा थी कि कुछ संस्थाओं में रहने वाले

व्यक्तियों के किसी अन्य वर्ग की अपेक्षा कैदियों के बीच मानसिक अपसामान्यता अधिक है, तथापि यह तथ्य बना हुआ है कि केन्द्रीय कारागृह के सहवासियों में ऐसे कैदियों की असामान्य संख्या है। यदि उन पर कुछ मानवीकृत मनोविकृति-परीक्षण किए जाएँ तो उन्हें मानसिक सेवा-सुश्रूषा और उपचार की आवश्यकता प्रतीत होगी। कारागृह के चिकित्सालय में मानसिक रूप से रूग्ण अथवा मनोवैज्ञानिक रूप में विचलित सहवासियों के लिए विशेष उपचार की सुविधाएँ नहीं है। कारागृह में चिकित्सकीय स्टाफ में कोई मनोचिकित्सक नहीं होता था। संरक्षण के कारणों से कारागृह में विकट मनोरोगियों को बंद रखने के लिए 24 कोठरियाँ थी। उन्हें तब तक इन कोठरियों में रखा जाता था जब तक कि केन्द्रीय कारागृह में उनके स्थानान्तरण के प्रबंध पूर्ण नहीं होते थे। केन्द्रीय कारागृह में प्रमाणीकरण और स्थानान्तरण का उपबंध केवल उस समय प्रवृत्त होता था जब कैदी का व्यवहार केवल कोठरी में बंदी बनाकर रखे जाने मात्र के द्वारा विनियंत्रित किए जाने के लिए पर्याप्त रूप में बेतुका न हो। किंतु इस उपबंध से मनोरोग से ग्रस्त उन सभी कैदियों की सूची समाप्त नहीं हुई जिन्होंने मनोचिकित्सीय रूप में मानसिक या स्नायविक खराबी के जानेमाने व्यवहार-संलक्षण प्रदर्शित किए और जिन्हें विशेषीकृत उपचार या चिकित्सा की आवश्यकता थी। किंतु ऐसे कैदियों ने कारागृह प्राधिकारियों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित नहीं किया। शोधकर्ता ने पाया कि मनोरोग कारागृह के चिकित्सा संसार में संदेह पूर्ण संबंध रखने वाली एक संदेह पूर्ण संकल्पना है। चरित्र गड़बड़ियाँ, व्यक्तित्व समस्या और मनोरोग चिकित्सा भी कारागृह के चिकित्सा स्टाफ के संदर्भ में सर्वथा अर्थहीन है।

कारागृह के चिकित्सा अधिकारियों और सहायक स्टाफ से बात करने और उनके दिन-प्रतिदिन के कार्यचालन को देखने के बाद शोधकर्ता को यह प्रतीत हुआ कि कारागृह के अन्य अधिकारियों के समान चिकित्सा अधिकारी भी उस समय तक सहवासियों के गिरते मानसिक स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं। जब तक कि वे हिंसक नहीं बन जाते तथा दूसरे सहवासियों के जीवन या कारागृह की सम्पत्ति के लिए गंभीर खतरा नहीं बन जाते।

जेल से बाहर के समुदाय की तरह कैदी समुदाय अपने ऐसे मानसिक रूप से रूग्ण सदस्यों के प्रति बहुत उपेक्षा का भाव रखते हैं। जो अपसामन्य व्यवहार के प्रतिरूप प्रदर्शित करते थे। अन्य कैदी उनसे सनकी या पागल के रूप में व्यवहार करते थे और उन्हें उनके अपरिवर्तनीय मानसिक दोषों सहित सड़ने देते

थे। मानसिक रूप से विकृत सहवासियों के प्रति व्यवहार की इस प्रक्रिया ने आक्रामक व्यवहार के खतरों के प्रति कारागृह समुदाय को उजागर किया। किंतु जेल में जहाँ अनुशासनिक कर्मचारी तथा कैदी स्वयं यह अच्छी तरह जानते हैं कि कैसे मनोविकृति समस्याओं से ग्रस्त सहवासियों के आक्रामक व्यवहार से उत्पन्न किन्हीं आशोचनीय स्थितियों से कैसे निपटा जाए। वहाँ इस शोधकर्ता को यह खतरा केवल सिद्धांत रूप में दिखाई दिया। उनके लिए तत्काल उपचार केवल पाशविक शारीरिक बल के प्रयोग का था उन्हें पहले बेहोश होने तक पीटा जाता था तथा बाद में उन्हें घसीटकर उनकी कोठरी में बंद कर दिया जाता था।

कारागृह चिकित्सा सेवाएँ: सहवासियों का मत:-

कारागृह चिकित्सालय एक बहुत बुरी संस्था है। यह विचार सहवासियों का रहा है। शोध आधार सामग्री हाथ में होने से यह प्रतीत हुआ कि सहवासियों की सदाशयता प्राप्त करने के बदले में उसने सामान्यत: दुर्भाव अर्जित किया तथा उसे सहवासियों की आलोचना, मुफ्त निंदा का शिकार होना पड़ा। किंतु हिताधिकारियों ने उसके बारे में कोई अच्छे विचार नहीं रखे और कैदियों के स्वास्थ्य तथा उनके शारीरिक अरोग्य के अनुरक्षण तथा सुरक्षण के लिए कारागृह के चिकित्सा कर्मचारियों के द्वारा जो भी किया गया उसकी भी उन्होंने निंदा की। प्रतिवादियों के विचार से कारागृह के चिकित्सा कर्मचारियों का जो चित्र उभरकर सामने आया, वह उदासीन सहानुभूतिहीन, संदिग्ध तथा उद्ण्ड प्रकार के लोगों के समूह का था और जहाँ तक आम तौर पर कैदियों के उनकी प्रवृत्ति और व्यवहार का संबंध था वे कारागृह के कठोर अन्य अभिरक्षक अधिकारियों से किसी प्रकार बेहतर नहीं थे। कारागृह में बीमार सहवासियों के प्रति उनका ध्यान पर्याप्त नहीं था। उनका उपचार अप्रभावी था और उनका व्यवहार हमेशा अच्छा नहीं था। बीमार सहवासियों को भरती न केवल अनिक्छा से किया जाता था, बल्कि उनके प्रति व्यवहार भी बहुत खराब हुआ करता था। एक कामचोर के रूप में कहे जाने के सर्वत्र व्याप्त डर से बहुत सारे प्रतिवादी कहते थे कि यथार्थ रूप में बीमार कैदी भी उस समय तक चिकित्सालय में जाना पसंद नहीं करते थे जब तक कि उनका दर्द उनसे सहा जाता था। ज्वर, सर्दी, खांसी, घाव और फोड़ों जैसी छोटी शिकायतों के लिए चिकित्सालय जाने के बदले अनेक जड़ी बूटियों के पत्तें और बृक्षों की छालों का रस पीने जैसे देशी आयुर्वेदीय उपायों का इस्तेमाल करना बेहतर समझते थे। कारागृह के कुछ बड़ी उम्र के सहवासी कारागृह में हमेशा ऐसे सहवासियों को ऐसी जड़ी बूटियों की स्वाभाविक किस्म आसानी से निर्धारित कर देते थे, जिसके बारे में बहुत से

सहवासियों ने कहा कि वह सस्ती चिकित्सालय गोलियों, लोशनों और मिक्चरों से कही अधिक प्रभावी सिद्ध हुई। अभ्यार्थियों ने यह नहीं कहा कि एलोपैथिकीय दवाएँ कम प्रभावी थी किंतु उन्होनें निश्चित रूप से कहा कि चिकित्सक सर्वोत्तम औषधियाँ कारागृह अभिरक्षकों और उनके परिवार के सदस्यों के उपयोग के लिए बचा लेते हैं और ऐसे साधारण सहवासियों के बीच उनका वितरण रोक देते हैं, जिनके लिए वे औषधियाँ यथार्थ में हुआ करती हैं। इस भावना से कारागृहों की चिकित्सकीय सेवाओं से सहवासियों का विश्वास उठ गया और वे चिकित्सालय के प्रति नफरत रखने लगे। कारागृह चिकित्सालय में उपचार केवल नाममात्र के लिए है। यह सहवासियों के समूह की खुलकर बारंबार की गई अभ्युक्ति थी। जब सीधे से सीधे कारागृह सहवासियों से यह उत्तर देने के लिए कहा जाता था कि क्या कारागृह चिकित्सालय में सब कुछ ठीक-ठाक है, तो वे नम्रता से अपना असंतोष व्यक्त करते थे। जो सहवासी कारागृह में अनेक बार बीमार पड़े थे, उन बहुसंख्यक सहवासियों की यह अभ्युक्ति थी- ''कारागृह में बीमार पड़ना एक बहुत दुखद अनुभव है।''

चिकित्सालय सेवा: चिकित्सा कर्मियों का कथन:-

कारागृह के चिकित्सालय के चिकित्सकों तथा सहायक स्टाफ के कुछ सदस्यों से अनौपचारिक और अव्यवस्थित बातचीत से शोधकर्ता ने यह राय व्यक्त की कि कारागृह के अन्य अधिकारियों की तरह चिकित्सा कर्मी भी पूर्णत: यह मानने तथा स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं थे कि सहवासियों ने कारागृह चिकित्सा सेवाओं की आलोचना करते समय शोधकर्ता से जो कुछ कहा था, वह सही था। इसमें विश्वास करना कठिन था किंतु प्रमाणित करना मुश्किल था। किंतु कारागृह के चिकित्सक ने स्वीकार किया कि विधियों की कमी ने उसके कर्मचारियों के कार्यचालन में निश्चित रूप से व्यवधान डाला है। कम्पाउण्डरों और सहवासी वार्ड-लड़कों के भ्रष्टाचार के बारे में वह केवल यह कह सका - ''उसके चिकित्सा कर्मियों में हो सकता है ऐसे कुछ व्यक्ति हों।'' इन भ्रष्ट कर्मचारियों की उसने व्यक्तिगत जानकारी से इंकार किया। वास्तविक रूप में बीमार सहवासी से अपने कर्मचारियों के रूखे और सहानुभूतिरहित व्यवहार के बारे में सहवासियों के दोषारोपण के संबंध में उसने केवल यह कहा कि ''इसमें शायद ही सच्चाई हो'' अपने उत्तर को आगे स्पष्ट करते हुए चिकित्सक ने कहा कि ''आखिरकार हमें कुछ परिसीमाओं के तहत कार्य करना पड़ता है।'' अपने प्रत्युत्तर को कुछ युक्तियुक्त बनाते हुए उसने कहा कि कारागृह के चिकित्सकों

और कम्पाउण्डरों की कार्य करने की शैली में सिविल चिकित्सालयों के चिकित्सा कर्मियों की शैली से कुछ अन्तर तो रहेगा ही। "उनका वास्ता स्वतंत्र व्यक्तियों से पड़ता है और हमारा वास्ता कैदियों से होता है।" यह उन चिकित्सकों की अन्तिम अभ्युक्ति थी।

कारागृह में अवकाश का क्षेत्र:-

अवकाश को सामान्यत: औपचारिक कर्तव्यों की संपूर्ति और जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात बचे हुए अवकाश के रूप में लिया जाता है।[54] कारागृह में जब कैदी कार्य की भागों से अथवा ऐसे कर्तव्यों से जो उन्हें समनुदेशित किए जाते हैं और जो कारागृह स्थापना के हितों की पूर्ति मुख्य रूप से करते हैं, वह एक मुक्त, स्वतंत्र या बचा हुआ समय है। क्लेम्मर ने कारागृह के फुर्सत के समय को "जब वह ऐसे अधिक औपचारिक और स्पष्ट कर्तव्यों में संलग्न नहीं किया जाता जो उसकी स्थिति एक सहवासी के रूप में उससे मांग करती है।"[55] के रूप में परिभाषित किया है। कारागृह को सुधारालय के नियमों और विनियमों के पालन में अनेक अभिरक्षकीय संयमों प्रतिबंधों के बावजूद सहवासी इस समय के दौरान अधिक आराम महसूस करते हैं और उनके विचारों की अभिव्यक्ति में अधिक स्वाभाविकता होती है। वे अपने आप को अक्षरश: 'नियंत्रण रहित' पाते हैं और उनके व्यक्तित्व अधिक स्पष्टत: उजागर होते हैं।[56] इस समय ही उनकी "मन: स्थिति आनंदमय अवस्था" में होती है और दांडिक पर्यावरण का जो मतली पैदा करनेवाला प्रभाव मूल रूप में सुख तथा आनंद कारक भावनाओं के विकास को कुंठित करता है उसे प्रभावहीन बनाता है।[57]

फुर्सत के समय और गैर फुर्सत के समय के बीच जो अंतर है और जो सामान्य समाज में स्पष्ट है, वह कारागृह में कम उजागर होता है क्योंकि कारागृह में हर घंटा चाहे उसे फुर्सत का नाम दिया जाए या न दिया जाए, अपने वास्तविक अर्थ में "समय" कहा जाता है।[58] जैसा कि कुछ सहवासियों ने अभ्युक्ति दी "अवकाश या फुर्सत जैसी स्वतंत्रता कुछ ऐसी चीज है जो अत्याधिक नेमीकृत, समयबद्ध कार्यकलाप-कारागृह समुदाय की अनुसूची (कार्यक्रम) में स्पष्टत: लघु या देखने में छोटी है। इसके अतिरिक्त कैदियों के "मनोरंजन संबंधी कार्यकलाप" और "फुर्सत के समय के कार्य" ऐसी दो शब्दावलियाँ है, जो कारागृह विश्व में बहुधा एक दूसरे के स्थान में प्रयुक्त की जाती हैं। ये दोनों शब्दावलियाँ उन तरीकों और साधनों को इंगित करती है जिनके ज़रिए कारागृह सहवासी अपने फुर्सत के समय का इस्तेमाल करते है

अथवा उसे निरर्थक गुजारते हैं या उन क्षणों का आनंद लेते हैं जो आधिकारिक रूप में अन्यथा खाली है। अतः कारागृह में मनोरंजन एक ऐसी चीज है जिसे कैद की सजा की अभिव्यक्त या अन्तर्निहित (ध्वनित) ऐसी स्थितियों जिसका निहतार्थ कठोर व्यवहार, असुखकर स्थिति, कड़ी मजदूरी या चाकरी और एक रसता (नीरसता या उकताहट) से है, के ढांचे में देखा जाना चाहिए। किंतु इस आशय के अलावा समस्त कारागृह अपने सहवासियों को कुछ स्वतंत्र (मुक्त) समय देते है और उन्हें अनेक प्रकार के मनोरंजन संबंधी कार्यकलापों और विनादों की सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं। अधिकतम सुरक्षा कारागृहों में वयस्क सिद्धदोषों के लिए ऐसे मनोरंजन संबंधी कार्यक्रम का आधारभूत उद्देश्य सांस्थानिक अनुशासन की नीरसता (ऊब) और परेशानी के क्रम को भंग करने और संस्था में आराम और आनंद के वातावरण को लाने का है।[59] दंडशास्त्रियों का विचार है कि उचित रूप से नियोजित मनोरंजन न केवल कारागृह जीवन की ऊबन को दूर करेगा और खोई हुई ऊर्जा को अर्जित करेगा बल्कि सहवासियों की बदलती प्रवृत्तियों और सामाजिक आदतों के लक्ष्य को भी आगे बढ़ाएगा।[60]

कारागृह में मनोरंजन संबंधी कार्यकलापों को कैदियों के ''अधिकारिक रूप में विनियमीकृत'' और ''अनाधिकारिक रूप में आयोजित'' फुर्सत के समय के लक्षित कार्य के रूप में मोटे तौर पर वर्गीकृत किया गया है। पहले वे घर के भीतर तथा बाहर के खेल, चित्रपट, आकाशवाणी, समूहगान (संगीत वाद्यों सहित या रहित) और पुस्तकों का पढ़ना आदि जैसे मनोरंजन संबंधी कार्यक्रम शामिल हैं। परवर्ती में सहवासियों के द्वारा स्वयं आयोजित और आधिकारिक रूप में वर्जित ऐसे मनोरंजनात्मक कार्य शामिल हैं, जिन्हें गुप्त रूप में अथवा कारागृह के पहरेदारों की आधिकारिक अनुमति के बिना आयोजित किया जाता है। सहवासियों के मनोविनोद या आमोद प्रमोद उसी प्रकार महत्वपूर्ण हैं जैसे कि पहले या पूर्ववर्ती अपने प्रभाव और लोकप्रियता में महत्वपूर्ण हैं और इनमें ताश खेलना और विशेष रूप से जुआ खेलना है।

किंतु फुर्सत के समय के इन सभी कार्यों से कारागृह सहवासियों के कार्यकलापों की सूची समाप्त नहीं होती जिन्हें वे अपना समय आनंदपूर्वक बिताने के लिए किया करते हैं। हर कारागृह में हमेशा कुछ ऐसे सहवासी रहते हैं जो इन प्रकार के फुर्सत के समय के कार्यकलापों में रूचि नहीं लेते। फुर्सत के समय का उपयोग करने के उनके अपने तरीके होते हैं। उनको चारों तरफ टहलने, मित्रों से मिलने, सोने, आराम

करने, गपशप करने, पुस्तकें पढ़ने या कविताएँ रचने में आनंद आता है। अपना दिन का कार्य करने के पश्चात् उन्हें यह सब करना कम थकावटवाला और कम मेहनती कार्य प्रतीत होता है।

अवकाश के कार्यों तथा मनोरंजनात्मक कार्यकलापों के लिए नियोजन:-

संयुक्त प्रांत जेल जाँच समिति की रिपोर्ट (1929) ऐसा पहला शासकीय प्रलेख था जिसमें कारागृह ऊबन के दुखदायी प्रभावों को कम करने के उपाय के रूप में कैदियों को आमोद-प्रमोद की व्यवस्था करने के बारे में सोचा गया था। (पृष्ठ 181) दस वर्ष पश्चात संयुक्त प्रान्त विभागीय जेल समिति की रिपोर्ट (1939) ने सहवासियों की मनोरंजन संबंधी कार्यकलापों की समीक्षा की और ''कैदियों के द्वारा गाने '' और संयुक्त प्रांत के समस्त जेलों में रेडियों की शुरूआत करने का प्रोत्साहन देने की सिफारिश की। (पृष्ठ 58) संयुक्त प्रांत कारागृह सुधार समिति की तीसरी तथा अंतिम रिपोर्ट (1946) में कैदियों के लिए मनोरंजन पर चर्चा की गई और उसमें कहा गया : ''आज एक साधारण सिद्धदोष को कारागृह में कोई मनोरंजन प्राप्त नहीं होता। कारागृह जीवन की कठोरताओं को कम करने और कैदियों को कुछ आमोद-प्रमोद प्रदान करने के उपायों को किसी कारागृह प्रशासन के सुधारात्मक तंत्र में उच्च स्थान मिलना चाहिए।'' (पृष्ठ 43) अत: समिति का यह अभिमत था कि ''कबड्डी, बालीबॉल और फुटवाल जैसे सस्ते खेलों के प्रबंध सभी कारागृहों में किए जाएँ। यहाँ तक कि अन्तर कारागृह खेलकूद प्रतियोगिताओं और खेलों को प्रोत्साहित किया जाए। प्रत्येक कैदी को शारीरिक प्रशिक्षण भी दिया जाए। इस प्रयोजन के लिए प्रत्येक केन्द्रीय कारागृह में शारीरिक व्यायाम अनुदेशक नियुक्त किए जाएँ।'' (पृष्ठ 43)

कारागृह में गाना गाने के महत्व को लेखों में लेते हुए समिति ने सिफारिश की कि ''कैदियों को हर दिन कुछ निश्चित समय तक गाना गाने की अनुमति दी जाए।'' समिति ने आगे सिफारिश की कि ''जो कैदी वाद्य यंत्र बजाना जानते हों और जो उन्हें बजाने की इच्छा व्यक्त करें उन्हें वे प्रदान किए जाएँ।'' (पृष्ठ 44)

इन मूल्यवान सिफारिशों के होते हुए कारागृहों में मनोरंजन संबंधी गतिविधियों तथा फुर्सत के समय के कार्यकलापों पर कारागृह नियम-पुस्तक की सावधानीपूर्वक शब्दबद्ध धारा इस तारीख तक लागू हो रही है : ''इस संबंध में महानिरीक्षक के द्वारा जो भी अनुदेश जारी किए जाएँ उनके अधीन अधीक्षक रविवारों, कारागृह की छुट्टियों और कार्यदिवसों पर शाम के समय कैदियों के नैतिक तथा सांस्कृतिक

लाभ के लिए वॉलीबाल, रस्सा खिंचाई आदि के समान सस्ते खेल, शारीरिक व्यायाम की सुविधाएँ इस प्रकार प्रदान करें जो कारागृहों के लिए निर्धारित नेमी कार्य में बाधा उपस्थित न होने दे।''

सहवासियों की अवकाश समय की नियंत्रित गतिविधियाँ:-

जहाँ तक कारागृह में सहवासियों के लिए नियंत्रित अवकाश के समय के कार्यकलापों या मनोरंजन संबंधी कार्यक्रमों का संबंध है, वहाँ घर के भीतर खेले जाने वाले खेलों की शायद ही कोई सुविधाएँ उपलब्ध हों। बाहर खेले जाने वाले खेलों की सूची में वालीबाल ही एकमात्र खेल था जो थोड़े-से सहवासी अपराह् में (अपराह्न 5-00 बजे से अपराह्न 6-00 बजे के बीच) एकाध घंटा खेलते थे और वह भी नियमित रूप में नहीं। वहाँ न तो खिलाड़ियों की कोई संगठित टीम थी और न खेल के लिए उचित सुविधाएँ ही थीं वालीबॉल खेल के मैदान जैसा कोई स्थान नहीं था। अत: खेल रिहायशी बैरकों के खुले प्रांगणों में खेला जाता था।

सहवासी जनसंख्या के सामान्य लोगों के लिए यह एक जटिल खेल था जिसके बारे में उनमें से बहुतेरों ने सुना भी नहीं था। जो उस खेल को खेल सकते थे, उनकी संख्या स्वाभाविक रूप में बहुत सीमित थी और खिलाड़ी एक दूसरे से मैत्रीपूर्ण संबंध रखते थे। छोटे-मोटे व्यक्तिगत मतभेदों के वाबजूद सहवासी खिलाड़ी करीब-करीब एक समरूप समूह बनाते थे। यह एकरूपता उनकी खेल प्रति रूचि पर आधारित थी और सामान्य रूचि के कम से कम एक बिंदु पर एक दूसरे का बचाव करने के लिए उन्हें कर्तव्य बद्ध बनाती थी। जहाँ तक उनके खेल का संबंध था उनके बीच बहुत अधिक सहयोग था। किंतु कोई भी कारागृह में एक विचित्र बात देख सकता था अर्थात जो सहवासी वालीबाल खेलते थे वे ऐसे स्व-जागृत व्यक्ति थे जो अपने परिष्कृत खेल हितों के प्रति सचेत रहते थे। उनमें से कुछ ऐसे अन्य सहवासियों के खेल की रूचियों को कम महत्व देते थे, जो अपनी ग्राम्य पृष्ठभूमि के कारण न तो उसे देखना पसंद करते थे और न उसे खेलते थे। जिस पर भी बालीबाल खिलाड़ी बहुत-सारे दर्शकों को खेल देखने के लिए और ताली बजाने वाले खेल प्रेमियों की भीड़ आकर्षित करते थे ऐसे बहुत से सहवासियों के लिए खेल देखना भी एक अच्छा परिवर्तन था और जोर-जोर से चिल्लाने तथा शोर मचाने का एक उत्कृष्ट अवसर था। दर्शकों की भीड़ खेल में अपनी वास्तविक रूचि की वजह से जमा नहीं होती थीं, बल्कि खिलाड़ियों की उत्तेजित रूप में छलांग ऊँची उछल-कूद देखने और उन्हें निष्पादन में छोटी-छोटी गलतियों के लिए अथवा खेल के अधिक महत्व न रखने वाले नियमों को

भंग करने के लिए एक दूसरे को गंन्दी गालियाँ देते हुए देखने के लिए भी जमा होती थी। एक ऐसे सहवासी ने यह अभयुक्ति दी कि ''उन्हें सुअरों के समान झगड़ते हुए देखना एक अच्छा मजेदार तमाशा है।'' जो सदा नियमित रूप से दर्शकों की भीड़ में खड़े होकर देखता रहता था। बहुत सारे दर्शक उत्सुकतापूर्वक उन क्षणों की प्रतीक्षा किया करते थे जब खेल अचानक बंद हो जाता था और खिलाड़ी आपस में दलीलें देना शुरू करते थे। इस भ्रमपूर्ण स्थिति को और अधिंक बद्तर बनाने के लिए दर्शक इस मजेदार घटनाक्रम में शामिल होने हेतु अपने स्वयं के बिनमांगे निर्णय सुनाने लगते थे। कुछ मिनटों के लिए हर चीज शोरगुल में खो जाती थी क्योंकि हर कोई चिल्लाता था और कोई भी किसी को सुनता नहीं था। इस प्रकार इस खेल ने कैदियों के बीच उत्तेजित दलीलों के लिए ढेर सारे अवसर प्रदान किए क्योंकि खिलाड़ी भी स्वयं उसी प्रकार खेल नियमों से अपरिचित थे जिस प्रकार उनके दर्शक निर्णायक उनसे अपरिचित थे।

वालीबाल खिलाड़ी और उनके दर्शक-प्रशंसक सामान्यत: सर्वाधिक युवक थे जिन्होंने अपनी उम्र का चालीसवाँ वर्ष पार नहीं किया था। अधिक उम्र के सहवासी खेल की उपेक्षा करते थे और उन्हें अक्सर खिलाड़ियों की आलोचना उनके अभिकथित रूप में दंभ भरे हुए स्वभाव तथा व्यवहार के लिए करते हुए सुना जाता था। इस आरोप में सच्चाई का कुछ अंश था। शोधकर्ता ने पाया कि जिन्होंने यह खेल खेला या खेल की जानकारी रखनेवाले दर्शक के रूप में भाग लिया, अपने आपको एक बड़ा खिलाड़ी समझा और उन सभी की ओर घृणापूर्वक देखा जो या तो इस खेल से अपरिचित थे या जो इस खेल में रूचि नहीं लेते थे। सरकारी संरक्षण के कारण कुछ खेलकूद से प्रेम रखनेवाले जेलरों या परिरक्षकों (गार्डो) से खिलाड़ियों को अच्छा व्यवहार प्राप्त होता था, इस वजह से ये खिलाड़ी अक्सर अन्य सहवासियों के प्रति अशिष्टतापूर्ण व्यवहार करते थे और इस प्रकार अव्यक्त विरोध कमाते थे।

अतिमहत्वपूर्णरूप में कारागृह के वालीबाल खिलाड़ी सामान्यत: वे सहवासी थे, जो कैदियों के अधिकारों के बारे में अधिक मुंहफट तथा अधिक जागरूक थे। उन्होंने यह प्रभाव भी डाला कि यदि आवश्यकता होगी तो वे सामूहिक रूप में या व्यक्तिगत रूप में किसी के भी विरूद्ध लड़ सकते हैं। उनमें से कुछ कारागृह राजनीतिज्ञ थे, जिनका उपयोग अधिकारी मुखबिरों के रूप में करते थे। ऐसे व्यक्तियों के अधिकारियों से संबंध उनके चारों ओर के सहवासियों के लिए अज्ञात नहीं थे। उनके स्थितीय लाभ के भय से उनके कटु से कटु आलोचक भी उनके मुंह पर उनकी बुराई नहीं करते थे। कारागृह में जो स्थिति विद्यमान

है उसमें वालीबाल खिलाड़ी और ''कारागृह खिलाड़ी'' होने की आनंददायक भावना का आनंद लेते हैं।

रेडियों :-

एक अन्य आधिकारिक रूप में विनियंत्रित मनोरंजनात्मक सुविधा जिसे कारागृह ने सहवासियों को प्रदान की , वह लोकप्रिय फिल्मी संगीत की स्वर लहरियाँ तथा आकाशवाणी, रेडियों श्रीलंका और विविधभारती के अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। हर दिन पूर्वाह्न 9-00 बजे से अपराह्न 5-00 बजे तक ध्वनि विस्तारक यंत्र कारागृह की हरेक रिहायशी बैरक तथा कार्यशाला में लगा दिए जाते हैं, सभी सहवासियों को अवकाश के समय या कार्य के समय रेडियों के कार्यक्रम सुनाए जाते हैं। किंतु कार्य के घंटों के दौरान लोकप्रियता फिल्मी धुनों को छोड़कर अन्य किसी किस्म के रेडियों कार्यक्रम मुश्किल से सहवासियों का ध्यान आकर्षित कर पाते हैं। सामान्यत: आकाशवाणी के नियमित समाचार बुलेटिन अधिकांश सहवासियों के द्वारा नहीं सुने जाते जबकि उनके लिए कारागृह के बाहर घटित हो रही घटनाओं का महत्व कारागृह के भीतर की घटनाओं से कम है। कारागृह के सहवासी समाचार प्रसारणों की उपेक्षा करते हैं, महत्वपूर्ण रूप में न केवल अपनी अपरिचितता और रूचि की कमी राष्ट्रीय मामलों के प्रति प्रदर्शित करते हैं बल्कि अपने स्वयं के संकीर्णमना विश्व में रहने की प्रवृत्ति रखते हैं। उनकी साक्षरता के निम्न स्तरों और आपराधिक संस्कृति के अवशोषित प्रभाव उनकी मन की संकीर्णता को तथा जो चीजें प्रत्यक्षत: उनको प्रभावित नहीं करती उनके बारे में चिन्ता न कर सकने को बढ़ाते हैं।

समाचार प्रसारणों के प्रति कैदियों की सामान्य रुचि के विपरीत सहवासियों के बीच ऐसे कुछ समाचार कट्टर पंथी है जो समाचार बुलेटनो का हर शब्द नियमित रूप से तथा धैर्य पूर्वक सुनते थे, उन व्यक्तियों में से कुछ अपने समान विचार रखने वाले मित्रों की टोली में समाचार मदों पर चर्चा करते थे। ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत बड़ी नहीं थी उसमें सहवासियों की कुल आबादी के दो से लेकर पांच प्रतिशत तक व्यक्ति शामिल थे।

रविवारों और अन्य छुट्टियों पर रेडियो प्रसारण सहवासियों को सार्थक परिवर्तन प्रदान करते थे वे अपनी बैरकों में निठल्ले बैठकर प्रांगण के कोनों के चारों ओर टहलकर अथवा अपने बिस्तरों में अच्छी तरह से आराम करते हुए उन्हे सुनते थे। कुछ सहवासी अपनी निजी डायरियों या नोट बुकों में लोकप्रिय फिल्मी धुने लिखना पसन्द करते थे। वे यह स्पष्टत: बाद में गाने के लिए वैसा करते थे, यद्यपि

अधिकाश: सहवासी रेडियो संगीत का आनन्द लेते प्रतीत होते थे तथापि कुछ सहवासियों को रविवारों और अन्य छुट्टियों पर (जब कारागृह सहवासियों को अधिक शान्ति, आराम और नींद की जरूरत होती थी) रेडियो प्रसारणों की कान फाड़ने वाली ध्वनि अनावश्यक शोर के रूप में लगती थी परन्तु अधिकारिक रूप में विनियंत्रित मनोरंजनात्मक कार्यक्रम के इन आलाप को कारागृह में अन्य कोई विकल्प नहीं था उन्हें अनिच्छा पूर्वक रेडियो प्रसारणों को स्वयं के द्वारा या तो सुनना होता था, अथवा अपना ध्यान किन्ही अन्य चीजों की ओर घुमाना या पलटना होता था जो व्यक्ति रेडियो के प्रसारणों के संगीत के प्रति रूचि प्रदर्शित करते थे वे सामान्यत: कारागृह में अधिक उम्र के लोग थे। दूसरी ओर सहवासियों के बीच रूचि रखने वाले रेडियों श्रोता वे युवा सहवासी थे जिनकी न तो खेलों में कोई रूचि थी और न पुस्तकें पढ़ने के प्रति उनका झुकाव या उनकी पसन्दगी थी। उनके लिए रेडियों सुनना कम से कम मानसिक रूप में मन बहलाब का अनुभव कराता था जिसे उनमें से बहुत से कारागृह में आने से पहले सुना करते थे।

चित्रपट:-

चूंकि प्रशासन के द्वारा प्रदत्त किसी अन्य मनोरंजन की अपेक्षा चित्रपट का अधिक आनंद लिया जाता है। अत: कारागृह में सिद्ध दोषों के मनोरंजनात्मक कार्यक्रम की आधिकारिक सूची पर कभी कभार कुछ चुनी हुई फीचर और वृत्तचित्र एक महत्वपूर्ण मद होती थीं। नेमीतौर पर एक महीने में कम से कम एक बार कोई फीचर फिल्म या वृत्त चित्र दिखाया जाता था।

सहवासियों की असामान्य रूप में बड़ी संख्या (90.90 प्रतिशत) के लिए चित्रपट प्रदर्शन कोई ऐसी चीज नहीं जिससे वे अपरिचित रहे हों। उन्होंने स्वयं कहाँ, ''हममे में से बहुत अधिक लोगों ने चित्रपटों को मनोरंजन के किसी अन्य रूप से अधिक पसंद किया और उसका आनंद उठाया जैसा कि सूचना मिला चित्रपटों के लिए'' यहाँ भी उनका प्यार या लगाव कम नहीं हुआ। जिस दिन फिल्मों को दिखाने का ऐलान होता था उस दिन सहवासी अत्याधिक उत्साह का प्रदर्शन करते थे। कारागृह सहवासियों के जीवन में वह एक बड़ा अवसर हुआ करता था क्योंकि उनमें से बहुत से लोगों को चित्रपट देखना एक समय उनकी सनक थी। शोधकर्ता के नमूने में बड़ी संख्या में सहवासियों (68.25%) ने अभ्युक्ति दी, ''केवल चित्रपट कारागृह में पूर्ण मनोरंजन प्रदान करते हैं किंतु इन सहवासियों ने कारागृह में चित्रपट दिखाने के प्रश्न पर अधिकारियों के विरूद्ध कुछ शिकायतें व्यक्त कीं उनकी शिकायते थीं।''

(1) अधिकारी फीचर फिल्मों को अक्सर बार बार प्रदर्शित करने के लिए प्रबंध करने में गंभीर प्रयास नहीं करते। (69.50%)

(2) कारागृह में प्रदर्शन के लिए लाई गई फिल्में कम से कम पाँच से दस वर्ष पुरानी है जिन्हें बहुत से नवआगतुंकों के पहले देख लिए जाने की पूर्ण संभावना रहती है।. (27.75%)

(3) कैदियों को प्रदर्शित फिल्में गुणवत्ता में सामान्यत: तीसरे दर्जे की होती हैंऔर पुरानी पांडित्य पूर्ण तथा नैतिकता बादी अभिलक्षणों से परिपूर्ण होती हैं। ये फिल्में सहवासियों को खुश करने के बदले दोषसचेतनता की उनकी भावना को बढ़ाती है। (17.75%)

(4) उचित प्रदर्शन सुविधाओं के अभाव में चित्रपट प्रदर्शन में बहुत से रूष्ट करने वाले अवसर भी आते हैं। जब लघु अंतरालों पर भी बिजली गुल होती या चली जाती थी। फिल्म टूट जाती थी ध्वनि दोषपूर्ण हो जाती थी। और पर्दा हिलने लगता था। (36.00%)

इन शिकायतों के अलावा सहवासियों ने पाया कि वह शाम बहुत अच्छी है। जिससे उन्हें फिल्म का प्रदर्शन मनोरंजन के लिए किया गया। ऐसी मनमोहक शामों की प्रतीक्षा कारागृह के सिनेमा प्रेमी बच्चों जैसी उत्सुकता के साथ किया करते थे। उनके लिए चित्रपट प्रदर्शन उनके समस्त दोषों के वाबजूद अत्याधिक सुखदायक थे। चित्र के प्रदर्शन के बाद थोड़े दिनों तक कारागृह का वातावरण फिल्म के लोकप्रिय संवाद और धुनों से गूंजता था कुछ सहवासी अपनी कल्पना और याददाश्त से संवादों को बड़ी निपुणता के साथ पुन: प्रस्तुत कर देते थे और कुछ फिल्म के नायकों और नायिकाओं ,हास्य अभिनेताओं और खलनायकों के तौर तरीकों के और शैलियों का अनुकरण करते थे। महिला अभिनेत्रियों की शैलियों आवाजों की नकलों और अनुनय-विनय के अनुकरण की अत्यधिक प्रसन्नसा की जाती थी और उन पर ध्यान दिया जाता था विशेष कर उस समय जब कुछ सहवासियों के द्वारा उनके अनुकरण का निर्वाह कुछ कौशल और कलात्मकता से किया जाता था। ऐसे सहवासी बहुत लोकप्रिय थे और उनके बहुत-से आनंद उठाने वाले मित्र उनसे अनुकरण का प्रदर्शन दुबारा तिवारा या और अधिक बार भी करने का अनुरोध करते थे। फिल्म के हास्य अभिनेताओं के स्वरों की नकल और ठहाके आसानी से कई हफ्तों और महीनों तक लोकप्रिय चर्चा के विषय आसानी से बन जाते हैं चित्र प्रदर्शनी ने कुछ सहवासियों को दुखी भी बनाया। कुछ फिल्मों ने उन्हें अपने पारिवारिक सम्बंधों प्यार और ममत्व और गहरे संबंधों का स्मरण दिलाया और बाद में उन्हें भयंकर रूप में

गृहासक्त बनाया। कुछ सहवासियों ने शोधकर्ता से बिना किसी लज्जा के साथ कहा कि चित्र प्रदर्शन के बाद के घंटों के दौर सुंदर चित्रपट अभिनेत्रियों का दृश्य स्पष्ट लैंगिक स्वप्न चित्रों या मनोराज्यों के लिए एक सशक्त उत्तेजना के रूप में कार्य करता है। कुछ सहवासियों के लिए चित्रपट महिलाओं का स्थूल शरीर रात्रिक लैंगिक स्वप्नों और स्वरति का एक स्रोत था। जिन व्यक्तियों की लैंगिक भूख अत्याधिक थी, उन्होंने इस स्थिति का अनुभव अधिक गहराई तक किया।

दूरदर्शन (टेलीविजन):-

टेलीविजन आज के वैज्ञानिक युग का महत्वपूर्ण संचार माध्यम है। देश के कुछ केन्द्रीय कारागृहों में कैदियों के मनोरंजन हेतु टेलीविजन की व्यवस्था की गयी है। टेलीविजन के माध्यम से कैदियों को संगीत, फिल्म, नृत्य एवं समाचारों का लाभ प्राप्त होता है। परन्तु यह एक होती है। आज इसका प्रयोग निरंतर बढ़ रही गतिविधियों के लिए आवश्यक है। जिस प्रकार से रेडियो के माध्यम से समाचार प्रसारणों का बहुत से कैदी उपेक्षा करते हैं टेलीविजन में दिखाये जाने वाले चित्रों के कारण कैदी चित्र देखने की अपनी इच्छा को न दबाकर समाचार प्रसारण के समय भी टेलीविजन के सामने खड़े या बैठे रहते हैं। उनकी समाचार में धीरे-2 रूचि बढ़ रही है।

इसके प्रसारण के माध्यम से कृषकों, युवकों, बच्चों एवं महिलाओं के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। साथ ही साथ वे कट्टरपंथी कैदी जिनका समाचार सुनने का प्रारम्भ से ही लगाव रहता था समाचार पर और अधिक सजीव चर्चा करते हुए पाये जाते हैं। यद्यपि उनकी संख्या बहुत ही सीमित होती थी। परन्तु कुछ अपराधी तत्व बहुत से अपराध करने की कला टेलीविजन के माध्यम से सीखते हैं। फिल्मों में दिखाएँ जाने वाले दृश्य जो कि काल्पनिक होते हैं से प्रेरणा लेकर कारागृह से बाहर आकर कैदी उसका प्रयोग करते हैं, इसी कारण जेल प्रशासन इस तरह की फिल्मों को दिखाने से परहेज करते हैं। फिर भी वैज्ञानिक युग में टेलिविजन के माध्यम से कारागृह के कैदी अनेक गीत-संगीत तो सीखते ही हैं एवं अन्य उपयोगी सुविधाओं का भी लाभ लेते हैं। परन्तु यह सुविधा बहुत ही सीमित है।

योग:-

वर्तमान समय में कारागृह में निवास करने वाले कैदियों को मानसिक तथा भौतिक सुविधा देने के लिए योग का प्रशिक्षण दिया जाता है। इससे सिद्ध दोष एवं विचाराधीन कैदियों को मानसिक तनाव

से मुक्ति प्राप्त होती है। देश के विभिन्न केन्द्रीय कारागृहों में इस प्रकार की व्यवस्था की जा रही है जिससे कैदी उसका लाभ उठा सकें। तिहाड़ जैसे केन्द्रीय जेल से प्रारंभ हुयी योग प्रशिक्षण कार्यक्रम आज अनेक प्रदेशों के केंन्द्रीय जेलों में देखा जा सकता है। शोध कर्त्ता से जेल अधिकारियों ने चर्चा करते हुए कहा कि इस कार्यक्रम से अनेक सिद्धदोष का न केवल मानसिक तनाव कम होता है अपितु छोटी-मोटी बीमारियाँ भी दूर होती हैं तथा सभी कैदी चुस्त-दुरूस्त भी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु अनेक कैदियों का कथन है कि योग का कार्यक्रम तो अच्छा है परन्तु इसका संचालन एवं प्रशिक्षण उचित ढंग से नहीं होता है न ही योग्य एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों से इसकी ट्रेनिंग दिलवायी जाती है। विदेशों के कारागृह में इसकी सुविधाएँ अनेक प्रकार से हैं जो भारत में संभव नहीं हैं।

वाचन (पढ़ना):-

कैदियों का कार्य से मुक्त और फुर्सत के समय का वाचन एक अन्य महत्वपूर्ण लक्ष्य है। वह स्पष्टत: उन सहवासियों को आकर्षित करता है जो समाचार-पत्र, सामाजिक पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ सकते हैं और जो कारागृह में अन्य किसी व्यक्ति की संगति की अपेक्षा पुस्तकों की संगति को बेहतर समझते हैं। जैसा कि कुछ सहवासियों ने शोधकर्ता से कहा-- कारागृह में अधिकांश सहवासियों के लिए वाचन ज्ञान और जानकारी का लक्ष्य नहीं है। उन्हें जैसा कि इन प्रत्यर्थियों ने कहा यह केवल कारागृह जीवन की दुर्दशा के बारे में सोचने या निरंतर मित्रों या परिवार के सदस्यों या अपने स्वयं के भविष्य के बारे में चिन्ता करने से अपना ध्यान हटाने के लिए है। इस प्रकार वाचन कारागृह सहवासियों को ऐसे अनावश्यक मानसिक तनाव से स्वयं को मुक्त रखने का एक उपाय है जो कारागृह में अपने स्वयं के नियंत्रण से परे की वस्तुओं पर अत्याधिक आत्मनिरीक्षण के फलस्वरूप अथवा बाहर के संसार में हो रही घटनाओं के फलस्वरूप होता है। एक ऐसे प्रत्यार्थी ने अभ्युक्ति दी- ''बिस्तर पर लेटने के समय वाचन मुझे सोने के लिए प्रेरित करता है और एक प्रभावी प्रशान्तक के समान कार्य करता है।'' यह प्रत्यार्थी अपने आप को एक अत्युत्सुक (अतोषणीय) वाचक होने का दावा करता था। जिस सहवासी ने कारागृह में अपने 7 वर्षों के निवास के दौरान कारागृह पुस्तकालय की 500 से अधिक पुस्तकें पढ़ी थीं, उसने कहा ''वाचन कारागृह जीवन की कठोर वास्तविकताओं से पीछा छुड़ाने और अच्छी तरह ध्यान बंटाने का एक साधन है।''

जिन साक्षर सहवासियों ने वाचन को कभी अपने बाह्य जीवन में एक शौक के रूप में नहीं

लिया उन्हें भी वाचन एक मनमोहक अमोद-प्रमोद (मनोरंजन) के रूप में था। उदाहरणार्थ- शोधकर्ता के नमूने में ऐसे कुछ सहवासी थे (4%) जिन्होंने दावा किया कि उन्होंने कारागृह पुस्तकालय की लगभग सभी मनोरंजन कारी पुस्तकें पढ़ी हैं। किंतु इन ''मजेदार पुस्तकों'' के सही संख्या और उनके प्रकार को स्पष्ट नहीं किया। जिन सहवासियों ने मिली सूचना के अनुसार अपने अवकाश के समय का उपयोग पुस्तकों, समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के वाचन में किया, उन्होंने प्रतिमाह औसतन तीन से लेकर सात पुस्तकें पढ़ीं।

वाचन की आदत ने किस प्रकार पुनर्सामांजीकरण या चरित्र-निमार्ण की प्रक्रिया को प्रभावित किया, इसका अर्थ निकालना कठिन है। किंतु इन पुस्तक-प्रेमियों में से अधिकांश ने कहा कि पुस्तकें (विशेषकर धार्मिक पुस्तकें) कैदियों के अन्त:करण (विवेक) को प्रभावित करती हैं और उनमें से कुछ का निश्चित रूप से कुछ अधिक सांसारिक रूप में बुद्धिमान बनाती है। अपने उत्तर को विस्तारपूर्वक देने हेतु उन्होंने तपाक से कहा कि ''कारागृह के अनैतिक तथा दूषित वातावरण में पुस्तकें एकमात्र ऐसा स्रोत हैं जो हमें बहुत से नीति-पूरक, नैतिक, सामाजिक और धार्मिक उपदेश देती है।''

समूह गान, संगीत और नृत्य:-

रविवारों तथा अन्य छुट्टियों में, जब कार्यशालाएँ बंद रहती हैं, कुछ सहवासियों के कुछ समूह (या तो सबेरे या शाम को) कारागृह प्रशासन के द्वारा दिए गए ढोलक, हार्मोनियम, मंजीरा और खंझरी जैसे वाद्य यंत्रों सहित अपनी बैरकों के सामने के प्रांगणों में समवेत शैली में धार्मिक भजन और लोकप्रिय फिल्मी गीत गाने के लिए जमा हो जाते थे। छुट्टियों पर कारागृह के सहवासियों के मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों के नियमित लक्षण के रूप में समूह गान, संगीत और नृत्य के ऐसे कार्यक्रम घंटों जारी रहते थे और अत्याधिक मनोरंजक कार्यक्रम प्रस्तुत करते थे। इसे सत्रों के दौरान कारागृह का सम्पूर्ण वातावरण संगीत की कर्णों को शून्य बनाने वाली ऊँची ध्वनि और गानों की अत्याधिक ऊँची आवाजों से प्रतिध्वनित हो जाता था। जैसे ही कार्यक्रम गति पकड़ता था, क्रमश: अन्य दिलचस्पी रखने वाले सहवासी उस समूह में या तो दर्शक या श्रोता के रूप में अथवा अनर्ह प्रतिभागियों के रूप में शामिल हो जाते थे। इस मजेदार कार्यक्रम के जादुई प्रभाव के फलस्वरूप समूह के बीच में से कुछ खड़े हो जाया करते थे और नृत्य करने लगते थे। श्रोताओं की तालियों और शाबसी से गायक, बाद्ययंत्रों के वादक और नर्तक अत्याधिक प्रोत्साहित

होते थे। फलस्वरूप वे अपनी प्रतिभा और योग्यता का सर्वाधिक प्रदर्शन करते थे। तब कुछ समय के लिए ऐसा प्रतीत होता था कि वहाँ उपस्थित प्रत्येक सहवासी इस सुरीली आवाज, मौज और कलोल (आमोद-प्रमोद) के जोरदार प्रभाव से मंत्रमुग्ध हो जाता था।

किसी बाहरी व्यक्ति का कारागृह सहवासियों के सांस्कृतिक जीवन का यह पहलू अत्याधिक आकर्षक प्रतीत होगा। सहवासयिों की दृष्टि में यह एक अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था क्योंकि उन्हें कम से कम अस्थायी रूप में अपने बंदी जीवन के कष्टदायक और नैराश्यपूर्ण अनुभवों को भुलाने में एक बहुत भारी विरेचक (दस्तावर) राहत और उत्कृष्ट अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु समूह गान और नृत्य उनके बीच अपमंच का गंभीर भाव बढ़ाता है जो कारागृह में सामूहिक जीवन के लिए उतना आवश्यक है।

निद्रा (सोना):-

कैदियों के फुर्सत के समय के समस्त लक्ष्यों में निद्रा लेना कदाचित सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब सहवासी कार्य के समनुदेशित कार्यक्रम से मुक्त होते हैं, जब उनमें से अधिकांश सोने या अपनी अपनी बैरकों या कार्यशालाओं में आराम से लेटने को तरजीह देते हैं। जो रात्रि में पहरेदार के रूप में कार्य करते हैं, उनके लिए दिन में सोना अत्याधिक आवश्यक है। यहाँ तक कि दूसरे सहवासी भी (इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें भारी या हल्का काम करने के लिए दिया गया है) खेलों को खेलने में या अपने आप को किसी अन्य आमोद-प्रमोद में स्वयं को लगाने की अपेक्षा थोड़ी आरामप्रद नींद लेना पसंद करते थे कुल मिलाकर ये सहवासी सामान्यत: दो प्रकार के थे। या तो वे बहुत बृद्ध कमजोर या शक्तिहीन थे या ऐसे थे जिन्होंने कारागृह में अपने फुर्सत का समय का एक जोरदार शौक विकसित नहीं किया था।

किंतु इन कारणों के अलावा अपने समय को निंद्रा लेकर अथवा निष्क्रिय बैठकर या आराम करके बिताना ऐसे बहुत से सहवासियों के जीवन सिद्धांतों से पूर्णत: मेल खाता था जो अपना समय कारागृह में चारों और घटित होनवाले कार्यकलापों में अपने आपको अत्याधिक लिप्त करने या उनमें फँसने के बिना बिताना चाहते थे। अपने व्यवहार के कारण समझाने के लिए जब ऐसे सहवासियों से कहा गया, तब इन सहवासियों ने पूर्वोक्त तथ्यों को नहीं समझाया और यह कहकर युक्ति संगत कथन दिया कि चूंकि उनमें से अधिकांश के लिए सुबह से शाम तक कारागृह कार्य का कार्यक्रम इतना भारी है कि उन्होंने स्वाभाविक रूप में बिस्तर पर सोने या आराम करने को वरीयता दी।

इन सहवासियों के व्यवहार से एक बात स्पष्ट हुई: तथाकथित कारागृह समूह के संगठित जीवन में उनकी भिन्नता (असम्बद्धता) की भावना।

कविता-रचना:-

अपवाद के बिना प्रत्येक कारागृह अपनी दीवारों के भीतर ऐसे कुछ सहवासियों को रखता है जिनमें प्रचुर साहित्यिक प्रतिभा और योग्यता होती है। ये सहवासी अपने फुर्सत के समय गीत और कविताएँ रचते हैं और उन्हें अपनी डायरियों या नोटबुकों में दर्ज करते हैं। ''उन्हें अपने आप को मुख्य चरित्रों (पात्रों) के रूप में वर्णित करने अथवा अपने अपराधों का पूर्ण विव रण देने के साथ साथ कविताएँ या कहानियाँ लिखना असामान्य नहीं है।'' किंतु काव्यामि व्यक्ति के ऐसे अंशों का पूर्ण अभिलेख उपलब्ध नहीं था क्योंकि ऐसे कुछ ''सहवासी कवि'' या तो शर्मीले थे या किन्हीं बाहरी व्यक्तियों को अपने सृजनात्मक कार्यों की जानकारी देने के बारे में बिल्कुल राजी नहीं थे। वे जहाँ तक पता है इस उक्ति में विश्वास करते थे कि उनके गीत तथा कविताएँ अपने स्वयं की दमनित आत्माओं की तुष्टि के लिए है, ऐसे अन्य लोगों के लिए नहीं है जो उनकी रचनाओं का मजाक उड़ाएँ तथा उस भावधारा को पसंद न करें जिसमें उनकी कविताएँ रची गई हैं।[61] जिस पर भी ये ''सहवासी कवि'' कैदियों की जमात में अत्याधिक जाने-माने थे। अपने निजी सम्मेलनों में अथवा कुछ अधिकारिक रूप में मान्यता प्राप्त उत्सवी अवसरों पर ये सहवासी प्रशंसा करने वाली भीड़ की उपस्थिति में अपनी साहित्यिक रचनाओं का पाठ करने के लिए उत्साह पूर्वक आगे आए। शोधकर्ता को भारी अनुनय विनय के पश्चात् ऐसी कुछ कविताएँ प्राप्त हुईं जिनका सम्बन्ध कारागृह के जीवन से था अथवा ऐसी विषय-वस्तु से था जो उन्हें अत्याधिक विमुग्ध करती थीं। ऐसे ''सहवासी कवियों'' से अनौपचारिक बातचीत से पता लगा कि उनमें से कुछ अपनी प्रारंभिक बाल्यावस्था से ही कविताओं को रचने की कला जानते थे। उन्होंने अपने विद्यालय के दिनों में इस काव्यात्मक कौशल को विकसित किया था और कालेज पत्रिकाओं में अपनी कुछ कविताएँ प्रकाशित करायी थीं। जिन अन्य व्यक्तियों को कॉलेज या स्कूल की शिक्षा नहीं मिली थी उन्होंने अपनी शैक्षणिक कमियों के वाबजूद अपने रूके हुए कलमों को अपनी भावनाओं तथा संबेगों को ऐसी भाषा में व्यक्त करने के लिए प्रशिक्षित किया था जिसे कोई साधारण शब्दों में ''काव्य'' कह सकता है। इन सहवासियों ने व्यक्त किया कि कारागृह काव्य ऐसी गंभीर भावनाओं तथा संबेगों की अभिव्यक्ति है जिसे अधिकांश कैदी शांति के क्षणों में

याद किया करते हैं। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा कि साहित्यिक अभ्यास ने उन्हें निपुल व्यक्तिगत संतोष प्रदान किया। इस अभ्यास से जो भावोन्ननयन या भावशांति प्रदान की गई वह अत्याधिक तुष्टिदायक थी। वे हर दिन अपनी कविताओं को पढ़ने तथा बार-बार उनका पाठ करते थे। किसी मानक साहित्यिक मापदंड से जब उनकी कविताओं की जाँच किए जाने पर हो सकता है कि उनकी कविताएँ निर्दोष तथा त्रुटिहीन न हों। उनमें भाषा की शिथिलता, गलत उक्तियाँ या भावाभिव्यक्तियाँ और अपूर्ण या अयुक्तियुक्त शैली हो सकती है। किंतु यह तथ्य है कि "सहवासी कवियों" के लिए यह एक महान साहित्यिक कृतित्व और शानदार व्यक्तिगत विजय है। वह ऐसी अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जो उनके आनंद तथा वेदनाओं और आमोद-प्रमोद तथा निराशाओं का एक निर्गम का कार्य करता है। इस भावोन्नयन कारी मूल्य जो कारागृह काव्य में अत्याधिक होता है के लिए सावधानीपूर्वक ध्यान तथा सराहना की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में कारागृह काव्य सहवासियों के मानसिक यातना तथा भावात्मक संतापों की अभिव्यक्ति है। वह सब चीजों से अधिक कैदियों के कुकृत्यों के लिए उनके भारी पश्चाताप तथा राज्य-क्षमा, माफी तथा सशर्त रिहाई के लिए उनकी आवाधित प्रार्थनाओं को अभिव्यक्त करता है।

सहवासियों के फुर्सत के समय के अनियंत्रित लक्ष्य:-

यद्यपि ऐसे सहवासियों के बारे में सुस्पष्ट आधार सामग्री, जिनके फुर्सत के समय के लक्ष्य, ऐसे थे जिन्हें कारागृह नियमों ने निर्धारित किया था, प्राप्त करना कठिन था, तथापि शोधकर्ता के पास यह विश्वास करने की पर्याप्त जानकारी थी कि बहुत से सहवासी नियमित रूप में या आकस्मिक रूप में जुआ खेलने, ताश और अन्य खेल खेलने में संलग्न रहते थे और पैसों का दांव भी लगाते थे। किंतु जेल अधीक्षक से लेकर पहरेदारों तक अधिकांश कारागृह अधिकारियों ने इस बात से इंकार किया कि जुआ खेलना सहवासियों का फुर्सत के समय का एक बड़ा लक्ष्य था। उन्होंने यह स्वीकार किया कि कुछ सहवासियों ने कारागृह में जुआ खेलने का कार्य किया किंतु ऐसे व्यक्तियों की संख्या शोधकर्ता के द्वारा उन्हें सूचित की गई संख्या से बहुत कम थी। इन अधिकारियों के इंकार करने के वाबजूद यह तथ्य था कि सहवासियों के रहने की रिहायशी बैरकों में रखे गए 71% से अधिक सहवासी नियमित जुआरी थे। आकस्मिकों में जुआरियों का प्रतिशत बहुत कम था। जुआरी लगभग खुले रूप में जुआ खेलते थे। उनमें से अधिकांश किसी अनुशासनिक कार्रवाई के प्रति पूर्णतः बेफिक्र थे।

आधार-सामग्री के जमा करने की छह महीनों की अवधि के दौरान शोधकर्ता ने बहुत-से अवसरों पर सहवासियों को दाव लगाकर ताश के पत्ते, पांसे तथा कुछ अन्य देशी खेल खेलते देखा (दांव पैसा, कोई चीज या व्यक्ति सेवा का हो सकता था) शोधकर्ता को यह जानकारी प्राप्त करना संभव हो सका क्योंकि शोधकर्ता गैरसरकारी हैसियत में वहा गया था और उसने सहवासियों से बात की थी तथा सहवासियों को विश्वास था कि शोधकर्ता संबंधित कारागृह प्राधिकारियों की जानकारी देने के लिए नियुक्त एक मुखविर या अभिकर्ता के रूप में कार्य नहीं करेगा। ऐसे मौके भी आए जब कुछ सहवासी जुआरियों ने शोधकर्ता को खेलों में भाग लेने और स्वयं यह सीखने के लिए आमंत्रित किया कि कुछ नगण्य दांवों को खोने या जीतने से कारागृह सहवासियों को कितना थोड़ा-सा आनंद प्राप्त होता है।

सहवासी जुआरियों तथा उनके दर्शकों के व्यक्तिपरक तथा समूह परक व्यवहार का अवलोकन करना अपने आप में एक सार्थक अनुभव है। यद्यपि खेल में लगाए गए दांव बहुत नगण्य (तुच्छ) होते हैं, तथापि खिलाड़ियों का आनंद, उत्साह और ध्यान अत्याधिक गंभीर तथा वास्तविक होता है। जुआ खेलने वाले सहवासी अक्सर अपने खेलों में इतने लिप्त हो जाते हैं कि वे अक्सर आवश्यक सुरक्षा सावधानियाँ या सतर्कताएँ नहीं बरतते। उनकी ओर से सतर्कता का अभाव अनेक बार उन्हें कठिन स्थितियों में फंसा देता है।

जो सहवासी कारागृह में जुआ खेलने को अपनी रूचियों के लिए जाने जाते हैं वे अनिवार्य रूप में वही हैं जो कारागृह में तस्करी से पैसा मंगाने की व्यवस्था करते हैं उनके परिवार के वे व्यक्ति जो कारागृह माह में एक या दो बार आते हैं, उनमें वे भेंट के समय कुछ करेंसी नोट गुप्त रूप से प्राप्त करते हैं। यह कार्य वे ड्यूटी पर तैनात परिरक्षकों (गार्डो) या सहवासी पहरेदारों की सक्रिय सहायता से करते थे। इस प्रकार प्राप्त पैसा रिहायशी बैरकों में ले जाया जाता था और सुरक्षित स्थानों में रखा जाता था। सामान्यत: सहवासी पैसों को अपनी जेबों में नहीं रखते थे। वे अपवाद रूप में पैसों को कही अपने अधोवस्त्रों में बने गुप्त छिद्र जैसी जेबों में रखते थे।

कारागृह में जुआ खेलने में पैसे को दांव पर लगाना सामान्यत: बहुत कम था। ऐसे अवसर बिरल होते थे जब कुल लेन-देन पॉच से दस रूपयों की राशि से अधिक का हो। किंतु ऐसे स्थान में जहाँ किसी सहवासी से अपने पास एक सिक्का भी रखने की आशा नहीं की जाती वहाँ इस छोटी राशि को भी

बहुत बड़ी रकम माना जाता था। कारागृह में पैसा रखना हैसियत का प्रतीक था और जो पाँच या दस रूपए का नोट अपने पास रखते थे, उन्हें धनवान या आर्थिक रूप में सम्पन्न माना जाता था। पैसों के अलावा जुए के दाव पर रखी जाने वाली अन्य वस्तुएँ बीड़ियाँ, सिगरेट, गुड़, चीनी, तेल साबुन और हरी सब्जियाँ थी।

यद्यपि प्रबंचन या धोखा देने की निंदा एक अनीतिपरक आचरण के रूप में की जाती थी, तथापि कारागृह जुआरियों के बीच लड़ने और झगड़ने की अनेक घटनाएँ घटित हुईं क्योंकि किसी न किसी सहवासी ने या तो जीवन के लिए असत्य युक्तियाँ अपनायी अथवा कर्ज की अदायगी से मना किया। जब ऐसी घटनाएँ हुईं तो अन्य प्रतिभागियों ने सामान्यत: हस्तक्षेप नहीं किया किंतु जब स्थिति बिगड़ी तो विवाद में फंसे पक्षों के लिए एक समझौते के सूत्र का सुझाव दिया गया। और यदि संबंधित पक्ष फिर भी अपनी बात पर अटल रहे और (दूसरे के द्वारा सामान्यत: प्रस्तावित) किसी मध्य मार्ग को मानने से मना करते रहे, तो उन्हें अपना विवाद अपने बीच जिस ढंग से वे चाहें तय करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाता था। किंतु विवादों, चाहे वे जो भी हों और जिस ढंग से तय किए जाते हों, का निपटारा आवश्यक रूप में परिरक्षकों तथा प्रभारी जेलर की जानकारी में आ जाता था। कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा अपनायी जानेवाली सामान्य विधि दोनों को दंडित करने की होती थी।

जुआ खेलने के अपने कार्य को करने के लिए जुए में रूचि रखने वाले सहवासी किसी बैरक या कार्यशाला में किसी सुरक्षित स्थान या कोने का चयन करते थे। किसी संभावित छापे के बारे में सभी सावधानियाँ बरती जाती थीं। वे अपने वेतन -चिट्ठे पर कुछ सहवासियों को "चौकीदार (प्रहरियों)" के रूप में काम करने के लिए रखते थे। अपनी सेवाओं के प्रतिफल के रूप में कुछ खाने की चीजें बीड़ियाँ या सिगरेट दी जाती थीं। प्रहरियों का कार्य जुआरियों को किसी अधिकारी के वहाँ से गुजरने की या डाले जाने वाले किसी छापे की योजना की जानकारी देना था।

ड्यूटी पर तैनात कारागृह परिरक्षक (गारद), सिद्धदोष ओवरसियर और सिद्धदोष वार्डर जुआ के खेल में से कुछ नियत प्रतिशत प्राप्त करते थे। किंतु कभी-कभी ये सभी प्रबंध और सावधानियाँ बेकार हो जाती थीं और कारागृह प्राधिकारी ऐसे किसी मुखबिर की सहायता से जानकारी प्राप्त कर लेते थे जो किसी न किसी कारण से खेल से सम्बंधित सहवासियों के विरूद्ध कोई दुर्भाव रखते थे। जब प्रभारी जेलर या उसका कोई विश्वासपात्र सहायक उस स्थान पर पहुँचे, तो पैसे, ताश के पत्तों या कौड़ियों को छिपाने का

प्रयास किया गया। किंतु यह तथ्य कि सहवासियों की टोली कुछ गुप्त रूप से कर रही थी। उस कटघरे में खड़ा करने के लिए एक पर्याप्त प्रमाण था। पैसा और जुआ खेलने की वस्तुओं को जब्त किया गया और उस खेल में सम्मिलित करीब-करीब सहवासियों का या तो गंभीर चेतावनी देकर अथवा छूट के दिनों में कटौती करके दंड दिया गया।

जुआ खेलने से कैदियों को किस प्रकार का आनंद आता है, वह उन उत्तरों से स्पष्ट है जो जाने-माने सहवासी जुआरियों ने शोधकर्ता के नमूने में दिए। एक जुआरी के लिए ''वह कारागृह में कमाई का स्रोत था।'' एक दूसरे के लिए ''वह कारागृह जीवन, जहाँ सृजन का भाव और कारीगरी की इन्द्रिय खो जाती है की विशेषता नेमी कार्य करने और ऊबन में निहित है।'' फिर भी एक अन्य के अनुसार ''उन सभी सहवासियों के लिए वह आमोद-प्रमोद का एकमात्र स्रोत था जो अपने प्रारंभिक जीवन से व्यसन, जुआ, मद्यपान और लैंगिक अनैतिकता से सुपरिचित थे।''

कैदियों के अवकाश के समय के लक्ष्य और मनोरंजनात्मक कार्यकलापों के बेहतर नियोजन के बारे में सहवासियों के सुझाव :-

करीब-करीब तीन-चौथाई सहवासियों ने (74.75%) जिनमें अधिकतर 20 से लेकर 55 वर्ष की उम्र के बीच के व्यक्ति शामिल थे, कारागृह में खेलों और अन्य मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए वर्तमान व्यवस्था तथा सुविधाओं के प्रति अपना असंतोष व्यक्त किया। इस वस्तु-स्थिति का नियोजन बेहतर ढंग से करने के लिए 300 सहवासियों ने निम्नलिखित सुझाव दिए:-

(1) सहवासियों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की बेहतरी के लिए सांस्कृतिक तथा मनोरंजनात्मक कार्यकलाप सांस्थानिक व्यवस्था के अनिवार्य अंग के रूप में हों। (95.90%)

(2) सहवासियों के मनोरंजनार्थ पर्याप्त समय (प्रतिदिन दो घंटा) दिया जाए। (56.27%)

(3) विभिन्न उम्र समूहों और रूचियों के सहवासियों की प्रतिभागिता की प्राप्ति के लिए मनोरंजन कार्यक्रम में बहुत किस्म के अंतरंग और बहिरंग खेल सम्मिलित किए जाएँ। (40.40%)

(4) रूचि रखने वाले सहवासियों को समस्त लोकप्रिय खेलों तथा खेलकूद के लिए न्यूनतम सुविधाएँ उपलब्ध करायी जाएँ।(42.37%)

(5) कारागृह अधिकारियों को भीतरी खेल (जैसे कि शतरंज, कैरम), और बाहरी खेल (जैसे

कुश्ती लड़ना , वालीबॉल, फुटबाल, बास्केटबॉल, हॉकी, क्रिकेट और रिंग टेनिस) के लिए ऐसे लोगों को सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए जो पहले से इन खेलों को जानते हैं या उन्हें कारागृह में सीखना चाहते हैं। (24.40%)

(6) कारागृह अधिकारियों को चाहिए कि वे सच्चे उत्साह वाले कैदियों के संगीत-सम्मेलनों को प्रोत्साहित करें। (95.25%)

(7) कारागृह अधिकारियों को व्यापक रूप में आधारित ''सहवासी मनोरंजनात्मक समिति'' का गठन करना चाहिए। (77.30%)

(8) कारागृह में वार्षिक खेलकूद आयोजन किए जाने चाहिए। (19.35%)

(9) कुशल खिलाड़ियों तथा खेलकूद में भाग लेने वालों के लिए उनकी रूचि तथा दम-खम बनाएँ रखने के लिए अतिरिक्त छूट तथा पौष्टिक भोजन दिया जाए। (13.20%)

(10) निरंतर अन्तरालों पर अर्न्तकारागृह और अन्त: कारागृह खेलकूद प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाएँ। (19.00%)

(11) यदि संभव हो तो प्रत्येक केन्द्रीय कारागृह में एक शारीरिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण निदेशक नियुक्त किया जाए। (3.05%)

कारावासित कैदियों की दशा के बारे में समाचार पत्रों में हमेशा नित्य नवीन समाचार ज्ञात होते रहे हैं। जो जेलों में व्याप्त कुव्यवस्थाओं का वर्णन करते हैं।

कारागृह अधिकारियों का मत:-

जिन थोड़े से अधिकारियों से शोधकर्ता ने ''सहवासियों के पूर्वोक्त सुझावों'' के औचित्य पर अनौपचारिक रूप में संपर्क स्थापित किया। उन्होंने कैदियों के दृष्टिकोण को ''अत्याधिक अव्यवहारिक'' बताया। वे कैदियों के मनोरंजन के वर्तमान प्रबंधों से ''पूर्णत: संतुष्ट'' प्रतीत हुए और उन्होंने और कोई अतिरिक्त सुधार नहीं चाहे। ''उनके मत से कारागृह आमोद -प्रमोद और उल्लास का स्थान नहीं था।'' इसके बदले ''वह ऐसा स्थान है जहाँ जीवन कठिन चुभनमय और निरानंद हो।'' किन्तु कारागृह प्रशासकीय तंत्र के दो सर्वोच्च अधिकारियों में से एक ने सहवासी के सुझावों को बिल्कुल निरर्थक कहकर अस्वीकृत नहीं किया। किंतु उसने उन्हें प्रशासनिक रूप में अयथार्थवादी पाया क्योंकि वह अच्छी तरह जानता था कि राज्य

सरकार कैदियों के मनोरंजन के लिए कभी ऐसी विस्तृत योजना के लिए पर्याप्त पैसे देने के लिए सहमत नहीं होगी। उसने आगे कहा कि "अकेले पैसे की कमी नहीं है।" "सर्वोच्च पद पर पदस्थ लोग मुझ पर हँसेगें, यदि मैं कभी ऐसा कोई प्रस्ताव उनके पास भेजूँगा।" यह एक ऐसे कारागृह प्रशासक की समापन कारी अभ्युक्ति थी, जिसने कारागृह सुधार के पश्चगामी तथा अग्रगामी दोनों प्रचलनों का देखने का दावा किया था।

संदर्भ-सूची:-

1. हेरी अल्मर एवं नेग्लेव के .टीटर्स : न्यू हारीजन इन क्रिमिनालाजी प्रकाशक हाल आफ इण्डिया प्रायवेट लिम्टेड, नई दिल्ली, 1966, पृ. 366
2. ई. जान लीज: ए रिव्यू आफ प्रिजन डायटरी प्रेक्टिस, अमेरिकन जर्नल आफ करेक्शन भाग-30, नम्बर 2, मई-जून, 1968, पृ. 14
3. माईल. ई. एलक्जन्डर : जेल एडमिनिशट्रेशन, स्प्रिगफील्ड इलिनस, चार्ल्स सी. थामस1957, पृ. 109
4. हेरी ई. वर्नस एवं नेग्लेम के. टीटर्स : न्यू हारीजन इन क्रिमिनालाजी पृ. 366
5. फ्रैंक आर हरटंग एण्ड मौरिस फ्लोच : ए सोशल साईकोलोजिकल एनालाईसिंज आफ प्रिजन रायटस् जर्नल आफ क्रिमिनालाजी एण्ड पुलिस साइंस, 47, 1956, पृ. 51
6. इडविन एच. सुथरलैण्ड एण्ड डोनाल्ड आर. क्रेजी : प्रिंसिपल आफ क्रिमिनालाजी, दी टाइम्स आफ इण्डिया प्रेस, बम्बई, सिक्स एडीसन, 1958, पृ. 513
7. डोनाल्ड क्लेम्मर, : दी प्रिजन कम्मुनिटी, पृ. 281
8. माडल प्रिजन मैन्यूल, पृ. 138
9. इडविन एच. सुथरलैण्ड एण्ड डोनाल्ड आर. क्रेजी : पृ. 514
10. मैन्युल लोपेज रे : सम कन्शीडरेशन ऑन दी करेक्टर एण्ड आरगनाईजनशन आफ प्रिजन लेवर जर्नल आफ क्रिमिनल लॉ. क्रिमिनालॉजी एण्ड पुलिस साइंस, 19,1958, पृ. 10
11. डोनाल्ड क्लेम्मर : पृ. 280
12. दी अमेरिकन प्रिजन एशोसियशन, मैन्युल आफ सजेस्टेड फार ए स्टेट करेक्शनल सिस्टम न्यूयार्क, 1946, पृ. 40
13. ग्रेशम एम. स्केस : दि सोशाइटी आफ केपटिविश, प्रिशटन युनिवर्शटी प्रेस 1958, पृ. 16
14. जे. एल. गिलन : क्रिमिनालॉजी एण्ड पेनालॉजी पृ. 414
15. एच. ई. बारनेस एण्ड एन. के. टीटर्स: न्यू हॉरीजनस् इन क्रिमिनालाजी पृ. 118
16. रिर्पोट आफ दि जेल कमेटी, 1919-20, पृ. 118
17. दि यू.पी. जेल इनडस्ट्रीज इनक्वारी कमेटी 1956, पृ. 25

18. रिर्पोट आफ दि यूनाइटेड प्राब्निश जेल इनक्वारी कमेटी (1929) रिर्पोट आफ दि डिपार्टमेन्टल जेल कमेटी (1939) रिर्पोट आफ दि इण्डियन जेल कमेटी (1919-20) तथा यू.पी. जेल इनडस्ट्रीज इनक्वारी कमेटी (1956)

19. मॉडल प्रिजन मैन्यूल, पृ. 151

20. वर्न्स एच. ई. एण्ड टीअर्स एन. के. : न्यू हारीजन इन क्रिमिनालाजी प्रकाशक हाल आफ इण्डिया प्रायवेट लिम्टेड, नई दिल्ली, 1962, पृ. 483

21. वाल्क, डब्लू.एम. केन्डल, जी.एन. एण्ड क्रिग्णस् ए.एल. : एजुकेशन विध इन प्रिजन वाल्स, ब्यूरो पब्लीकेशन, टीचर्स कालेज कोलंबिया युनीवर्सीटी 1939, पृ. 8-9

22. मैककारमिक ए. एच. : दि एजुकेशन आफ एडल्ट प्रिजनर, न्यूयार्क, 1931 पृ. 11-12

23. न्यू होरीजन्स इन क्रिमिनालाजी, पृ. 483

24. एजुकेशन आफ एडल्ट प्रिजनर, पृ. 34

25. तफ्त डी. आर. : क्रिमिनालॉजी, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1950 पृ. 478

26. पैटर्शन ए. : पैटर्शन ऑन प्रिजन लन्दन, फैडिक मूल्लर लिम्टैड, 1951 पृ. 114

27. दि रिर्पोट आफ दि इण्डियन जेल कमेटी, 1919-20 पृ. 151

28. वही. पृ. 151

29. एजुकेशन ऑफ एडल्ट प्रिजनर पृ. 5

30. विद्या भूषण : प्रिजन एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया एस. चन्द एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1970 पृ. 176

31. एडिथ कथलीन जानस् (अनु.) : दि प्रिजन लिबर्टी हैन्डबुक सिकागो, अमेरिकन लायब्रेरी एसोशियेशन, 1932, पृ. 113

32. दि न्यू हारीजन इन क्रिमिनालाजी प्रेक्टिश हाल ऑफ इण्डिया प्रायवेट लिमिटेड, 1966, पृ. 488

33. मैककोमिक ए.जे. : एजुकेशन इन दि प्रिजनस् आफ टुमारो दि एन्नलस् आफ अमेरिकन एकाडेमी आफ पोलिटिकल एण्ड सोशल साइन्स 1931, पृ. 77

34. दि न्यू हारीजर्न्स आफ क्रिमिनालाजी, पृ. 88

35. माइर्ल ई. एलेक्जन्डर, : जेल एडमिनिस्ट्रेशन, चार्ल्स सी. थामस सुपिंगफील्ड, इलियन्स, 1957

36. मॉडल प्रिजन मैन्युल : पृ. 30

37. दि रिर्पोट आफ दि इण्डियन जेल कमेटी, 1929-30, पृ. 170

38. वही. पृ. 171

39. दि रिपोर्ट आफ दि यूनाइटेंड प्राबिन्स जेल इनक्वारी कमेटी, 1929, पृ. 222

40. वही. पृ. 222

41. वही. पृ. 98

42. गावरमेन्ट आफ यूनाइटेड प्राविन्सज रिर्पोअ आफ दि डिपार्टमेन्टल जेल कमेटी, पृ. 1939, पृ. 28

43. रिपोर्ट आफ दि यूनाइटेड प्राविन्सन जेल रिफार्म कमेटी, 1946, पृ. 22

44. वही. पृ. 13

45. वही. पृ. 22

46. माईल ई. एलेजन्डर : जेल एडमिनिस्ट्रेशन पृ. 137

47. वही. पृ. 142

48. वही. पृ. 143

49. न्यू हारीजन्स इन क्रिमिनालाजी, पृ. 457

50. डोनाल्ड तफ्त : क्रिमिनालाजी- ए कल्चरल इन्टरप्रिटेशन, दि मैकमिलन कम्पनी लि. खि. अनु. न्यूयार्क 1962, पृ. 497

51. राबर्ट एम. वाक : दि साइट्रिक आस्पेक्ट आफ मालिंजरिगं इन राबर्ट एम. लिन्डर एण्ड राबर्ट वी. सैलीगर हैन्डबुक आफ करेक्शनल साइकोलोजी, न्यूयार्क फिलोसफिकल लाइब्रेरी आइ. एन.सी. 1947, पृ. 331-32

52. मैन्युल आफ कारेक्शनल स्टैन्डर्ड अमेरिकन कारेक्शनल एशोसिएशन, पृ. 126

53. एम. एच. एण्ड ई. एस. न्यूमेयर, लिशूरे एण्ड रिक्रीऐशन, ए.एस. वर्नस एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1932, पृ. 163

54. डोनाल्ड क्लेमर : दि प्रिजन कम्युनिटी पृ. 207

55. एम.एच. एण्ड ई. एस. न्यूमेयर: लिशुरे एण्ड रिकीयेशन , पृ. 74

56. दि प्रिजन कम्युनिटी, पृ. 206

57. वही.

58. वही. पृ. 206

59. मार्डन प्रिजन मैन्युल, पृ. 158

60. आफिशियल स्टेटमैन्ट आफ पुलिस आफ दि कनेडियन करैक्शन एशोसियेशन पब्लिस्ट इन दि कनेडियन जर्नल आफ करेक्शन, भाग 8, न. 1 जनवरी 1966, पृ. 38

61. सुशील चन्द्रा : सोसियालोजी आफ डिविएशन इन इण्डिया, एलायड पब्लिशन, बम्बई, 1967, पृ. 92

¤ ¤ ¤

अध्याय 6

उपसंहार एवं सुझाव

वे दिन बीत गए जब कैदियों को अंधेरी तथा गंदी कोठरियों रूपी कारागृहों में सजा बिताने के लिए रखा जाता था। वर्तमान में कारागृह ऐसी संस्थाओं के रूप में नहीं रहे जो केवल दंड के प्रतिकारी और निवारक पक्षों की प्राप्ति के लिए अभिकल्पित की गई हों। वे अब ऐसे स्थान है जहाँ सहवासियों को न केवल समाज के परित्यक्त सदस्यों के रूप में रखा जाता है बल्कि ऐसे सदस्यों के रूप में भी रखा जाता है, जिन्हें व्यवहार कुशल तथा संस्कारित व्यक्तियों के रूप में अपने आस-पड़ोस में जाना होता है।

अमेरिका में कैदियों की स्थिति में सुधार लाने और उनके साथ मानवोचित व्यवहार करने के लिए बहुत सुधार किये गये हैं। नागरिकों को उपलब्ध अधिकांश अधिकार कैदियों को भी न्यायालयों द्वारा उपलब्ध करवाये गये हैं यथा 'कानूनी सलाह[1] लेने का अधिकार', 'शीघ्रता से मामले पर विचार[2] किए जाने का अधिकार', 'सम्प्रेषण[3] का अधिकार', 'धर्म का अधिकार'[4] और 'दुष्टतापूर्ण तथा असामान्य दंड[5] के विरूद्ध अधिकार'।

दूसरी ओर बिट्रेन में अलिखित संविधान के अधीन प्रचलित राजनीतिक पद्धति के अलग स्वरूप, जिसमें संसद की सर्वोच्चता है, तथा आम रूढ़िवादी प्रवृत्ति के कारण कारागृहों तथा कैदियों पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिट्रेन के न्यायालय अभी भी दंड के निवारक तथा प्रतिकारी पक्ष को ही महत्व देते हैं। बिट्रेन के न्यायालयों की 'कार्यवाही न करने'[6] तथा कारागृह प्रशासन में दखल न देने की प्रवृत्ति के कारण जेल के कैदी, प्राधिकारियों के द्वारा प्रयुक्त विभिन्न उत्पीड़क कदमों को चुनौती देने में अत्याधिक कठिनाइयाँ अनुभव करते है।[7]

वर्तमान में मानवाधिकारों के यूरोपीय समागम के प्रति ब्रिटेन की राष्ट्रीय बचनबद्धता के कारण कैदियों की दशा में सुधारों की आशा जागृत हुई है। इस बचनबद्धता के प्रकाश में बिट्रिश सरकार ने कैदियों को विभिन्न प्रकार की ऐसी सुविधाएँ प्रदान की है और उन्हें मान्य किया है, जो मानवाधिकार और गरिमा[8] की संकल्पना के अनुरूप है।

कारागृहों में कैदियों का जीवन कठिन और दुरूह होता जा रहा है। कारागृहों में कैदियों के साथ निर्मम, बर्बर, अमानवीय व्यवहार में निरंतर वृद्धि के कारण कैदियों की दुर्दशा और दयनीय स्थिति के कठोर सत्य के प्रति अधिवक्ताओं, समाजसेवी संस्थाओं एवम् न्यायालयों ने यदा कदा इस संबंध में चिंता

व्यक्त की है। कारागृह का उद्देश्य कैदी में ऐसा सुधार ला देना है जिससे वह सजा काटने के पश्चात् एक सामान्य नागरिक का जीवन जी सके। परन्तु यह दुर्भाग्य है कि कारागृहों में कैदियों का जीवन बद से बदतर होता जा रहा है। कारागृहों में कैदी ऐसी परिस्थितियों में रहने केलिए मजबूर हैं जहाँ 'सुधार' अनुपस्थित है, सिर्फ दमन ही दमन है। स्वतंत्रता के सत्रह वर्ष पूर्व जेलों की नारकीय दशा भोगने वाले एक उम्रकैदी ने यह प्रश्न किया था- ''क्या स्वराज हमें इस नरक से निकाल देगा''। स्वतंत्रता के पाँच दशकों पश्चात् भी यह प्रश्न अनुत्तरित है। जेल प्रशासन आज भी अंग्रेजी राज के निर्मम एवम् अत्याचारी तंत्र की भाँति काम कर रहा है जहाँ कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। जेल में हिरासत के दौरान कैदियों का क्षय रोग, कोढ़, कुपोषण एवम् अन्य गंभीर बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं। जेल में अमानवीय व्यवहार, न्याय में बिलम्ब कभी न खत्म होने वाली सजा एक आम बात है और कई बार तो सजायाफ्ता और यहाँ तक कि विचाराधीन कैदी भी जेल से जीवित वापस नही आते।[9]

इस बारे में भारत में न्यायालयों ने कैदियों से जो पत्र[10] और तार[11] प्राप्त किए, उनका संज्ञान लिया और उनकी रक्षा करने के लिए इस बात पर न ध्यान देते हुए कि कैदियों को बाहर के लोगों से संचार के समय अपनाए जाने के लिए जरूरी 'उचित माध्यम से कार्यविधि' का उल्लंघन हो रहा है, नागरिक तंत्र को सक्रिय बनाया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भारत में, नागरिकों को मूल स्वतंत्रताएं प्राप्त न होने के कारण कैदियों के अधिकारों के बारे में सोचना संभव नहीं था। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय संविधान द्वारा लोगों को मूल अधिकारों की गारंटी प्राप्त होने के कारण, कैदियों के अधिकारों के प्रति भी जागरूकता आयी।

भारतीय न्यायालय कैदियों के पक्ष में शब्द और भाव दोनों में मानवाधिकारों की संकल्पनाओं को कार्यान्वित करने में सक्रिय न्यायालयों ने कानूनी परामर्श लेने के अधिकार[12] तीव्र गति से विचार किए जाने के अधिकार[13] शारीरिक सुरक्षा के अधिकार,[14] अभिव्यक्ति के अधिकार,[15] परिवार के सदस्यों से भेंट करने के अधिकार[16] और दुष्टतापूर्ण असमान्य या उत्पीड़क कारागृह पद्धतियों[17] के विरूद्ध अधिकारों को मान्यता दी है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कैदियों के प्रति यह उदारता मेनका गांधी[18] के मामले में उच्चतम

न्यायालय द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की व्यापक व्याख्या के कारण संभव हुई इस मामले में न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 21 में 'विधि' शब्द 'अच्छी तथा न्यायोचित विधि' को इंगित करता है, अत: व्यक्तियों को जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से राज्य के द्वारा वंचित किए जाने के लिए जो कार्यविधि अपनायी जाती है, वह 'अच्छी तथा न्यायोचित विधि' के द्वारा निर्धारित की हुई होनी चाहिए। इस व्याख्या के प्रकाश में कैदियों के अधिकारों से संबंधित अधिकतर विधियाँ विकसित हुई है और विकसित हो रहीं है।

किन्तु समय-समय पर उच्चतम न्यायालय के अधिनिर्णयों तथा स्वतंत्रता के पाँच दशकों से अधिक समय व्यतीत हो जाने के वाबजूद भारत में कैदियों तथा कैदखानों की दशाओं में अधिक सुधार हुआ हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता है। इस संबंध में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर[19] की इस टिप्पणी का उल्लेख किया जाना उचित होगा, ''कारागृह तनाव, सदमा (मानसिक आघात) बदमिजाजी (झल्लाहट) और हिंसा, अशिष्टता (गंवार पन) तथा भ्रष्टाचार के अपराधों का अखाड़ा है और इस सबकों समग्र रूप में कहें तो अंतर्राष्ट्रीय गिरोह के पक्के (अभ्यस्त) तथा हानिकर (घातक) कैदियों सहित विचारण-पूर्व अभियुक्तों का सम्मिश्रण हो रहा है। महत्व की बात यह है कि जेल अधिकारी स्वयं तथा कथित रूप में जेल के प्रकोष्ठों में अपराधियों से मिले हुए होते है। अर्थात् संस्कार और संशोधन के सदन में अपराधियों, अधिकारियों और गैरकर्मिकों की एक विस्तृत जाली होती है, स्वापक कूट योजनाकार (तिगड़मबाज) शराबखोरी, तस्करी, हिंसा, चोरी, अलग प्रकोष्ठ में एकांत में अकेले रखकर असंवैधानिक दंड और अन्य जेलों में स्थानान्तरण असामान्य नहीं है।''[20]

न्यायमूर्ति अय्ययर की उक्त टिप्पणी न केवल किसी कारागृह विशेष से संबंध में है अपितु अधिकांश भारतीय कारागृहों के संबंध में लागू होती है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा मानवाधिकारों के प्रति प्रशासनिक दृष्टिकोण सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक समान है।

एक प्रतिष्ठित पत्रकार[21] ने भारतीय कारागृह की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि ''कारागृह में भ्रष्टाचार इतना सुसगंठित और इतना व्यवस्थित है कि एक बार मूल्य अदा किए जाने पर प्रत्येक घटना (वस्तु) घड़ी के समान स्वयंमेव संचालित होती रहती है।''[22]

भारतीय जेलों की दुर्दशा के संबंध में निम्नलिखित बिन्दुओं पर विवेचना की जानी चाहिए :-

वर्तमान न्यायिक व्यवस्था का असंतोषजनक होना :-

मामले के अंतिम निर्णय से पहले कारावास को लेकर अदालतें अपने विवेक का दुरूपयोग कर सकती हैं। एक ही मामले मेंसमान अपराध के लिये अलग- अलग अभियुक्तों के लिये भिन्न-भिन्न कारावास की अवधि हो सकती है। न्यायालयों के आदेश कभी एक समान नही होते हैं जिसके कारण बहुत से मामलों में अन्याय होता है। अधिकांश मामलों में साक्ष्य के अभाव में अभियुक्त छूट जाते हैं तो फिर इन्हें मुकदमें के पूर्व जेल में रखने का क्या औचित्य है ? इस तरह का कारावास सजा से पूर्व अभियुक्त को दंडित करने का समान है।

उच्चतम न्यायालय ने तिहाड़ जेल के कैदियों से सम्बन्धित मामले में यह दृष्टिकोण व्यक्त किया है कि सुनवाई से पहले की कैद एक निश्चित अवधि तक के लिये ही होनी चाहिये और अगर अवधि समाप्त हो जाती है औरसुनवाई समाप्त नही होती है तो अभियुक्त को रिहा कर देना चाहिये।

जेलों में क्षमता से अधिक कैदी होना -

भारत की सभी जलों में क्षमता से अधिक कैदी बंद हैं। कैदियों की भारी भीड़ के कारण जेल प्रशासन कैदियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने में असमर्थ है। इसी कारण से कैदी जेलों में अमानवीय जीवन व्यतीत करने के लिये मजबूर हैं। कमलेश जैन केअभिमत में "कैदी जीवन का एक पहलू जेलों में भारी भीड़ का होना है जिस ओर सरकार एवम् न्यायपालिका द्वारा शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रश्न जो उठता है, वह सीधा और सरल है- यदि सरकार के पास कैदियों को रखने की जगह नही है तो फिर न्यायपालिका (कैद जमानत नहीं) के सिद्धान्त पर विश्वास क्यों करती है ? क्या व्यवस्था, जिसके पास जबकि हिरासत में पड़े लोगों को जीने की आधारभूत सुविधाएँ मुहैया करने की कूबत नहीं है, किसी विचाराधीन अथवा सजायाफ्ता कैदी को मर जाने के लिये जेल में रखे रहने का अधिकार रखती है ?"[23]

कैदियों को जेल कार्ड उपलब्ध न कराया जाना :-

जेल नियमावली के नियम 508 के अनुसार, "प्रत्येक कैदी को जेल में पहुँचते ही हिस्ट्री टिकट "दिया जाना चाहिये जिसमें विभिन्न शीर्षों के अन्तर्गत सूचना तिथिवार अभिलिखित की जानी चाहिये। इसमें जेल के भीतर की सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ और उससे संबंधित प्रत्येक आदेश अभिलिखित किये जाने चाहिये।

''हिस्ट्री टिकट'' या जेल कार्ड में कैदी के जेल में भेजे जाने की तारीख, कैदी द्वारा अर्जित अवकाश या अवकाश में कटौती, जेल में रखे जाने की अवधि, न्यायालय के आदेश, कैदी की उम्र, जेल में बंदी बनाये जाते समय उसका वजन, समय-समय पर कैदी को दी गयी चिकित्सा सुविधाओं का विवरण रहता है। परन्तु यह जेल-कार्ड कैदियों का उपलब्ध न कराये जाने के कारण कैदी को निर्धारित अवधि से अधिक जेल में रहना पड़ सकता है। जेल कार्ड न रहने की वजह से कैदी यह बता पाने में असमर्थ होता है कि उसे कब जेल भेजा गया, उसको जमानत मिली या नहीं, मुकदमें का फैसला उसके पक्ष में हुआ अथवा विपक्ष में, उसे और कितने दिन जेल में बिताने हैं।

जेलों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवम् अपराधीकरण :-

धनी और प्रभावशाली कैदी पैसे की ताकत पर जेल में स्वर्ग भोगते हैं। उन्हें सभी सुविधाएँ इतनी सहजता से प्राप्त हो जाती हैं जैसे उनको प्राप्त करना उनका नैसर्गिक अधिकार हो। अब जेलों में सभी कुछ पैसे से प्राप्त किया जा सकता है-अच्छा भोजन, कपड़ा, सोने का स्थान, स्नानगार, टी.वी. सेट, मोबाइल फोन यहाँ तक कि चरस, गांजा, अफीम, हशीस, ब्राउन शुगर, शराब और शबाब भी। अधिकारियों द्वारा मुलाकातियों से बातचीत की अनुमति, वकालतनामा भरने इत्यादि के लिये भी धन की अदायगी करनी पड़ती है। कमलेश जैन के कथनानुसार बिहार के पटना की बऊर जेल में ''एक तरफ तो कैदियों के पास सिर ढकने को यथोचित छत एवम् पाँव तले साबुत एवम् साफ फर्श नही था, भूख एवम् प्यास मिटाने को पर्याप्त भोजन एवम् पानी नहीं था, यथोचित शौचालय नहीं थे जहाँ वे जरूरत के वक्त शौच से निवृत्त हो सकें, चिकित्सक एवम् दवाईयाँ नहीं थीं। वहीं दूसरी ओर पटना मंडल के कमिश्नर एवम् कारागार महानिरीक्षक के द्वारा पटना बेऊर जेल में डाले गए संयुक्त छापे में चारा घोटाले में कैद तीन विधायकों के कब्जे से 3 सेल्यूलर फोन, 1 टेलीविजन सेट, शराब की बोतलें तथा 3.44 लाख रूपये नगद पाए गये।''[24]

जेल व्यवस्था का एक उद्देश्य जेलों को सुधारगृहों के रूप में संचालित किया जाना है परन्तु वर्तमान में जेलों का उपयोग सुधारगृहों के रूप में न होकरअपराधीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ाने के उत्प्रेरक के रूप में हो रहा है। आज जेलों को खतरनाक अपराधियों की कृपा पर छोड़ दिया गया है। इन खतरनाक कैदियों की सहायता से जेल अधिकारी अन्य कैदियों पर नियंत्रण स्थापित करते हैं। बड़े अपराधियों के भय से कैदी और जेल के अन्य कर्मचारी कुछ नहीं कर पाते। इसके अतिरिक्त धन का लोभ भी इन्हें कुछ करने से

रोकता है। जेलों में संगीत अपराधियों द्वारा अपने गैंग बना लिये जाते हैं और ये अपने वर्चस्व के लिये कैदियों एवम् जेल अधिकारियों तक से मार-पीट करते हैं। यह कोई नई समस्या नही है। यह समस्या हमें बिट्रिश राज से विरासत में प्राप्त हुई है। बिट्रिश काल में अपने बंदी जीवन के दौरान हुए अनुभव के कारण पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जेल व्यवस्था के संबंध में यह कहा था कि ''यहाँ किस तरह कैदी नियंत्रित किये जाते हैं और सजायाफ्ता को दंडित किया जाता है। अधिकांशत: उन दोषियों को ही सहायता से नियंत्रित किया जाता था, जिन्हें अधिकारियों की सहायता के लिये दोषी-वार्डन या दोषी ओवरसियर बना दिया जाता था और वे यह काम भय से या इनाम के लालच में या विशेष छूट पाने के लिये करते थे। वेतनभोगी वार्डन कम ही थे। जेल के अन्दर यह काम अधिकांशत: दोषी-वार्डन या दोषी ओवरसियर ही करते थे।''[25]

चिकित्सा सुविधाओं का अभाव :-

जेलों में अतिभीड़, समुचित भोजन की व्यवस्था न होना, पर्याप्त सफाई व्यवस्था न होना एवम् स्वास्थ के अनुकूल वातावरण उपलब्ध न होने के कारण कैदी विभिन्न बीमारियों से ग्रसित हो जाते हैं और पर्याप्त चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में कालकलपित हो जाते है। जेलों में चिकित्सा पदाधिकारियों के पद रिक्त होने के कारण, चिकित्सकों द्वारा कैदियों का उपचार न करने के कारण दवाईयों के अभाव में या दवाईयों के निर्धारित प्रयोग की तिथि समाप्त हो चुकी होने वाली दवाईयों के ही स्टाक में होने के कारण कैदियों को चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। जेलों में क्षमता से अधिक कैदी होने की वजह सेस्वस्थ कैदियों को भी बीमार कैदियों के साथ रहने के लिये विवश किया जाता है।स्वस्थ कैदियों के साथ पागल कैदियों को जेल में रखा जाना आम बात है जबकि पागल कैदी को जेल में नहीं वरन् पागलखाने में ही रखा जाना चाहिये। मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को जेल में रखा जाना अवैधानिक है।मानवाधिकार आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री रंगनाथ मिश्र द्वारा सभी मुख्यमंत्रियों को अवगत कराया गया था कि 'मेन्टल हेल्थ एक्ट', जो कि 1 अप्रैल, 1993 से प्रभावशील है, के अनुसार मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों को जेलों में रखना विधि विरूद्ध है। न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा द्वारा सभी राज्यों एवम् संघीय सरकार को यह आदेश दियागया था कि 31 अक्टूबर, 1996 से पहले ऐसे कैदियों को मानसिक अस्पतालों में भेजा जाये।

अवयस्क कैदियों को व्यस्क कैदियों के साथ रखा जाना :-

किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों को अनदेखा करते हुए किशोर अपराधियों को जेल

में भेज दिया जाता है और उन्हें भयानक अपराधियों केसाथ जेल में रहने के लिये विवश किया जाता है। ऐसे किशोर अपराधियों को जेल केभीतर शारीरिक एवम् मानसिक प्रताड़ना सहनी पड़ती है। जेल अधिकारियों एवम् खतरनाक अपराधियों द्वारा इनका इस्तेमाल अपनी काम-लोलुपता शान्त करने तथा सेवा करवाने हेतु किया जाता है। इन किशोर अपराधियों को अभद्रता, नग्नता एवम् अप्राकृतिक मैथुन से लेकर प्रताड़ना के और भी रास्तों से होकर गुजरना पड़ता है।[26]

वर्तमान में जेल में बंद कैदियों की दुर्दशा के लिये केवल जेल प्रशासन को उत्तरदायी ठहराया जाना न्यायोचित नहीं है।जेल में बंद कैदियों की दुर्दशा के लिये पुलिस प्रशासन, जेल प्रशासन एवम् न्यायालय संयुक्त रूप से उत्तरदायी है। इस सम्बन्ध में कमलेश जैन के निम्नलिखित विचारों का उल्लेख करना उचित होगा -

''जेल में विचाराधीन कैदी (विचाराधीन से मतलब ऐसे अभियुक्त से है, जो अपने मुकदमें की प्रतीक्षा में जेल में पड़ा है) या सजायाफ्ता कैदी को इन्सान नहीं समझा जाता और अदालत समझती है कि फैसला सुनाकर उसने अपना कर्त्तव्य निभा दिया।''

फौजदारी अदालत यह सोचकर कि जेल प्रशासन उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है, फैसला भर सुनाकर राहत महसूस करती है। बहुत सारे मामलों में तो वे यह जानते तक नहीं कि उन्हें यह जानने का अधिकार है कि न्यायिक आदेश के तहत जेल भेजे गए अभियुक्त या फिर रिमांड अवधि में वे किस तरह समय गुजार रहे हैं। इतना ही नहीं, बल्कि इसके साथ ही न्यायिक अधिकारियों का यह कर्त्तव्य भी बनता है कि वह प्रशासन पर जेलों की स्थिति सुधारने हेतु दवाब भी डाले ताकि विचाराधीन कैदियों को सहजता से कानूनी मदद मिल सके और सजायाफ्ता के मामले में सुधार संभव हो सके।

जेल के प्रति न्यायिक दंड-पद्धति की दीर्घकालीन उपेक्षापूर्ण दृष्टि को देखकर कहा जा सकता है कि अब समय आ गया है कि इस पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन लाया जाए। आंशिक परिवर्तन के बजाय विभिन्न कानूनों एवं अधिनियमों में व्यापक परिवर्तन लाया जाय ताकि यह अधिक प्रभावशाली गतिशील और परिणाममूलक बन सके।

जैसाकि देखा जाता है, निचनी अदालत नींद से जल्दी जागती नहीं और शायद यही सबसे बड़ी वजह है - न्यायिक व्यवस्था की अप्रत्याशित गिरावट की और जेल में बंद कैदियों की स्थित बद से

बदतर होते जाने में भी, कारण के तौर पर इसे चिह्नित किया जा सकता है।''[1]

कमलेश जैन द्वारा बिहार की किशनगंज जेल के कैदियों की दशा का निम्न उल्लेख सम्पूर्ण भारत वर्ष की जेलों में बंद कैदियों की दशा का भी चित्रण करता है :-

''यद्यपि किशनगंज जेल और जिला अदालत के बीच की दूरी कुछ गज की ही है और कोर्ट हाजत न्यायकक्ष के बीच है फिर भी अधिकांश कैदियों का कहना था कि उन्हें शायद ही कभी अदालत के समक्ष पेश किया गया हो। आश्चर्यजनक रूप से जेल में पन्द्रह दिनों तक रखे जाने के बाद 'कोर्ट में पेशी की वैधानिक बाध्यता' का अनुसरण नही किया जाता था, जिसके बिना कैदी को जेल में रखना कानूनन अनुचित है। जब कैदियों ने मुझे बताया तो मुझे एक बार भी विश्वास नही हुआ।''

अपने आधारभूत कर्त्तव्यों की पूर्ति के बिना अदालत कैसे कार्य कर सकती है ?मैंने कैदियों से पूछा कि उन्हें अदालत में प्रस्तुत करने में क्या व्यवधान है और यह कैसे संभव है ? वे चिल्लाए कि उनको अदालत के समक्ष प्रस्तुत करने वाले उनसे पचास रूपये माँगते हैं जो देना असंभव है। मैं यह जानकर दुखी था कि अदालत कैदियों के साथ धोखाधड़ी कर रही थी। अदालत के कर्मचारियों को अभियुक्तों की हाजिरी दर्ज करने के लिए हाजत के भीतर ही कैदियों के अंगूठे के निशान अथवा कोरे काग़ज पर हस्ताक्षर लेने की अनुमति दे दी गई थी। अभियुक्त इसके आदी हो गए थे। वे अदालत के समक्ष अपनी पेशी नहीं कराए जाने की शिकायत तक नहीं करते थे। आलसी और भ्रष्ट कर्मचारी बचने का कोई-न-कोई आसान तरीका ढूढ़ ही लेते हैं। ऐसा करके अदालतें जो अभियुक्तों के दोषों के खिलाफ निर्णय देती हैं, खुद कैदियों के साथ धोखाधड़ी करने का अपराध कर रहीं थीं। उनके इस कार्य ने मुझे यह मानने पर मजबूर कर दिया कि निचली अदालतें, पुलिस तथा जेलकर्मी संस्थागत जुर्म में संलिप्त हैं।[28]

पर्याप्त संख्या में सिपाही व वाहन न होने के कारण भी कई मामलों में कैदियों को अदालत में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। बहुत सारे कैदियों को यह भी मालुम नहीं होता है कि उन्होंने जमानत के लिये आवेदन किया है अथवा नहीं। उन्हें उनके विरूद्ध लगाये गये आरोपों की जानकारी भी नहीं होती है। जेल में बंदी अधिकांश कैदियों को विधिक सहायता एवम् परामर्श की आवश्यकता होती है विशेष रूप से महिला कैदियों को जिन्हें परिवार द्वारा तिरस्कृत कर दिया जाता है और उनका कोई भी पैरवीकार नहीं होता है। ऐसी महिला कैदी मजिस्ट्रेट को यह नहीं बता पाती है कि उन्हें विधिक सहायता की आवश्यकता

है क्योंकि उन्हें इस बात की जानकारी ही नहीं होती है कि नि:शुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने का उनका अधिकार है।

अदालत द्वारा दिये गये जमानत के आदेशों का लाभ जमानत की कठोर शर्तों के कारण केवल समाज के साधन सम्पन्न लोग ही उठा सकते हैं, गरीब एवम् निसहाय व्यक्ति जमानत का आदेश हो जाने के पश्चात् भी जमानत की कठोर शर्तों का पालन करने में असमर्थ होने के कारण वर्षों जेल की यातना भुगतने के लिये मजबूरहोते हैं जबकि -

"उच्चतम न्यायालय ने बार-बार कहा है कि अदालतों को जमानत के आदेशों के संदर्भ में ऐसी असंभव शर्तों से बचना चाहिए जो जमानत के आदेश को महज कागज का टुकड़ा बनाकर रख दें। यदि अदालत को महसूस होता है कि किसी को जमानत दी जानी चाहिए तो ऐसी स्थिति में ऐसी शर्तें कि जमानती राजपत्रित अधिकारी होना चाहिए या फिर बाहरी व्यक्ति के संबंध में 50 हजार रूपये के मुचलके का सीधा अर्थ होता है कि कैदी जेल में ट्रायल होने तक के लिये सड़ता रहे। ऐसा नहीं किया जाना चाहिये। लेकिन वास्तविकता यही है।"[29]

भारतीय विधि के अनुसार जमानत हेतु अथवा किसी भी प्रकार के न्याय के लिये अभियुक्त को स्वयं पहल करनी पड़ती है। भारत जैसे देश में जहां अभियुक्त घर से दूर रहने, धन एवं मानवीय तथा नैतिक समर्थन के अभाव के कारण अथवा अन्य कारणों से स्वयं कार्यवाही करने में असमर्थ है तो उसे जमानत दिलाने का दायित्व सरकार का होना चाहिये सरकारी वकील पर यह कर्त्तव्य आरोपित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त की गिरफ्तारी के दो-तीन दिन के भीतर ही वह अभियुक्त की ओर से दंडाधिकारी के समक्ष जमानत हेतु आवेदन दे। अदालतों को केवल जघन्य अपराधो के छोड़कर अन्य मामलों में अभियुक्त को जमानत पर छोड़ देना चाहिए।[30]

अन्वेषण के अभाव में भी मामले वर्षों अदालतों में लंबित पड़े रहते हैं और अनावश्यक रूप से अभियुक्त को मामले का निर्णय होने तक, जबकि विचाराधीन कैदी के रूप में वह उस सजा से अधिक सजा काटनी पड़ती है जो कि उस अपराध के लिये निर्धारित है। ऐसा इस लिये होता है कि पुलिस द्वारा मामलों के अन्वेषण को समाप्त करने के लिये दण्ड प्रक्रिया संहिता में कोई सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। अत: दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर पुलिस द्वारा अन्वेषण करने की समय-सीमा निर्धारित की जानी

चाहिये। उच्चतम न्यायालय के अनुसार, ''यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि छोटे अपराधों में पकड़े गये व्यक्तियों के बहुत सारे मुकदमें भी, जिनमें 3 वर्ष से अधिक की सजा नहीं हो सकती, कभी जुर्माने के साथ कभी बिना जुर्माने के वर्षों लंबित पड़े रहते हैं, अगर वे लोग गरीब ओर असहाय हैं तब तो जेल में वर्षों सड़ते हैं, क्योंकि उनको जमानत पर छुड़ाने के लिये कोई बाहरी व्यक्ति नहीं होता हैं। कई बार तो उनके लिये बाहरसोचनेवाला तक नहीं होता .... । लंबी अवधि तक मुकदमें का लंबित रहना अपने-आप में दमनात्मक कार्यवाही है। अक्सर वादी द्वारा व्यक्तिगत रूप से परेशान करने के लिये मुकदमें ठोक दिए जाते हैं। ऐसे छोटे आपराधिक मामलों में भी जिसमें सात साल या उससे कम की सजा का प्रावधान है-जुर्माने या बिना जुर्माने के, वहाँ भी फौजदारी अदालतों में मामले वर्षों पड़े रहते हैं। ऐसे अधिकांश मामलों में, चाहे वह पुलिस द्वारा दायर किया गया हो या वादी द्वारा व्यक्तिगत रूप से अभियुक्त हमेशा निर्धन वर्ग का ही होता है और जो पर्याप्त विधिक परामर्श पाने के लिये व्यय नहीं कर पाता है। इस अदालत के समक्ष ऐसे भी कई उदाहरण आए हैं जहाँ अभियुक्त को, जो जेल में होता है, मुकदमें की हर तारीख पर अदालत में नहीं लाया जाता है और इस कारण से भी तारीखें पड़ती रहती हैं।'' यह आवश्यक हो गया है कि ऐसे निर्देश जारी किए जाएँ जो संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त ''प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता'' के अधिकार की रक्षा करे। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक हो गया है कि ये फौजदारी मुकदमें दमनात्मक कार्यवाही की तरह कार्य न करें।[31]

यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि विधायिका विधि पारित कर मुकदमों के सभी चरणों के लिये अलग-अलग अधिकतम सीमा निर्धारित कर दे।

यह निर्विवाद है कि भारतीय कारागृहों की स्थिति एवम् कैदियों की दशा संतोषजनक नहीं है। भारतीय कारागृहों में व्याप्त निर्मम, आमान्य तथा दमनात्मक कारागृह प्रथाओं के विरूद्ध दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए उच्चतम न्यायालय ने कैदियों के अधिकारों के बारे में अनेक निर्णयों [32] में यह निर्धारित किया है कि कैदियों के साथ मानवजनों जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए और उनके प्रति व्यवहार मानवता तथा न्यायोचितता के मूल मापदंडों के अनुरूप होना चाहिए। उच्चतम न्यायालय के इस अभिमत के प्रकाश में कारागृह प्रशासन सहित संबंधित प्राधिकारियों के द्वारा कारागृहों व कैदियों की दशा में सुधारों हेतु निम्नलिखित संकल्पनाओं पर विचार एवम् क्रियान्वयन किया जाना प्रस्तावित है:-

(क) श्रम:-

वे दिन बीत गए जब कारागृह श्रम का विचार अपराधियों को दंड देने का था, आज श्रम को मानवाधिकार के अनुरूप होना चाहिये। कैदियों से कारागृहों में श्रम इस प्रकार लेना चाहिए जो कैदी के स्वास्थ्य के अनुरूप हो और वह उसके रिहा होने के बाद के जीवन में सहायक सिद्ध हो। इन सिद्धांतों के अतिलंघन स्वरूप कैदी से लिया गया कठोर श्रम अनुचित, आतर्कसम्मत एवं मानवाधिकारों का उल्लंघन होने के कारण भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

श्रम का तात्पर्य कठिन परिश्रम या अस्वास्थ्यकर स्थितियों में परिश्रम से नहीं है। कैदियों को कठोर श्रम से बचाया जाए क्योंकि जेल की सजा अपने आप में पर्याप्त दंड के रूप में है। अत: कैदी के द्वारा किए जा रहे काम के प्रकार के बारे में सावधानी बरती जानी चाहिए। रूग्ण, विचाराधीन और सिविल कैदियों को श्रम करने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उन्हें विभिन्न संविधियों के अधीन संरक्षण प्राप्त है।[33]

(ख) भोजन:-

नि: संदेह रूप में कैदियों के द्वारा अपनी पसंद के भोजन की मांग नहीं की जा सकती क्योंकि वह कैद की सजा के प्रभाव को न्यूनतम कर देगी परन्तु कैदियों को दिया जाने वाला भोजन जिसका पौषटिक मूल्य न हो, एक दमनात्मक कार्यवाही है क्योंकि ऐसे भोजन से कैदी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अत: कैदियों को दिये जाने वाले भोजन के संबंध में अपेक्षित सावधानी बरती जानी चाहिए कैदी के द्वारा किए जा रहे कार्य के प्रकार और उसे दिए जा रहे भोजन की गुणवत्ता और प्रमात्रा के बीच युक्तिमूलक संबंध होना चाहिए।

(ग) स्वास्थ्यकर स्थितियाँ :-

भारतीय कारागृहों में कारागृह अधिनियम 1894 तथा कारागृह नियमों के अनुरूप कैदियों के स्वास्थ्य एवम् स्वास्थ्यकर स्थितियों की व्यवस्था होनी चाहिये। इन संविधियों तथा जेल नियमों में यथा निर्धारित मानवोचित जीवन स्थितयों के भाग के रूप में कैदी प्राकृतिक रूप में तथा स्वास्थ्यकर रूप में सुरक्षित तथा संरक्षित आवासों में रखे जाने के लिए हकदार हैं। कैदियों द्वारा इन आवश्यकताओं के उल्लंघन के विरूद्ध शिकायत करने तथा विरोध प्रदर्शित करने का अधिकार है।

कैदियों के आवास ऐसे होने चाहिये जो उनकी संरक्षा न केवल मौसम से करने वाले हों, बल्कि वे कैदियों की अतिभरमार, खराब स्वच्छता स्थितियों, नमी, स्वच्छ वायु और प्रकाश के लिए अपर्याप्त व्यवस्था अथवा अनुचित विद्युत जुड़नारों या अन्य यांत्रिक खतरों के फलस्वरूप व्यक्तिगत सुरक्षा की अन्य जोखिमों से भी संत्रस्त न हो।

(घ) कैदियों की श्रेणी :-

कैदियों के वर्गीकरण के बारे में कारागृह अधिनियम में उपबंध[34] है। कैदियों का पृथक्करण वैज्ञानिक, दंड शास्त्रीय और आधुनिक सुधारात्मक सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। कैदियों को उम्र लिंग, किए गए अपराध के प्रकार तथा विधिक स्थिति के संदर्भ में विभक्त किया जाना चाहिए। सिद्धदोष अपराधियों की तुलना में विचाराधीन कैदी तथा नजरबंद विधि के तहत कारावासित कैदियों का पूर्णतः अलग आधार होता है।

इसी प्रकार किशोर अपराधी तथा महिलाएँ स्पष्टतः अलग वर्गों में आते है। सिद्धदोष और कठोर अपराधियों में इन सभी कैदियों का मिश्रण करने से अन्य प्रकार के कैदियों की मानसिक और शारीरिक स्थितियों पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ेगा जो 'अनुचित और अयुक्तियुक्त' है और साथ ही मानवाधिकार समागमों की घोषणाओं के विपरीत भी है[35]। अतः वर्गीकरण के आधार पर विभिन्न कैदियों को कारागृह में रखा जाना चाहिये।

(ङ)जमानत पर यथाशीघ्र छोड़े जाने का अधिकार :-

छोटे अपराधों के अपराधियों जिनके मुकदमें तीन चार महीनों में समाप्त हो जाने चाहिये और जिन्हें दोषी पाए जाने की स्थिति में कुछ महीनों की ही सजा हो सकती है, को जेलों में नहीं रखा जाना चाहिये, उन्हें पहली ही पेशी में जमानत दे दी जानी चाहिये।

(च) भारी प्रवंचनीय कदम तथा दंड:-

मानवाधिकारों के इस युग में अलग-अलग कोठरियों में अकेले कैद करना, लोहे जंजीरे (बेड़ियाँ) डालना, बहुत समय तक हथकड़ियाँ पहनाना और भोजन में कटौती करना जैसे भारी प्रवंचीनय कदम मानवाधिकारों का हनन है। कैदियों के सामाजिक पुर्नवास पर सामान्यतः इनका विपरीत प्रभाव रहता है और ये अपने आपमें पर्याप्त दंड के बतौर है और ये व्यक्ति को एक गिरा जानवर बना देते हैं।[36] अतः

इन पद्धतियों का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिये या कम से कम ऐसा प्रयोग किया जाना चाहिये जो नियमों के तहत प्रदत्त परिसीमाओं से अधिक न हो और साथ ही ऐसे अनुचित दंड दिए जाने के लिए कार्यविधि का पालन किए बिना न हो।

यह उल्लेखनीय है कि उपयुक्त कदम न केवल कठोर, असमान्य और दमनात्मक कारागृह पद्धतियों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं, बल्कि ये कैदियों के मानवाधिकारों का स्पष्ट अतिलंघन हैं। कैदियों के अधिकारों के ये विपथगमन ऐसे विधिक उपबन्धों का उल्लंघन करते है जिन्हें मानव जीवन स्थितियों के संरक्षणों को सुनिश्चित करने के लिए अभिकल्पित किया गया है।

अतिरिक्तत: कैदियों पर थोपे गए ऐसे कष्ट उनके विरूद्ध विधि न्यायालय के द्वारा पहले ही सुनाई गई सजा के दायरे से परे हैं। सिद्धदोष कैदी या विचाराधीन कैदी और नजरबंद कारागृहों में साधारण या कठोर कैद की सजा काटने अथवा न्यायालय के आदेशों के तहत उनकी सुरक्षित अभिरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कारागृहों में रखे जाते हैं। साधारण या कठोर सजा के या सुरक्षित अभिरक्षा के प्रकार, क्षेत्र और स्थितियों को कारागृहों के प्रशासन पर लागू संविधियों और नियमों में अच्छी तरह से पारिभाषित किया गया है। ऐसे कष्ट देना जो सुरक्षित अभिरक्षा, अथवा साधारण या कठोर कैद की सजा अथवा किसी न्यायालय के द्वारा शब्दबद्ध (लिखित) सजा के क्षेत्र के अंतर्गत न आते हों 'अनुचित अन्यायोचित और अयुक्तियुक्त है।' व्यक्ति कैदी को गैर कानूनी ढंग से अपने ऊपर ढाए गए जुल्मों (कष्टों) का प्रतिकार प्राप्त करने का स्पष्ट अधिकार है।

(छ) संचार (संप्रेषण) का अधिकार

इस अधिकार को उच्चतम न्यायालय के द्वारा विनिर्दिष्ट रूप में स्वीकृत किया गया है। कैदियों के द्वारा बाहरी व्यक्तियों से संचार हेतु कारागृह नियमो में व्यवस्था की गयी है। संचार के सामान्य साधनों के अंतर्गत डाक से पत्र व्यवहार, दूरभाष पर संपर्क और तार आते हैं। दूरभाष की सुविधा को लोगों के बीच अभी अतिसामान्य तथा लोकप्रिय होना है। यह उपलब्धता और उपयोग में सीमित है। टेलिफोन काल चूंकि अति घनिष्ट संपर्क में दोनों ओर संप्रेषण लाते हैं और इसलिए उन्हें कैदियों के द्वारा प्रयोग में लाए जाने हेतु प्रोत्साहित किया जाना अधिक उचित नहीं है। विशेष परिस्थितियों तथा उपयुक्त मामलों में दूरभाष का उपयोग कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा मना नहीं किया जाना चाहिए। तार अधिक सामान्य है

और इसका व्यापक प्रयोग होता है और इससे प्रेषक तथा पानेवाला एक दूसरे के निकट संपर्क में नहीं आते। एक तरह से तार एक त्वरित डाक सेवा है परंतु चूंकि उनका डाक प्रभार अधिक है और तार को भेजने की कार्यविधि अधिक दुर्वह है, अत: कारागृह प्राधिकारी यह सुविधा केवल विशेष परिस्थितियों में ही प्रदान कर सकते हैं। किंतु साधारण डाक सेवा संचार का सर्वाधिक सामान्य रूप है। कैदियों को उचित उदारता से संचार के इस रूप का प्रयोग करने की पूर्ण सुविधाएँ होनी चाहिए। किंतु साक्षरता के अति निम्न स्तर और अपने अधिकारों के बारे में लोगों में व्यापक रूप में पायी जाने वाली अनभिज्ञता के कारण कैदी द्वारा इस अधिकार के पूर्णत: प्रयोग किए जाने की अपेक्षा करना कठिन है विशेषकर ऐसे समय जब सजा का अपना प्रभाव उत्साहजनक और दमनकारी है। हो सकता है कि कैदी को संचार या सम्प्रेषण (पत्र आदि भेजने के लिए) आवश्यक सुविधाओं को माँगनें की जानकारी न हो अथवा वह उन्हें मांगने का साहस न जुटा पाए। अत: यह निवेदन है कि इस अधिकार के प्रति कैदी की जागरूकता हेतु और इस अधिकार का प्रयोग करने के लिए आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था हेतु अर्थात अपने खर्च पर इस अधिकार का प्रयोग करने हेतु जरूरतमंद कैदी को लेखन-सामग्री, डाक टिकट और लेखन सहायता को स्वैच्छिक रूप में प्रदान करना भी कारागृह प्रशासन का दायित्व होना चाहिए।

(ज) व्यक्तित्व विकास का अधिकार

मानवाधिकारों की प्रसंविदाएँ व्यक्तित्व विकास के अधिकार का सुनिश्चित शब्दों में निर्धारित नहीं करतीं। किंतु कारागृहों के ''अनिवार्य उद्देश्य'' को ''कैदी को सुधारने और उसके सामाजिक पुर्नवास'' के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिये। यह केवल व्यक्तित्व के उचित विकास के माध्यम से संभव हो सकता है। व्यक्तित्व के संपूर्ण तथा सामाजिक विकास में योगदान करने वाली विभिन्न सुविधाओं में अधिक अनिवार्य सुविधाएँ अपने सामाजिक दायित्व का अनुभव करने की योग्यता और उनका निर्वहन करने की तैयारी की है। इनकी प्राप्ति शिक्षा, सामाजीकरण और पैरोल सुविधाओं के माध्यम से की जा सकती है।

(1) शिक्षा:-

कारागृहों में न तो पूर्ण शैक्षणिक सुविधाओं और न ही अनिवार्य उच्च्च शिक्षा की व्यवस्था की जाना अत्यधिक व्यय एवम् अतिरिक्त प्रशासनिक व्यवस्थाओं के कारण विभिन्न स्तरों के कारागृहों में

संभव नहीं है। किंतु मूल साक्षरता अभियान का सरकार का दायित्व कारागृह के भीतर उतना ही है जितना कि कारागृह के बाहर है, बाल सदनों और वयस्कों या विचाराधीन अभियुक्तों के लिए संचालित कारागृह में या किन्ही स्थानों पर, अन्य सुधारालयों या सुधार संस्थाओं में कैद किए गए 12 वर्ष से कम उम्र के बच्चे अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के हकदार प्रतीत होते हैं। जो वयस्क कैदी किसी शैक्षिक लक्ष्य की खातिर अपना समय और शक्ति कारागृह प्राधिकारियों से बिना किसी मांग या उपस्कर की अनुचित मांगों के बगैर लगाना चाहें, उन्हें शैक्षणिक सुविधाएँ दी जानी चाहिए। उनके जो कार्य सुरक्षा की दृष्टि से हानिकर न हों, उन्हें दवाया नहीं जाना चाहिए।

(2) सामाजीकरण:-

कारागृह नियम कैदी को कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा यथा विनियमित परिवार के सदस्यों और मित्रों से कारागृह के भीतर मिलने की अनुमति देते है। परिवार के सदस्यों और मित्रों से मिलने का कैदी पर विशेष मानवीय प्रभाव पड़ता है। अत: कारागृह में कैदियों से मिलने और कितनी समयावधि तक मिलने देने ,दोनों के बारे में दी जाने वाली अनुमति संपूर्ण रूप से कारागृह प्राधिकारियों के मनमानेपन पर निर्भर नहीं होना चाहिए। कैदियों को विधि के द्वारा प्राधिकृत इस अधिकार या विशेषाधिकार को कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा शोषण के माध्यम के रूप में प्रयुक्त किए जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। बल्कि इसे कैदी के पुर्नवास की दिशा में मात्र एक कदम के रूप में होना चाहिए।

पैरोल और दाम्पतिक अधिकार

उपयुक्त मामलों में कैदियों द्वारा उनके अनिवार्य सामाजिक अथवा पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह कारागृह प्राधिकारियों के द्वारा उन्हें पैरोल तथा अस्थायी रिहाई की अनुमति दी जाती है। पैरोल विशेष परिस्थितियों में ही यदाकदा स्वीकृत की जाती है। निवेदन है कि उपयुक्त मामलों में पैरोल कैदी को अपने सामाजिक परिवेश में पुनरानुकूलन का एक अवसर प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण तथा सामयिक कदम है। पैरोल की स्वीकृति न केवल फसल की बुआई या कटाई, किसी ऐसे प्रियजन या निकटस्थ संबंधी से मिलने जाने, जो मृत्यु शय्या पर पड़ा हो या पड़ी हो अथवा उनकी शव यात्रा में शामिल होने जैसे आवश्यक कार्यों के लिये ही बल्कि दाम्पतिक दायित्वों के निर्वहन के लिए भी दी जानी चाहिए। दाम्पतिक दायित्व के निर्वहन से कैदी को जीवन के प्रति अपनी प्रवृत्ति और चिंतन में परिवर्तन करने की मदद

मिलेगी। इसके अतिरिक्त यह जीवन के उस दूसरे साथी के लिये उपयोगी होगा जो एक निरपराध कष्ट भोग रहा है। किंतु यह संभव है कि विशेष रूप से दाम्पतिक अधिकारों के प्रयोग हेतु पैरोल का अति उदारतापूर्ण प्रयोग कैदियों पर कैद के प्रभाव को कम कर सकता है, अत: निवेदन है कि इस रियायत का प्रयोग बिना कठोरता दिखाए आवश्यक सावधानी तथा सर्तकता के साथ उपयुक्त मामलों में किया जाए। पैरोल कैदी के सामाजिक पुर्नवास तथा उसकी रिहाई के बाद के पुर्नवास के लिए एक उत्तम बल्कि महत्वपूर्ण साधन है। पैरोल अंत में कैदी को उसके व्यक्तित्व के विकास में मदद देता है क्योंकि वह बाहरी दुनिया से उसका सम्पर्क कराता रहता है और उसके द्वारा मानवीय गुणों पर कैद की सजा के संरक्षक प्रभावों को कम करता है।

श्री मोरारजी देसाई ने 1952 में कारागृह महानिरीक्षकों के सम्मेलन को सम्बोधित करते समय ठीक ही कहा है:

''किसी कैदी को एकमात्र कैदी के रूप में मानना ही पर्याप्त है........ मेरे विचार में कैदी घृणा का पात्र नहीं है। सबसे बुरा अपराधी भी, जैसा कि आप उसे बोलेंगे, वह फिर भी किसी अन्य बाहरी व्यक्ति जैसा अच्छे या बुरे रूप में मनुष्य है।''[37]

कारागृह आयोग की स्थापना

सुनील बत्रा[38] और किशोर सिंह[39] के मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के अनुसार जिला न्यायाधीश को कारागृह प्रशासन पर पर्यविक्षणीय नियंत्रण रखना चाहिये। कारागृह अधिनियम और कारागृह नियमों द्वारा जिला न्यायाधीशों से अपेक्षा की गई है कि वे अपने जिलों में कारगृह का नियमित निरीक्षण करें और कारागृह प्रशासन की जाँच पर्यविक्षक की हैसियत से करें। किंतु ऐसा प्रतीत होता हे कि लम्बित मामलों के भारी कार्यभार की वजह से जिला न्यायाधीश अपने इन कर्तव्यों का पालन नहीं कर पाते हैं और कारागृह व्यवस्था को विशुद्धत: कारागृह प्राधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। अत: यह निवेदन है कि उच्च न्यायालय के नियंत्रण के अधीन कारागृह आयोग के रूप में प्रत्येक राज्य में एक सांविधिक निकाय की स्थापना की आवश्यकता है। इसके अध्यक्ष की अर्हता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की अर्हता के सामान हो। यह आयोग प्रत्येक राज्य के उच्च न्यायालय के प्रत्यक्ष नियंत्रण के अधीन एक स्वतंत्र निकाय होगा। यह आयोग को कारागृह प्रशासन पर पर्यविक्षकीय नियंत्रण रखेगा और कारागृहों के वास्तविक हालातों तथा प्रथाओं को देखने के लिए यथोचित समयाविधियों के भीतर मुआयना करेगा। और आवश्यक

कार्यवाही के लिए उच्च न्यायालय को रिपोर्ट देगा। आयोग की स्थापना होने से उच्चतम न्यायालय और विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों के द्वारा जारी विभिन्न निर्देशों के प्रभावकारी कार्यान्वियन में सहायता मिलेगी। न्यायालयों के सुझाव और निर्णय अपने आप में तब तक कारगर नहीं हो सकते हैं जब तक कि उन्हें कार्यान्वित न किया जाए। घोड़ा पानी के पास ले जाया जा सकता है किंतु उसे पानी पीने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

रूदल शाह के मामले में उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायधीश रंगनाथ मिश्रा के निम्नलिखित विचार कारागृह सुधार की सही कहानी कहते हैं -

''यह अपनी तरह का कोई अकेला मामला नहीं है ओर हमें चिंता है कि बिहार के जेल प्रशासन में चारों ओर अँधेरा है। भागलपुर अँखफोड़वा कांड से कम-से-कम राज्य के जेल प्रशासन की आँखे खुल जानी चाहिये थीं, लेकिन यह घृणित कांड भी कोई सबक नहीं सिखा पाया औरकिसी प्रकार की जवाबदेही को भी पैदा करने में असफल रहा। संभवत: कोई भगीरथ ढूँढना होगा जो दो नदियों को उनकी ओर मोड़कर पवित्र बना सके - पवित्र गंगा नदी, यद्यपि हम आशा करते हैं (और प्रार्थना भी) कि कभी राज्य के उच्च अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से राज्य के जेल प्रशासन की चरमराती व्यवस्था की ओर ध्यान देने का समय मिलेगा और वे भारी अन्याय को दूर कर पायेंगे जो कि .... ''[40]

जेलों तथा कैदियों की दुर्दशा का मामला केवल बिहार तक ही सीमित नहीं है, कुल मिलाकर देश की सभी जेलों की व्यवस्था एक समान है। किरण बेदी के अनुसार वर्तमान स्थिति आपराधिक न्याय प्रणाली का परिणाम है। किरण बेदी के शब्दों में , ''आज की आपराधिक न्यायप्रणाली का शायद ही कोई उपयोग है। आज जरूरत है वैज्ञानिक अनुसंधान प्रणाली की ओर एक ऐसी न्यायपालिका एवम् जेल-व्यवस्था की जो लोगों की जरूरतें पूरी करें'' [41]

कमलेश जैन के अभिमत में- ''जेल के प्रति न्यायिक दंड-पद्धति की दीर्घकालीन उपेक्षापूर्ण दृष्टि को देखकर कहा जा सकता है कि अब समय आ गया है कि इस पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन लाया जाए। आंशिक परिवर्तन के बजाय विभिन्न कानूनों एवम् अधिनियमों में व्यापक परिवर्तन लाया जाये ताकि यह अधिक प्रभावशाली, गतिशील और परिणाम मूलक बन सके।''[42]

वर्तमान दोषपूर्ण व्यवस्था का श्रेय उन्नीसवीं शताब्दी की विधियों यथा 1860 की भारतीय

दंड संहिता, 1861 की पुलिस व्यवस्था, 1871 की दण्ड प्रक्रिया संहिता (कहने को तो दण्ड प्रक्रिया संहिता को 1973 में संशोधित किया गया है परंतु 1973 की संहिता में अधिकांश प्रावधान 1871 की संहिता के ही हैं), 1872 का भारतीय साक्ष्य अधिनियम एवम् 1894 के कारागृह अधिनियम को है। आज आवश्यकता उन भागीरथ प्रयासों की है जिनके माध्यम से नवीन विधियां अधिनियमित कर वर्तमान दोषपूर्ण व्यवस्था में आशातीत सुधार किये जायें।

न्यायमूर्ति बी. आर. कृष्ण अय्यर ने भी एक सम्मेलन में कैदियों के प्रति मानवीय व्यवहार की आवश्यकता पर बल दिया।[43] उन्होंने सर विन्सटन चर्चित के निम्न विचारों को उद्धृत किया :

''अपराध और अपराधियों के व्यवहार या सलूक के बारे में जनता का रूख और मिजाज किसी देश की सभ्यता के सर्वाधिक विश्वसनीय परीक्षणों में से एक है। अभियुक्त के अधिकारों और राज्य के विरूद्ध सिद्धदोष अपराधी के भी अधिकारों की शान्त तथा निष्पक्ष मान्यता, दंड के कृत्य से आरोपित सभी के प्रति निरंतर हृदय मंथन, नवजीवन प्रदायनी प्रक्रियाओं की खोज की दिशा में अथक प्रयास, यह विश्वसनीय निष्ठा कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में, यदि आप पता लगा सकें, एक कोष है। ये वे प्रतीक हैं जो संचयित अपराध युक्त अपराधी के प्रति व्यवहार में राष्ट्र की संचित शक्ति को बनाते और मापते है और उसमें जीवंत विशेषता के चिह्न तथा प्रमाण है।''[44]

कैदियों के अधिकारों के संबंध में उच्चतम न्यायालय का यह कहना है कि, ''अब यह बहस का मुद्दा नहीं रहा। कैदियों (सजायाफ्ता या विचाराधीन) को उनके मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकता है। एक कैदी की स्वतंत्रता उसके जेल में रहने मात्र से ही बाधित हो जाती है। अतः जो थोड़ी-सी दूसरी स्वतंत्रता उसे प्राप्त होती है, उसके लिये और भी मूल्यवान हो जाती है। अपराध के लिये सजा का मतलब उसके इन्सानी रूप से समाप्त हो जाना ही है जिसके अधिकार जेल प्रशासन की मनमानी पर निर्भर करे।''

सुझाव

1. कारागृहों की सुचारू व्यवस्था हेतु ऐसी निगरानी समीति का गठन किया जाना चाहिये, जिसमें अ राजनैतिक व्यक्तियों के साथ साथ कैदियों को भी सम्मलित किया गया हो।
2. प्रत्येक कारागार में एक चिकित्सालय होना चाहिये एवम् चिकित्सा व्यवस्था हेतु कारागृह अधिकारियों के साथ-साथ जिले में कार्यरत चिकित्सकों की एक समिति बनायी जानी चाहिये जो समय-समय पर चिकित्सकीय सुविधाओं का परीक्षण करें।
3. शिक्षा के प्रति जागृति उत्पन्न करने एवम् शिक्षा के प्रचार, प्रसार हेतु प्रत्येक जिले के बौद्धिक वर्ग के व्यक्तियों की एक समिति बनायी जानी चाहिये , जो कि कारागृह में कैदियों में शिक्षा में रूचि उत्पन्न करने का प्रयास करे।
4. कारागृहों में बढ़ रही अपराधिक गतिविधियों की रोकथाम हेतु समुचित व्यवस्था की जाये। साथ ही साथ इस बात पर ध्यान दिया जावे कि कारागृहों में कैदियों कोअपराध करने का अवसर प्राप्त न हो सके। यदि कारागृह में कैदियों द्वारा कोई अपराध कारित कियाजाता है तो जेल अधिकारियों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जाये।
5. कारागृह में बढ़ रहे मादक पदार्थों की आवा-जाही पर रोक लगाने हेतु कड़े कदम उठाये जायें और जेल के उन कर्मचारियों और अधिकारियों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जाये जिनकी लापरवाही अथवा सहयोग से यह कार्य हो रहा है। चूंकि प्रशासनिक व्यक्तियों के सहयोग के बिना यह कार्य सम्भव नहीं है, अत: उन पर निगरानी रखी जानी चाहिये।
6. कारागृहों में राजनीतिज्ञों बंदियों एवम् प्रभावशील अपराधियों के कारण कारागार का वातावरण एवं प्रशासनिक व्यवस्था प्रभावित होती है । अत: जेलों में इस प्रकार का वातावरण निर्मित किया जाना चाहिये कि जेल प्रशासन ईमानदारी, बिना भय एवम् दबाव के कार्य कर सके। यदि कोई अधिकारी एवम् कर्मचारी राजनैतिक दबाव अथवा अपराधियों के भय अथवा रिश्वत लेकर ऐसे कैदियों को जेल केनियमों के विरूद्ध सुविधायें उपलब्ध कराता है तो उसके विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिये।
7. कारागृहों में विचाराधीन तथा सजायाफ्ता कैदियों को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

8. आर्थिक दृष्टि से कमजोर विचाराधीन अपराधियों को कारागार से जमानत पर छोड़ने के लिये विशेष व्यवस्था की जानी चाहिये।

9. आज जेलों में हजारों ऐसे अपराधी बंद है जो उनके द्वारा कारित अपराध के लिये विधि द्वारा निर्धारित अधिकतम सजा से अधिक समय कारावास मे बिता चुके हैं। परंतु उनके विरूद्ध पंजीवद्ध प्रकरणों का निर्णय न होने के कारण अभी भी कारागृहों में बंदी है। केन्द्र तथा राज्य सरकारों को प्रत्येक वर्ष कारागारों में बंदी ऐसे अपराधियों की सूची तैयार करानी चाहिये एवम् ऐसे कैदियों को कारागृहों से मुक्त कराने की व्यवस्था करनी चाहिये।

10. कारागार में बहुत से कैदी मानसिक रूप से विक्षिप्त होते हैं उन्हें सामान्य कैदियों के साथ नहीं रखना चाहिये क्योंकि वे किसी भी समय सामान्य कैदी पर आक्रमण कर सकते हैं और अन्य कैदियों की मनोदशा प्रभावित कर सकते हैं। अतः ऐसे मानसिक रूप से विक्षिप्त कैदियों को तत्काल मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों के लिये चिकित्सालयों में स्थानांतरित किये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिये।

11. कारागार में रह रहे वृद्ध कैदियों को उनके अच्छे आचरण के आधार पर पैरोल पर छोड़े जाने की व्यवस्था की जाना चाहिये।

12. कारागारों में बढ़ रही विचाराधीन कैदियों की संख्या में तब तक कमी नहीं हो सकती है जब तक कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन कर प्रकरण के निराकरण की समय सीमा निर्धारित नहीं की जाती है।

13. लम्बी सजा काट रहे कैदियों एवम् उन कैदियों को जिनकी सजा की अवधि एक वर्ष से कम है, को खुली जेलों में रखा जाना चाहिये।

14. भारत वर्ष में आज भी बहुत से प्रदेशों में जेलों की संख्या उतनी ही है जितनी कि अंग्रेजों के समय थी। आज जबकि भारत की आबादी एक अरब से अधिक हो गयी है तथा अपराधों की संख्या भी निरंतर बढ़ रही है, को दृष्टिगत रखते हुए प्रत्येक जिले में एक उपजेल का निर्माण किया जाना चाहिये।

15. खुली जेल-व्यवस्था को शासन द्वारा अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। क्योंकि बहुत से अपराधियों

द्वारा आवेश अथवा मजबूरीवश अपराध कारित किये गये होते हैं। उन्हें खुली-जेलों में रखना न केवल उनके भविष्य को सुधारने में सहायक होगा अपितु जेल से मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् वे एक सामान्य व्यक्ति के रूप में समाज में अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

16. किसी भी न समझ अपराधी को क्रूर एवं आदतन अपराधी के साथ नहीं रखा जाना चाहिए। अन्यथा वह जेल में सुधरने के स्थान पर अभयस्त अपराधी बन जावेगा।

17. कैदियों का छ: माह में एक बार स्वास्थ्य पीरक्षण अवश्य ही करवाया जाना चाहिये।

18. कैदियों को जेलों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि वे साधन अपराध बढ़ाने में सहायक न हो।

19. कैदियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से जेलों में खेल-कूंद की व्यवस्था भी आवश्यक रूप से की जानी चाहिये।

20. कैदियों को मानसिक तनाव से मुक्त रखने के लिये प्रत्येक जेल में योग-साधना केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये।

21. कारागारों में बंदी कैदियों की बढ़ती हुई संख्या को दृष्टिगत रखते हुए कारागार न्यायधीशो की नियुक्ति की जानी चाहिये। जिससे कि विभिन्न कारागारों में बंदी उन गरीब कैदियों के प्रकरणों का शीघ्र निराकरण हो सके जो अर्थाभाव के कारण न्यायिक उपचार प्राप्त करने में असमर्थ हैं।

22. सजायाफ्ता कैदियों के कारागार से मुक्त होने के पश्चात् उनके पुर्नवास की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि वे पुन: अपराध न करें।

23. आदतन अपराधी अथवा प्रथम अपराधी को जेल से मुक्त होने पर असमाजिक गतिविधयों से दूर रखने के लिये परामर्श केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये।

24. कारागार प्रशासन व्यवस्था में संलग्न पुलिस कर्मियों की संख्या पूर्ववत है जो कि वर्तमान में अपर्याप्त है। कैदियों को न्यायालय में समय से प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। अत: कैदियों की बढ़ती संख्या के अनुसार प्रत्येक जेल में पुलिस कर्मियों की संख्या बढ़ायी जाना चाहिये।

25. जेल प्रशासन को वाहन क्रय करने के लिये एवम् वाहनों के रखरखाव के लिये पर्याप्त राशि उपलब्ध न होने के कारण वाहनों की कमी का सामना करना पड़ता है। जिसके परिणाम स्वरूप कैदियों को

न्यायालय में प्रस्तुत करने में असुविधा होती है और अक्सर कैदियों को पेशी दिनांक पर प्रस्तुत नहीं किया जाता है। अत: वाहनों के क्रय एवम् रखरखाव हेतु जेल प्रशासन को पर्याप्त धन उपलब्ध कराया जाना चाहिये।

26. प्रत्येक जेल में विधिक सहायता एवं परामर्श केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये।जिससे निर्धन एवं विधिक सहायता के पात्र कैदियों को विधिक सहायता प्राप्त हो सके।

27. जेल प्रशासन पर आर्थिक रूप से कमजोर अथवा असहाय व्यक्तियों की जमानत की व्यवस्था का दायित्व आरोपित किया जाना चाहिये ।

28. संविधान के अनुच्छेद 21 के द्वारा प्रदत्त प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत मुकदमों की त्वरित सुनवायी के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। अत: न्यायालयों ,कार्यपालिका एवं विधायिका का संयुक्त दायित्व है कि वे ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करें जिससे मामले का निराकरण शीघ्र हो सके।

29. सामान्यत: जेलों में महिला और बाल अपराधियों को अन्य अपराधियों के साथ रखा जाता है जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें यौन शोषण का शिकार बनना पड़ता है। अत: महिला एवं बाल अपराधियों को अन्य अपराधियों से अलग रखने की अनिवार्य रूप से व्यवस्था की जानी चाहिये।

30. जेलों में बढ़ रहे यौन शौषण को रोकने के लिये कैदियों पर कड़ी निगरानी रखना चाहिये साथ ही साथ इस प्रकार की व्यवस्था करना चाहिये जिससे असहाय व्यक्तियों का शोषण न किया जा सके एवम् ऐसी घटनाओं के लिये जेल प्रशासन के विरूद्ध कठोर कार्यवाही की जानी चाहिये।

31. यद्यपि राज्य सरकारें जेलों में बजट का अलग से प्रावधान करती हैं परन्तु धन राशि कम होने के कारण जेलों की उचित व्यवस्था नहीं हो पाती हैं। अत: शासन को चाहिये कि वह जेलों का बजट-प्रावधान करने से पूर्व वहाँ की आवश्यकताओं की जानकारी ले अथवा अवलोकन करने के पश्चात् ही जेलों हेतु बजट का प्रावधान करे।

¤ ¤ ¤

टिप्पणियाँ तथा संदर्भ

1. ग्रिडेन बनाम वेनराइट, 372 संयुक्त राज्य 335 (1963)

2. पीटर एच क्लाफर बनाम नार्थ कैरोलिना 18 एल, संस्करण द्वितीय 1 (1967)

3. सांस्ट्रे बनाम मैके गिन्निस, 442 एफ 2 डी 178 (1978)

4. क्रुज बनाम बेटो, 405 संयुक्त राज्य 319 (1972)

5. नेल्सन बनाम हैने, 419 एफ 2 डी 352 (1974)

6. पास्मोर बनाम ऑस्वाल्ट विसिल अर्वन परिषद, 1898 ए. सी. 397

7. वही

8. गोल्डर बनाम ब्रिटेन (यू. के.) परिशिष्ट सं0 4451/70 (1971) वाई. बी. ए 32. 416, मामले का निर्णय पाने के लिए ब्रिटेन के गृहसचिव ने विधिक सलाहकार से मिलने की सुविधा प्रदत्त कराने के लिए कारागृह नियमावली को संशोधित किया।

9. कमलेश जैन : -''न्यायपालिका कसौटी पर'' पृ. 7

10. सुनील बत्रा (2) बनाम दिल्ली प्रशासन ए आई आर 1980 उच्चतम न्यायालय 1579

11. किशोर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, ए आई आर, 1981, उच्चतम न्यायालय 625

12. नंदलाल बनाम पंजाब राज्य, ए आई आर 1981 उच्चतम न्यायालय 2041

13. हुसैननारा खातून बनाम गृह सचिब, बिहार, ए आई आर 1979, उच्चतम न्यायालय 1360

14. सुनील बत्रा (2) बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर, 1980, उच्चतम न्यायालय 1579

15. महाराष्ट्र सरकार बनाम प्रभाकर पांडुरंग, ए आई आर, 1966, उच्चतम न्यायालय 424

16. फ्रांसिस कारालाइ बनाम संघशासित राज्य क्षेत्र, दिल्ली, ए आई आर 1911, उच्चतम न्यायालय 7

17. सुनील बत्रा (1) बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1978, उच्चतम न्यायालय 1675

18. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए आई आर 1978, उच्चतम न्यायालय 597

19. सुनील बत्रा में बनाम दिल्ली प्रशासन, ए आई आर 1980 उच्चतम न्यायालय 1579

20. वही, पी 1586

21. कुलदीप नय्यर जेल में (1977)

22. वही, पी 64

23. कमलेश जैन :- ''न्यायपालिका कसौटी पर'' पृ. 82

24. वही पृ. 111

25. वही

26. वही पृ. 77

27. वही पृ. 26-27

28. वही पृ. 37-38

29. वही पृ. 41

30. वही पृ. 42-43

31. 1996 ए.आई. आर. एस.सी. डब्ल्यू.- 2279

32. ऊपर, एन एन 10 और 11

33. धारा 34, कारागृह अधिनियम, 1894

34. वही, धारा 27

35. प्रशासन कैदियों के प्रति व्यवहार के लिए आंतरिक मानक न्यूनतम नियमावली, ऊपर देखे, अध्याय 2 एन 3

36. सनील बत्रा (1) बनाम दिल्ली प्रशासन ए आई आर 1978, उच्चतम न्यायालय 1675 (1678)

37. रूदल शाह बनाम बिहार राज्य

38. ऊपर, एन 17

39. महाराष्ट्र राज्य बनाम पी. पांडुरंग, ए आई आर 1966, उच्चतम न्यायालय 424

40. ऊपर, एन 10

41. ऊपर, एन 11

42. ऊपर, एन 18 पी 1714 (निर्देश न्यायमूर्ति अय्यर के द्वारा)

43. न्यामूर्ति बी. आर. कृष्ण अय्यर, कारागृह मीनारों की चोटी पर मानवाधिकार ध्वज, मनुष्य को उसके पिजड़े से मुक्त करने का एक आत्यन्तिक-न्यायिक-चिकित्कीय षड़यंत्र (विधि और औषध पर विश्व सम्मेलन, नई दिल्ली, तारीख 25 फरवरी, 1985)

44. विल्सन-चर्चित- एच, बलाश और जी गेज, मनुष्य, अपराध और समाज में यथा उद्घृत, 557 (1962)

¤ ¤ ¤

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- जान कैली:- व्हैन द गेट्स शट्स, लाग मेल-लन्दन-1767
- द आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी-भाग- 8 आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस कोलकात्ता, 1979
- इन साइक्लोपीडिया अमेरिकन,भाग-22 यू. एस. 1980
- इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंस, भाग 12, मैकनिकल, लंदन 1951
- डा. एम. जे. सेठना- सोसाइटी एण्ड क्रिमिनल, 1964
- फेयर चाइल्ड, एच. पी.:- डिक्शनरी ऑफ सोशालाजी
- आर. एन. दातिर: प्रिजन एज ए सोशल सिस्टम-पापुलर प्रकाशन बम्बई- 1978
- फ्रेन्क निवसाम, द होम ऑफिस एलन एण्ड अनविन लंदन-1954
- इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेननिका भाग-18-लन्दन-1961
- माइरिल ई. अलेक्जेन्डर- जेल एडमिन्सट्रेशन, चरेस सी थामस स्प्रिंग फील्ड, यू. एस. 1957
- डोनाल्ड आर क्रेसी:- द प्रिजन इन इन्सिटयूटनल एण्ड आर्गनाइजेशलन चेन्ज, न्यूयार्क- 1961
- इन्द्र जे. सिंह- प्रिजन- ए सोशलोजिकल इनक्वारी कान्सेप्ट-दिल्ली 1979
- एम. जे. सेठना:- सोसाइटी एण्ड दी क्रिमिनल, लीडर प्रेस, बम्बई-1952
- ई. एच. सुदर लैण्ड एण्ड डी. आर. क्रेसी प्रिंसपल ऑफ क्रिम्नालौजी: द टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस बंबई-1965
- हग. जे. कलरे:- पीपुल्स इन प्रिजन, पिटमैन पब्लिशंग, किग्शवे लंदन-1973
- एम. एन श्रीनिवास- सोशलचेन्ज इन इण्डिया, ओरिन्ट लांगमैन बम्बई-1980
- डा. डी. एस. बघेल:- अपराध शास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली-1996
- डा. अम्रेन्दर मोहन्ती एवं नारायन हजारी:- इण्डियन प्रिजन सिस्टम
- डा. ना. वि. परांजये:- अपराध शास्त्र एवं दण्ड प्रशासन (संस्करण 2000)
- हर्ष चन्द्र सक्सेना:- प्रिजन एण्ड प्रिजन रिलेसन:- इन साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल वर्क इन इण्डिया-
- सीरीज-1, पब्लिकेशन डिवीजन-भारत सरकार नई दिल्ली- 1987
- एस. प्रकाश- हिस्ट्री ऑफ इण्डियन प्रिजन सिस्टम:- लखनउ-1976

- शुक्ला दास: क्राइम एण्ड पन्शिमेंट इन एन्सियन्ट इण्डिया अभिनव, नई दिल्ली 1977
- मो. हामिद कुरेशी, 'राजगिर' रिवाईज्ड, आर. ए. जी. घोष. डायरेक्टर जनरल ऑफ आर्केलॉजी, नईदिल्ली 1998
- सत्यप्रकाश सेंगर ''क्राइम एण्ड पन्शिमेंट इन मुगल इण्डिया'' सेटर लिंग-दिल्ली 1967
- डोनाल्ड टेफ्ट- क्रिमनालॉजी (विभिन्न संस्करण)
- लाइनेल फॉक्स: स्टेडी इन पेनोलॉजी प्रकाशित आई पी पी सी 1964
- गिलिन एण्ड गिलिन-क्रिमनालॉजी
- एच. ई. ब्रावेस एण्ड एन. के. टीटर्स- न्यू होरीजन इन क्रिमिनालॉजी
- लियोन रिडसिनोविझ: द ग्रोथ ऑफ क्राईम
- विद्याभूषण ''प्रिजन एड मिनिस्ट्रेशन इन उत्तर प्रदेश'' 1953
- जी. आर. मदान ''इण्डियन सोशियल प्राब्लम्स'' सीरीज-1 नई दिल्ली- 1981
- विजय शंकर कैकरीवॉल ''इक्नॉमिक एण्ड सोशियल एसपेक्ट ऑफ क्राइम इन इण्डिया'' एलन एण्ड अनविन लंदन 1934
- दिवाकर ''प्रिजन एण्ड प्रिजन रिफाम्स इन ब्रिटिश इण्डिया'' सोशल डिफ्रेंस सीरीज- 20 नम्बर-79, जनवरी 1985, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल डिफ्रेंस, मिनिस्टर ऑफ सोशल वेल्फेयर, नई दिल्ली
- कुमकुम चंदा ''द इण्डियन जेल'' विकास नई दिल्ली, 1983
- भारतीय संविधान
- ए. आई. आर. (विभिन्न संस्करण)
- कारागृह अधिनियम-1854
- पंजाब पुलिस नियमावली, 1934
- पंजाब कारागृह नियम पुस्तक
- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951
- कैदियों के व्यवहार की मानक न्यूनतम नियमावली (1955)
- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948

- जे. एन. पांडे, भारतीय संविधान (1982)
- भारतीय संविधानः- बदसी सिंह, अरेरा, (रिप्रिंट 1999), एम, एल, जे, आफिस मद्रास
- डी. डी बासू- भारतीय संविधान पर मामले (1950-52)
- इंडियन लॉ रिव्यू, खंड- 1, सं.-1
- यू. एन. कांग्रेस ऑन प्रिवेंशन ऑफ क्राइम एण्ड ट्रीट मेंट अफैन्डरस, 1955
- ओपन प्रिजन इन इण्डिया सैन्ट्रल ब्यूरो ऑफ कारेक्शलन सर्विस, नई दिल्ली, 1973
- ड्रेसलर डेविसः रीडिंग्स इन क्रिमिनोलॉजी एण्ड मेनोलॉजी, 1964
- केन्थन जे. सेनडरः प्रिजन आर पीपुल्सः 1952
- आनेस्ट ए. एम लेम्बर्सः मिस्टर प्रिजन गोस टू टाउन स्टडीज पेनालॉजी, 1964
- डा. एस. घोषः ओपन प्रिजनस एण्ड द इन्मेट्सः मित्तल पब्लिकेशन नई दिल्ली 1933
- डा. एम. एस. चौहानः अपराध शास्त्र एवं आपराधिक प्रशासन 1991
- डा. आर. जी. सिंह : टेरर टू रीहोम, प्रथम संस्करण
- कोड डिगटनः प्राब्लम ऑफ पन्सिमेंट
- देवेन्द्र चन्द्रः ''ओपन एयर प्रिजन'' बोहरा-पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटरर्स, अल्लाहाबाद-1984
- एस. पी श्रीवास्तव- ''द इण्डियन प्रिसन कम्यूनिटी'', लखनऊ, पुस्तक केन्द्र, 1971
- एच. एल. एडम ''द इण्डियन क्रिमिनल लंदन,'' 1909
- एच. ई. वार्न एण्ड एन. के. टीटर्सः न्यू होरी जन्स इन क्रिमिनॉलाजी, नई दिल्ली 1966
- डब्लू. एम. बॉलाक, जी. एन. केंडल एण्ड ए. एल. ब्रिग्सः- एजुकेशन विथ इन प्रिजन वॉल, ब्यूरो ऑफ
- पब्लिकेशन, टीचर्स कॉलेज, कोलंबियस यूनीवर्सिटी, 1939
- मैक क्रोमिक ए. एच., ''द एजूकेशन ऑफ एडल्ट प्रिजनरस'' द ऑसबर्न एसोशियसन, न्यूयार्क 1931
- टफ्ट डी. आर.- क्रिमानोलॉजी (थर्ड संस्करण) न्यूयार्क मेक्मिलन, 1941
- केथलीन जोन्स () ''द प्रिजन लाइब्रेरी हेण्डबुक शिकागो, अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएसन, 1932
- माइरल, ई. अलेकजेंडर, जेल एडमिनिस्ट्रेशन चार्लेस सी. ऑमस, स्परिंगफाईल्ड इल्इनोसिंस, 1957
- एम. एच. एण्ड ई. एस. न्यूमेयर- ल्यूसर एण्ड रिक्रेशन, ए. एस. वार्न एण्ड कं. न्यूयार्क-1932

- सुशील चन्द्रा सोशलॉजी ऑफ डिवीनएशन इन इण्डिया एलाईड पब्लिसर्स बाम्बे - 1967
- मॉरिस- नार्बेल एण्ड गार्डन हेवकिंस: रिहेवलेशन: रिहटोरिक ओर रियाल्टी फ्रेडरल प्रोवेन्सन, 1970
- नरेश कुमार ''कॉन्सटीट्यूशनल राईट्स ऑफ प्रिजनर्स'' दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन 1985
- दूगा जी दम्यंती ''लॉ ऑफ क्राइम एण्ड पन्शिमेंट इन एन्सिएण्ट हिन्दू सोसाईटी'' दिल्ली, अजंता पब्लिकेशन, 1987
- केमलर डोनाल्ड ''द इंडियन प्रिजन कम्यूनिटी '', न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रेस 1956
- विद्याभूषण: प्रिजन एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, एस चन्द एण्ड कं. नई दिल्ली, 1970
- कमलेश जैन - ''न्यायपालिका कसौटी पर ''

¤ ¤ ¤

रिपोर्ट

- रिपोर्ट ऑफ द चीफ यूनाईटिड नेशन कॉरस्पान्डेंट इन इण्डिया इन द फाइल्ड ऑफ द प्रिवेन्सन ऑफ द क्राइम ट्रीटमेंट ऑफ अफेन्डर (1-1-1933 से 21-12-1983 तक) मिनिस्ट्री ऑफ सोशल वेल्फेयर, भारत सरकार, नई दिल्ली
- जस्टिस ए. एन. मुल्ला समिति रिपोर्ट
- भारतीय जेल समिति रिपोर्ट- 1919-20
- द यूनाईटिड प्रॉविन्स जेल इन्क्वारी कमेटी 1929
- यू. पी. जेल इन्कक्वारी कमेटी 1929
- गवर्मेन्ट ऑफ यूनाइटेड प्राविंस, रिपोर्ट ऑफ द डिपार्टमेंटल जेल कमेटी (1939)
- डिपार्टमेंटल जेल कमेटी रिपोर्ट 1939
- रिपोर्ट ऑफ द यूनाईटिड प्राविंस जेल रिफार्म कमेटी- 1946
- यू. पी. जेल रिफार्म रिपोर्ट-1946
- जेल रिफार्म कमेटी रिपोर्ट महाराष्ट्र-1948
- यू. पी. जेल इंडस्ट्री इन्कवारी कमेटी 1956
- ऑल इण्डिया जेल मैन्यूल कमेटी रिपोर्ट 1957-59
- जेल रिफार्म कमेटी रिपोर्ट राजस्थान- 1964
- रिपोर्ट ऑफ द वर्किंग ग्रुप ऑन प्रिजन इन द कन्ट्री-1972-73
- बाल्टर सी. रेकलेस ''ए रिपोर्ट ऑन जेल एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया'' यू. एन. पब्लिकेशन, 1952

¤ ¤ ¤

List of Cases

- A.D.M. Jabalpur v. S. Shukla, AIR 1976 SC 1207
- A.K. Gopalan v. State of Madras, AIR 1950 SC 27
- Ashutosh v. State of Delhi, AIR 1953 SC 451
- Babu Singh v. State of U.P. (1978) 2SCR 777
- Bachan Singh v. State of Punjab, AIR 1980 SC 898
- Bal Chand Chorasia v. Union of India, AIR 1978 SC 297
- Bhim Sen, v. State of Punjab(1952) SCR 18
- Charies Wolff v. Mc. Donnel, 41 L. Ed 2d 935 (1974)
- Cruz v. Beto, 31 L Ed 2d 263 (1972)
- D.B.M. Patnaik v. State of A.P. ,AIR 1974 SC 2092
- Deena v. Union of India, AIR 1983 SC 1155
- D' Souza v. State of Bombay, (1956) SCR 382
- Dulal Roy v. D.M. and Others, AIR 1975 SC 1508
- Evan v. Newton, 15 L Ed 510
- Francis Coralice. v. U.T. Delhi, AIR 1981 SC 746
- Gideon v. Wainwright, 372 U.S.335 (1963)
- Golder v. U.K. App. No. 4451/70, (1971)Y.B. Eur. 416
- Hans Mullar v. President, Jail Calcutta, AIR 1955 SC 367
- H.M. Hoskot v. State of Maharashtra, AIR 1978 SC 1548
- Hussainara Khatoon v. Home jSecretary, Bihar AIR 1979 SC 1360
- Hutto v.Finney, 98 S. Ct. 2565 (1978)
- Jagan Nath Naidu v. State of Madras, India Today (Oct. 1983)
- Jagmohan Singh v. State of U.P. , AIR 1973 SC 947

- Kasturi Lal v. State of U.P. AIR 1965 SC 1039
- Kharak jSingh v. State of U.P. AIR 1963 SC 1295
- Kishore Singh v. State of Rajasthan AIR 1981 SC 625
- Kentchl Case, 13 YBECHR 730(1970)
- Kochuni v. State of Madras, AIR 1959 SC 725
- Krishan v. State of Madras, AIR 1951 SC 301
- Louisiana Francis v. Resweber, 329 U.S. 459 (1947)
- Magan Gope v. State of West Bengal, AIR 1975 SC 953
- Meneka Gandhi v. Union of India, AIR 1978 SC 597
- Makhan Singh v. State of Punjab, AIR 1952 SC 91
- Nand Lal v. State of Punjab, (1952) SCR 18
- Pasmore v. Oswaldtwistle Urban Council (1898) A.C. 397
- Peter v. North Carolina, 11 L Ed 2d (1967)
- Powell v. Alabama, 287 U.S. 45 (1932)
- Prabha Dutt v.Union of India, AIR(1982) SC 6
- Prem Shankar Shukla v. Delhi Administration ,AIR 1980 SC 1535
- Puran Lal v. Union of India. AIR 1958 SC 163
- Pushkar Mukherjee v. State of West Bangal, (1969) 2 SCR 635
- Rajendra Prasad v. State of U.P. AIR 1979 SC 916
- Ram Kishan v. State of Delhi, AIR 1953 SC 318
- Ram Singh v. State of Delhi, AIR 1951 SC 270
- Rameshwer v. D.M. AIR 1964 SC 334
- Rudul Sah v. State of Bihar, AIR 1983 SC 1086
- Sampat Parkash v. State of J.K. (1969) 3 SCR 574

- Sostre v. Mc Ginnis, 442 F 2d 178 (1971)
- Srilal Shaw v. State of West Bengal, AIR 1979 SC 393
- State of Bombay v. Atma Ram, AIR 1951 SC 157
- State of Maharashtra v. P. Pandurang, AIR 1966 SC 424
- Sunil Batra (I) v. Delhi Administration, AIR 1978 SC 1675
- Sunil Batra (II) v. Delhi Administration, AIR 1980 SC 1579
- Superintendent of Legal Affairs W.B. v. S. Bhowmick, AIR 1981 SC 917
- Wolf v. Colorad, 338 U.S. 25 (1949)

⌑ ⌑ ⌑